दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केन्द्र
जम्मू विश्वविद्यालय
जम्मू

स्व–शिक्षण सामग्री

एम. ए. हिन्दी

2025

सत्रक–प्रथम	**प्राचीन एवं भक्ति काव्य**	**कोर्स कोडः HIN-103**
इकाई–एक से चार	**कोर्स क्रेडिट–6**	**अध्याय संख्याः 1 से 21 तक**

प्रो. अंजु शर्मा
समन्वयक, एम.ए. हिन्दी

डॉ. पूजा शर्मा
प्रभारी शिक्षक, एम.ए.हिन्दी

इस स्व–शिक्षण सामग्री का रचना स्वत्व/प्रकाशनाधिकार दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केन्द्र, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू–180006 के पास सुरक्षित है।

http:/www.distanceeducation.in

Printed and published on behalf of the Centre for Distance & Online Education, University of Jammu, Jammu by the Director, CDOE, University of Jammu, Jammu

एम. ए. हिन्दी	कोर्स क्रेडिट–6	कोर्स कोड–HIN-103

अध्याय लेखक **अध्याय संख्या**

1. **प्रो. अंजू शर्मा** **1,2,3,15**
प्रोफेसर, हिंदी विभाग दूरस्थ एवं
ऑनलाइन शिक्षा केंद्र
जम्मू विश्वविद्यालय,जम्मू

2. **प्रो. नीलम सराफ** **16–18**
प्रोफेसर (सेवा निवृत), हिंदी विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय,जम्मू

3. **प्रो. परविंदर कौर** **4.5,7,9**
प्रोफेसर (सेवा निवृत), हिंदी विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

4. **प्रो. राज कुमार** **13,14**
प्रोफेसर (सेवा निवृत), हिंदी विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

5. **प्रो. विनोद तनेजा** **6,8**
प्रोफेसर (सेवा निवृत), हिंदी विभाग
गुरु नानक देव विश्वविद्यालय
अमृतसर

6. **प्रो. संत राम वैश्य** **10,11,12**
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
गुरु कुल कांगरी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

7. **डॉ अशोक कुमार** **19,20,21**
सह प्रोफेसर (सेवा निवृत), हिंदी विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

कार्यक्रम समन्वयक	प्रभारी शिक्षक
प्रो. अंजू शर्मा	डॉ. पूजा शर्मा
दूरस्थ एवं ऑनलाइन	दूरस्थ एवं ऑनलाइन
शिक्षा केन्द्र	शिक्षा केन्द्र
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू	जम्मू विश्वविद्यालय,जम्मू

सामग्री समीक्षा, सम्पादन एवं मुद्रित शोधन

प्रो. अंजू शर्मा

दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केन्द्र, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

* All rights reserve. No Part of this work may be reproduced in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from the CDOE, University of Jammu.

* The Script writer shall be responsible for the lesson / script submitted to the CDOE and any plagiarism shall be his/her entire responsbility.

संदेश

दूसरे सत्रक में आपका स्वागत है !

एम.ए हिंदी के पहले सत्रक में आपका स्वागत करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। एम.ए हिंदी कोर्स के लिए नामांकन करने के उपरांत आपकी यात्रा हमारे साथ प्रारम्भ होती है। एम.ए हिंदी में अच्छे अंक लाने के लिए कड़ी मेहनत करें और आंतरिक मूल्यांकन अर्थात असाइनमेंट तैयार करने के लिए थोड़ा अतिरिक्त प्रयास करें। असाइनमेंट बनाते हुए यह ध्यान में रखे कि यह अंक आपके हाथ में हैं। जितनी मेहनत बाहरी परीक्षा के लिए करनी है उतनी ही मेहनत आंतरिक मूल्यांकन अर्थात असाइनमेंट बनाने में करें।

आपको सलाह दी जाती है कि आप नियमित रूप से दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केंद्र के पुस्तकालय में जाएँ और नोट्स बनाने के लिए उपलब्ध पुस्तकों का अधिक से अधिक अध्ययन करें। आप अपनी NET/JRF/SET/SLET या हिंदी से संबधित किसी भी प्रतियोगी परीक्षा के लिए भी एक साथ तैयारी कर सकते हैं और कोर्स कोडरू HIN–103 की अध्ययन सामग्री आपके पाठ्यक्रम और छम्ज्ध्ैम्ज् परीक्षा की तैयारी को ध्यान में रखते हुए तैयार की गई है। कड़ी मेहनत करें।

शुभकामना सहित

प्रोफेसर अंजू शर्मा
पाठ्यक्रम समन्वयक

Syllabus of Master Degree Programme in Hindi Under Non CBCS

Semester & 1st

Course Code: HIN-103	Title: Prachin Avam Bhakti Kavya
Credits: 6	Maximum Marks: 100
Duration of Examination:	a) Internal = 30
3 Hrs.	b) External = 70

Syllabus for the Examination to be held in Dec. 2025, 2026 & 2027

इकाई– एक

क) चन्दबरदाई– पृथ्वीराज रासो ('पद्मावती समय' के पहले 10 पद)।

ख) (सं.) रामवृक्षबेनी पुरी– विद्यापति पदावली ('वंदना' के पहले 2 पद,'नखशिख वर्णन'के पहले 7 पद)।

ग) (सं.) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी– कबीर (पद संख्या– 191 से 200 तक, कुल 10 पद)।

घ) (सं.) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – जायसी ग्रंथावली (नागमती–वियोग खण्ड)।

ङ) (सं.) रामचन्द्र शुक्ल– सूरदास ('भ्रमरगीत सार' पद संख्या 21 से 30 तक, कुल 10 पद)

च) तुलसीदास– कवितावली ('अयोध्याकाण्ड' पद संख्या 21 से 30 तक, कुल 10 पद)

इकाई–दो

रासो काव्य–परम्परा में पृथ्वीराज रासो का स्थान।
पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता।
पद्मावती समय का काव्य–सौष्ठव।
विद्यापति की लोक चेतना।
विद्यापति भक्त अथवा शृंगारी कवि।
विद्यापति पदावली की काव्य–भाषा।

इकाई–तीन

कबीर का रहस्यवाद।
कबीर की सामाजिक चेतना।
कबीर का काव्य–शिल्प।
पद्मावतः अन्योक्ति और समासोक्ति।
नागमती का विरह वर्णन।
पद्मावत का महाकाव्यत्व।

इकाई–चार

भ्रमरगीत परम्परा में सूरदास का स्थान।
सूरदास की भक्ति–भावना।
भ्रमरगीत का काव्य–सौष्ठव।
तुलसीदास का लोकनायकत्व।
तुलसीदास की भक्ति–भावना।
तुलसीदास का काव्य–सौष्ठव।

प्रश्न पत्र का प्रारूप

कोर्स कोड HIN–103 के प्रश्नपत्र का प्रारूप इस प्रकार होगा

आंतरिक मूल्यांकन (Internal Assessment Assignments)		कुल अंक = 30
(क)	शत–प्रतिशत विकल्प के साथ एक दीर्घ उत्तरापेक्षी प्रश्न।	10 x 1 =10
(ख)	शत–प्रतिशत विकल्प के साथ दो लघु उत्तरापेक्षी प्रश्न।	5 x 2 = 10
(ग)	विकल्प रहित चार अति लघु उत्तरापेक्षी प्रश्न।	2 x 4 = 10
मुख्य परीक्षा (External Exam)		**कुल अंक = 70** **समय = तीन घण्टा**
(क)	इकाई एक में निर्धारित प्रत्येक पुस्तक में से एक–एक सप्रसंग व्याख्या पूछी जायेगी। विद्यार्थी को कोई तीन सप्रसंग व्याख्याएँ करनी होंगी।	6 x 3=18
(ख)	इकाई 2,3,4 में से शत–प्रतिशत विकल्प के साथ एक–एक दीर्घ उत्तरापेक्षी प्रश्न पूछा जाएगा।	11 x 3=33
(ग)	इकाई 2,3,4 में से शत–प्रतिशत विकल्प के साथ एक–एक लघु उत्तरापेक्षी प्रश्न पूछा जाएगा।	5 x 3=15
(घ)	सम्पूर्ण पाठ्यक्रम पर आधारित चार वस्तुनिष्ठ विकल्प रहित प्रश्न पूछे जायेंगे।	1 x 4 = 4

संस्तुत पुस्तकें–

रासो विमर्श – माताप्रसाद गुप्त।
रासो काव्य परम्परा – सुमन राजे।
चन्दबरदाई और उनका काव्य – विपिन बिहारी।
विद्यापति – डॉ. आनन्द प्रकाश दीक्षित।
विद्यापति – मनमोहन सहगल।
विद्यापति : युग साहित्य – अरविंद नारायण सिन्हा।
कबीर – हजारी प्रसाद द्विवेदी।
कबीर साहित्य की परख – परशुराम चतुर्वेदी।
पद्मावत का काव्य वैभव – मनमोहन गौतम।
मलिक मोहम्मद जायसी और उनका काव्य – शिव सहाय पाठक।
सूरदास – नंददुलारे वाजपेयी।
सूरदास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।
गोस्वामी तुलसीदास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।
तुलसी काव्य दर्शन – डॉ. रामलाल सिंह।
तुलसी साहित्य सुधा – डॉ. भगीरथ मिश्र।

विषय सूची

संख्या	अध्याय शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1.	पृथ्वीराज रासो के'पद्मावती समय' व 'विद्यावती पदावली' की सप्रसंग व्याख्या	1
2.	'कबीर के पद' व 'नागमती वियोग खंड' : सप्रसंग व्याख्या	14
3.	'भ्रमरगीत सार' व 'अयोध्या कांड' की सप्रसंग व्याख्या	26
4.	'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति एवं रासो काव्य–परम्परा	36
5.	'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता	43
6.	पद्मावती समय का काव्य–सौष्ठव	51
7.	विद्यापति की लोक–चेतना	61
8.	विद्यापति भक्त अथवा शृंगारी कवि	78
9.	पदावली की काव्य–भाषा	88
10.	कबीर का रहस्यवाद	96
11.	कबीर की सामाजिक चेतना	109
12.	कबीर का काव्य शिल्प	119
13.	पद्मावत अन्योक्ति और समासोक्ति	131
14.	नागमती का विरह वर्णन	141
15.	पद्मावत का महाकाव्यत्व	151
16.	भ्रमरगीत की परम्परा में सूरदास का स्थान	160
17.	सूरदास की भक्ति–भावना	173
18.	सूर का काव्य–सौष्ठव	181
19.	तुलसीदास का समन्वयवाद / लोकनायकत्व	196
20.	तुलसी की भक्ति–भावना	208
21.	तुलसी का काव्य सौष्ठव	216

पृथ्वीराज रासो के 'पद्मावती समय' व 'विद्यापती पदावली' की सप्रसंग व्याख्या

रूपरेखा

1.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
1.2 प्रस्तावना
1.3 पृथ्वीराज रासो के 'पद्मावती समय की सप्रसंग व्याख्या
1.3.1 स्व–मूल्यांकन (क)
1.4 'विद्यावती पदावली' की सप्रसंग व्याख्या
1.4.1 स्व–मूल्यांकन (ख)
1.5 उत्तर कुंजी
1.6 पठनीय पुस्तकें

1.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रिय विद्यार्थियों ! इस अध्याय का उद्देश्य आपको 'पद्मावती समय' के पद तथा 'विद्यावती पदावली' के वंदना भाग व नख शिख वर्णन से अवगत करवाना है।

अपेक्षित परिणाम – इस अध्याय का अध्ययन करने के पश्चात आप 'पृथ्वीराज रासो' कृत 'पद्मावती समय' के पद तथा 'विद्यावती पदावली'के वंदना भाग व नख शिख वर्णन से पूर्ण परिचित हो सकेंगे।

1.2 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों ! इस अध्याय में 'पद्मावती समय' के पद तथा 'विद्यावती पदावली'के वंदना भाग व नख शिख वर्णन की महत्वपूर्ण पंक्तियों की व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

1.3 पृथ्वीराज रासो के'पद्मावती समय की सप्रसंग व्याख्या

(1) दूहा–पूरब दिसि गढ़ गढ़न पति, समुद्र सिषर अति दुग्ग।
तहै सु विजय सुरराज पति, जादू कुलह अभग्ग।।

शब्दार्थः– समुद्र शिषर = समुद्र शिखर नामक नगर और दुर्ग। दुग्ग = दुर्ग, गढ़, किला। सु = सुन्दर, श्रेष्ठ। विजय = समुद्र शिखर का विजयपाल नामक राजा। सुरराज = इन्द्र। जादू कुलड़ = यादव वंश का। इसमें 'ह' अपप्रंश भाषा के सम्बन्ध कारक की विभक्ति है। अभग् = अभंग, जिसे भंग न किया जा सके, तोड़ा न जा सके अर्थात् दुर्नेय।

व्याख्याः– महाकवि चन्दबरदाई पूर्व दिशा में स्थित किसी समुद्र शिखर नामक गढ़ एवं उसके प्रतापी राजा विजयपाल का वर्णन करता हुआ कहता है कि पूर्व दिशा में सम्पूर्ण दुर्गो का स्वामी अर्थात् समस्त दुर्गों में सर्वश्रेष्ठ समुद्र शिखर नामक एवं अत्यंत विशाल एवं दुर्गम दुर्ग है, वहाँ अजेय यादव वंश का इन्द्र के समान ऐश्वर्यशाली एवं प्रतापी राजा विजयपाल राज्य करता है।

टिप्पणीः—

1. समुद्र शिखर एवं राजा विजयपाल दोनों ही काल्पनिक है। इनका कहीं किसी भी प्रकार का ऐतिहासिक वृत नहीं मिलता। परन्तु 'पदमावती समय' की कथा जायसी के 'पदमावत' की कथा का हल्का—सा आभास देती है। सम्भवतः चन्द्रबरदाई एवं जायसी दोनों ने ही किसी पूर्व—प्रचलित लोक प्रसिद्ध कथा को ही अपना आधार बनाया होगा। 'पदमावती' नाम, शुक आदि प्राचीन कथानक—रुढ़ियों के प्रमुख अंग रही है या तो यह कथा कोई लोक प्रसिद्ध कथा रही है या दोनों कवियों ने प्राचीन कथानक रुढ़ियों के आधार पर इन दोनों कथाओं का ढांचा तैयार किया होगा। इस निबन्ध में डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—

''रासो में पद्मावती के विवाह वाला अध्याय इसी परवर्तीकाल के विचारमत उलझन की सूचना देता है। कहानी उसमें वही है जो पद्मावत में है, परन्तु वहाँ पदमावती उत्तर देश की राजकन्या बतायी गयी है। पुरानी कहानी की स्मृति उसके कुछ शब्दों में जा रही है। जैसे, यह तो नहीं कहा गया कि पद्मावती सिंहल देश की राजकन्या थी। परन्तु उसके नगर का नाम समुद्र शिखर यह सूचित करता है कि उस देश का सम्बन्ध किसी समय समुद्र से था। फिर उसका राजा विजयपाल सिंहल के प्रथम राजा विजयसिंह से मिलता—झुलता है और 'जादूकुल' में सम्भवतः यातुधानुकुल की यादगार बनी हुई है।

यहाँ एक बात विचारणीय है। चन्द ने 'समुद्र शिखर' की स्थिति पूर्व दिशा मानी है। जायसी के 'पदमावत' का सिंहल द्वीप भी कहीं पूर्वी समुद्र, अर्थात् बंगाल की खाड़ी में ही स्थित प्रतीत होता है क्योंकि राजा रत्नसेन उडीसा के तट से ही जहाजों में बैठकर सिंहल द्वीप की यात्रा करता है। इस प्रकार चन्द की इस कथा में उन तीन प्राचीन कथानक रुढ़ियों का प्रयोग मिला है। जिनका प्रयोग चन्द के परवर्ती कवि जायसी ने 'पदमावत' में किया है— नायिका का पूर्व दिशा में स्थित किसी स्थान का होना, शुक द्वारा प्रेम का उत्पन्न किया जाना तथा नाम 'पदमावती' होना।

2) अलंकार = छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास तथाा रुपक।

(2) **दूहा — हसम हयग्गय देस अति, पति सायर म्रज्जार।**
प्रबल भूप सेवहि सकल, धुनि निसाँ बहु सार।।

शब्दार्थः— हसम = (अरबी—शब्द) ऐश्वर्य, वैभव। हयग्गय = हय. गय घोड़े और हाथी। 'हयग्गय' शब्द चन्द की भाषा पर अपभ्रंश के प्रभाव तथा 'डिंगल' की छाप को स्पष्ट करता है। अक्षरों का द्वित्व चन्द की भाषा की प्रधान विशेषता रही है। देस = देश प्रदेश राज्य। पति = पत, प्रतिष्ठा, स्वामी। सायर = सागर, समुद्र। प्रबल = शक्तिशाली, प्रताप। मृन्जार = मर्यादा। सेवहिं = सेवा करते हैं। धुनि = ध्वनि, घोष। निसौत = निसांत गाड़ा, दुन्दुगी। सार = शब्द, निनाद।

व्याख्याः— राजा विजयपाल का वैभव अपार है। उसके पास हाथी—घोड़े और विशाल राज्य है। उसकी प्रतिष्ठा की मर्यादा समुद्र के समान असीन है अर्थात् वह समुद्र के समान मर्यादा वाला है अथवा वह पर्यन्त पृथ्वी का स्वामी है अथवा समुद्र की सीमा तक उसकी प्रतिष्ठा है। भाव यह है कि राजा विजयपाल का यश विशाल समुद्र पर्यन्त फैला है और वह एक बहुत बड़े भू—प्रदेश का स्वामी है। समस्त शक्तिशाली राजा उसकी सेवा करते हैं। उसके नागाड़ों का घोष चारों ओर गूँजता रहता है। अर्थात् उसके नगाड़े इतनी जोर के साथ बजते हैं कि उनका निर्घोष दिग्दिगन्त में व्याप्त रहता है। भाव राजा के अमित सैन्यबल से है।

टिप्पणीः–

1. अलंकार – छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास।
2. 'पति सायर मृज्जार' का अर्थ तीन प्रकार से किया जा सकता है।
    1) समुद्र पर्यन्त उसकी प्रतिष्ठा है।
    2) वह समुद्र के समान गम्भीर मर्यादा वाला है।
    3) वह सागर पर्यन्त भूखण्ड का स्वामी है।
3. 'धुनि' का पाठान्तर 'धन' भी मिलता है। इसके अनुसार इसका अर्थ होगा कि उसके नगाड़ी का घोष बादलों की गर्जना के समान गम्भीर और भयंकर होता था।
4. चन्द की भाषा में 'जड़' भाषा का मिश्रण है। कवि इस मिश्रण द्वारा अपने पांडित्य का प्रदर्शन करता है। 'अत्युक्ति' प्राचीन कवियों का अत्यन्त प्रिय विषय रहा है। यहाँ भी कवि ने अव्युक्ति का प्रयोग किया है।

(3) **कवित्त धुनि निसाँन बहु साद, नाद सुरपंच वचत दिन।**
दस हजार हय चढ़त, हेम नग जटिक साज तिन।।
गज असंप गजपतिय, मुहर सेनरा तिन संषह।
इन नायक कर धरी, पिनाक धर भर रज रव्वह।।
दस पुत्र पुत्रिय एक सम, रथ सुरंग उमर डगर।
भण्डर लछिय अगनित पद्म, सो पद्मसेन कुँवर सुधर।।

शब्दार्थः– सुरपंच =पंच स्वर, पंचम स्वर अर्थात् पूरे जोर से। दूसरा अर्थ नवाघों से भी लिया जा सकता है। दिन = प्रतिदिन, नित्यप्रति। हय चढ़त = घोड़ों पर सवार होते हैं, अश्वारोही। हेम = स्वर्ग। साज = घोड़ों का सामान जीन, लगान तग आदि। तिन = उनके। असंज = असंख्य। गज = पतिय = गजराज, विशालकाय हाथी। सुहर = (पा. मुखर) हरावल या सेना का भाग, पैदल (मेनारिया)। इस शब्द की व्युत्पति तुर्की शब्द 'मुहरावल' से प्रतीत होती है जिसका अर्थ सेना का हरावल, अर्थात् अग्रभाग होता है, तिय = तीन, मनेरिया के अनुसार 'उसके', संषह = शंख, सौ खरव का एक शंख होता है, इक = एक, अद्वितीय, अनुपम। पिनाक = शिव के धनुष का नाम। घँर भर = समग्र पृथ्वी अथवा समस्त पृथ्वी का भरण (रक्षा) करने वाला राजा। रज = राज्य, क्षात्र धर्म, रण्पह = रक्षण, रक्षा करना एक सम = एक समान, एक से। सुरंग = सुन्दर रंग वाला, सुन्दर। उम्मर = अम्बर, आकाश, वस्त्र। डमर = चँदोवे। उम्मर डमर = संध्या के रंग–बिरंगे बादलों के समान अथवा आकाश–स्थित चन्द्रमा के समान। भंडार = खजाना। लछिय = लक्ष्मी, धन–सम्पति। पदम = पद्म, एक संख्या। सो = उसकी। पद्मसेन = पदमसेन, विजयपाल की रानी। कुँवर = कुमारी, यहाँ रानी से अभिप्राय है। सुधर = सुन्दर।

व्याख्याः– राजा विजयपाल के नगाड़ों की ध्वनि अत्यन्त गम्भीर स्वर से गूँजती रहती है। उसके यहाँ नित्यप्रति पंच वाघ बजते रहते हैं अर्थात् उसके राजद्वार पर नित्यप्रति मंगलसूचक पंचवाघ बजते रहते हैं, इसके दस हजार सैनिक घोड़ों पर सवार रहते हैं, अर्थात् उसके पास दस हजार अश्वारोही सैन्य है, इन घोड़ों का साज स्वर्ण से मंडित और रत्नों से जटित है। उसकी सेना में असंख्य गजराज अर्थात् विशालकाय हाथी हैं। उसकी हरावल सेना, अर्थात् अग्रगामी पद्यति (पैदल) सेना की संख्या तीन शंख है। मेनारिया ने 'तिय' का अर्थ उसकी मानकर यह अर्थ किया है एक शंख पैदल सेना उसके आगे चलती थी। डॉ भगीरथ मिश्र के अनुसार– 'मोहरे' पर सेना तीन शंख थी। यदि

'मुहर' के स्थान पर 'मुखर' पाठान्तर स्वीकार किया जाय तो इसका अर्थ इस प्रकार माना जायेगा– 'उसकी तीन शंख सेना शोर मचाती अर्थात् शत्रु को ललकारती हुई चलती थी।' परन्तु यह अर्थ अधिक संगत नहीं प्रतीत होता, क्योंकि कवि सेना की विशालता का वर्णन कर रहा है।

वह अद्वितीय नायक अर्थात् सेनापति है, वह हाथ में शिव के 'पिनाक' नामक धुनष के समान भयंकर और भारी धनुष धारण कर सम्पूर्ण पृथ्वी राज्य की रक्षा करता है। मेनारिया के अनुसार– 'एक धनुर्धारी सेना के अधिकार में यह सेना रहा करती थी।' परन्तु इस अर्थ में कोई विशेषता नहीं है, रूप और गुण के एक समान उसके दस पुत्र और एक पुत्री है। उसके रथ सुन्दर रंगों वाले चँघेवे से ढके रहती है अथवा उनके रथ आकाश में स्थित चन्द्रमा के समान उज्जवल और शुभ रंग वाले चँघेवों से आच्छादित रहते हैं, उसके भंडार में असंख्य पद्म धन भरा रहता है। उसकी रानी पद्मसेन सुन्दरी है।

टिप्पणीः–

1. अलंकार = छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास, यमक और अतिशयोक्ति।
2. सुरपंच = पंच वाघ, यथा–भृंग (सींगी), तम्भर (खंजड़ी) भेरी, जयघंटा। कुछ लोगों ने पंच वाध इस पकार माने हैं, मृदंग, तन्त्री, मुरली, ताल तथा प्रतिध्वनि वाघ। प्राचीन युग में अपने द्वार पर इन पंच वाघों को बजवाने का अधिकार केवल राजाओं को रहता था।
3. पंचम पंक्ति के उत्तराद्ध का कुछ टीकाकारों ने इस प्रकार अर्थ किया है– 'उसके रथ सन्ध्याकालीन रंग–बिरंगे दल बादल (चँघेवे) वाले हैं, यह अर्थ सौन्दर्य की दृष्टि से अधिक सार्थक प्रतीत होता है।
4. मूलग्रन्थ में इस छन्द का नाम 'कवित' मिलता है, परन्तु दरअसल है यह 'छप्पय' यह मात्रिक संयुक्त छन्छ होता है। प्रथम चार चरणों में रोला और अन्तिम दो चरणों में उल्लाला रहता है। चन्द ने इस छन्द का सर्वाधिक प्रयोग किया है। चन्द 'छप्पय' का सम्राट माना जाता है।
5. इस पद में कवि ने विजयपाल की रानी के लिए 'कूँवर' शब्द का प्रयोग किया है जिसका अर्थ होता है 'कुमार', यदि स्त्रीलिंग में इसका रूप 'कुमारी' माना जाय तो भी विवाहिता के लिए इस शब्द का प्रयोग ठीक नहीं प्रतीत होता। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि प्रचीनकाल में कविगण शब्दों के इस भेद के प्रति या तो सजग नहीं रहते थे या उस समय इन शब्दों के वर्तमान अर्थ प्रचलित नहीं थे। हमें जायसी में भी ऐसी ही प्रवृति मिलती है। जायसी ने पद्मावती की कोमार्यावस्था में ही उसके लिए 'रानी' शब्द का प्रयोग किया है। अतः यह सिद्ध हो जाता है कि प्राचीनकाल में 'कुमारी' और 'रानी' शब्द अपने वर्तमान अर्थ में प्रचलित नहीं थे। इनके अतिरिक्त विजयपाल की रानी का नाम 'पदमसेन' न होकर 'पदमासेना' होना चाहिए था। 'पद्मसेन' शब्द पुल्लिंग वाचक–सा प्रतीत है। सम्भव है मात्रा के कारण 'पद्मासेना' का 'पदमसेन' हो गया हो। 'कूँवर' के स्थान पर यदि कुँवरि मान लिया जाए तो अर्थ ठीक बैठ सकता है। अर्थात् पद्मसेन– कुमारी– पद्मसेन की पुत्री। संभव है उसके पिता का नाम पद्मसेन रहा हो।

(4) दूहा–पदमसेन कुँवर तो घर नारि सुजाँन।
ता उर एक पुत्री प्रकट, मनहु कला ससिभाँन।।

शब्दार्थः– ता = उसके। सुजाँन = चतुर। उर = हृदय, गर्भ। ससिभांन = चन्द्रमा के समान।

व्याख्या = उसके अर्थात् राजा विजयपाल के घर में पद्मसेन नामक चतुर और सुन्दर स्त्री अर्थात् पत्नी है। उसके गर्भ से एक पुत्री ने जन्म लिया जो मानो चन्द्रमा की कला के समान सुन्दर थी। भाव यह है कि वह पुत्री इतनी सुन्दर थी मानो चाँद का टुंकड़ा हो। (कुछ व्याख्याकारों ने 'ससिभान' शब्द का अर्थ ससि + भान = चन्द्र + सूर्य भी किया है अर्थात् वह बालिका चन्द्र और सूर्य के समान सुन्दर दीप्ति वाली थी)

टिप्पणीः– अलंकार = छेकानुप्रास, उत्प्रेक्षा।

(5) मनहुँ कला ससिभांन, कलह सोलह सो बन्निय।
बाल बेस ससि ता समीप, अम्रित रस पिन्निय।।
बिगसि कमल भ्रिग भमर, बैन, पंजन मृग लुट्टिय।
हीर कीर अरु बिन, मोति नष सिष अहिघट्टिय।।
छप्पति गयंद हरि हंस गति, बिह बनाय संचे सचिय।
पदमिनिय रूप पदमावतिय, मनहुँ काय कानिनि रचिय।।

शब्दार्थः– सो = से, द्वारा। बनई = बनाई गई हो। वेल = वपस, अवस्था। ता = उनके। नित्रिय = पान किया हो। बिगसि = विकसित, खिला हुआ। भ्रिग = मृग हरणि (पाठंतार–स्रिग = (सं) स्रक, माला, शृंखला, श्रेणी) बैन = वेणु वंशी। खंजन = खंजन पक्षी। लुट्टिय = लूट लिया हो। हीर = हीरा। कीर = तोता। बिंब = बिम्बाफल। मोति = मोती। नष सिष = निख–शिख। अहिघुट्टिय = अभिघटित किया, बनाया। छप्पति (पाठान्तर–छत्रपति) छिपाती है या छिप जाते हैं। यह 'छत्रपति' अध्याय अशुद्ध और असंगत है, क्योंकि उससे अर्थ में कोई सौन्दर्य नहीं रहता। यंद = गजराज। हरि = सिंह। गति = चाल। विह = विधाता। संचै = साँचा। सचिय = सची, इन्द्रानी, संचित, ढालकर गढ़ा हो। पदमिनिय = पद्मिनी। काम कामिनी = कामदेव की स्त्री, रति।

व्याख्याः– इस पद में कवि पद्मावती के रूप का नख–शिख वर्णन कर रहा है। इसमें उसने विभिन्न परम्परायुक्त उपमानों द्वारा पद्मावती के अपरूप सौन्दर्य का अत्यन्त कलापूर्ण अंकन किया है। कवि कहता है कि–पद्मावती इतनी सुन्दर है मानो साक्षात् चन्द्रमा की कला ही इस भूमि पर अवतरित हुई हो। मानो उसका निर्माण चन्द्रमा की सम्पूर्ण सोलह कलाओं द्वारा किया गया है। भाव यह है कि वह पूर्ण चन्द्र के समान सुन्दर है। उसकी बाल्यावस्था है। उसके निर्मल एवं शान्ति प्रधपक रूप को देख ऐसा भान होता है मानो चन्द्रमा ने उसी से अमृत का पान किया है, अर्थात् उसी से अमृत प्राप्त किया हो। भाव यह है कि उसके रूप को देख नेत्रों को उसी प्रकार शीतलता प्राप्त होती है जिस प्रकार चन्द्रमा को देखकर नेत्र शीतल होते हैं, उसके विभिन्न अंगों–मुख, नेत्र, कर, चरण के सौंदर्य से विकसित कमलों की श्रेणी के सौन्दर्य को (उक्त चार अंगों की उपमा कमलों से दी जाती है, उसके केशों की श्यामता ने भ्रमरों की श्यामता ने भ्रमरों की श्यामता को, उसकी मधुरवाणी ने वेणु (वंशी) के स्वर के माधर्य को, उसके नेत्रों की चंचलता ने खंजन की चंचलता को तथा नेत्रों की विशालता एवं भोलेपन ने मृगों के नेत्रों की विशालता एवं भोलेपन को लूट लिया है। भाव यह है कि पद्मावती ने इन विशेषताओं को उपर्युक्त विभिन्न उपमानों से प्राप्त किया है, अर्थात् उनसे छीन लिया है अर्थात् ये सारे उपमान पद्मावती की उपर्युक्त विशेषताओं की तुलना में फीके प्रतीत होते हैं। नख से शिख तक उसके सम्पूर्ण सौन्दर्य को हीरा, शुक, बिम्वाफल तथा मोती द्वारा अभिघटित अर्थात् निर्मित किया गया है। भाव यह है कि उसकी दन्तपंक्ति हीरे के समान निर्मल एवं काम्तिमान, पतली और तनिक आगे की ओर झुकी हुई अधर, बिम्बाफल के समान लाल और मोहक, हाथ–पैरों के नख मोती के समान सुन्दर, सुडौल, स्वच्छ और प्रमाणय है। (कुछ आलोचकों ने मोती से यह अभिप्राय लिया है कि उसका सारा नखशिख मोती की सी कान्ति से निर्मित किया गया है। 'अहि' और 'घटिय' शब्दों को पृथक् मानकर कुछ आलोचकों ने यह अर्थ किया है कि उसके केश सर्प के

समान काले और लहरियादार हैं तथा केशों के इस सौन्दर्य ने सर्प के सौंदर्य को घटा दिया है, क्षीणकर दिया है। परन्तु यह दोनों ही अर्थ खींचतान–परक अर्थ प्रतीत होते हैं, कवि केशों की उपमा ऊपर भ्रमर से दे आया है, इसलिए उसका पुनरावृति माना जाएगा। पद्‌मावती की गर्व–भरी, मन्द मंधर चाल को देख हाथी, सिंह और हंस लज्जित हो छिप जाते हैं। अर्थात् उसकी चाल में हाथी की मस्ती सिंह का–सा गर्व और हंस–की–सी मन्थरता है। उसके सम्पूर्ण अंग सुडौल हैं मानो विधाता ने उसे साँचे में ढालकर शची के समान सुन्दर किया हो। परन्तु यह अधिक सुन्दर नहीं प्रतीत होता) ऐसी वह पद्‌मावती पद्‌मिनी नारी के समान सुन्दर है। उसे देख ऐसा प्रतीत होता है मानो विधाता उसके रूप में कामदेव की पत्नी रति का ही दूसरा रूप निर्मित किया हो, अर्थात् वह रति के समान अनिंध सुन्दरी है। भाव यह है कि साक्षात स्वरूपा है।

टिप्पणीः–

1. अलंकार– छेकानुप्रयास, वृत्यानुप्रास, उत्प्रेक्षा, रूपकातिश्योक्ति तथा व्यातिटेक। 'ससिभान' में बहुब्रीहि समास माना जा सकता है।
2. इस पद में दो शब्द विचारणीय हैं– 'भ्रिग' तथा 'छप्पति'। इनके क्रमशः दो पाठांतर मिलते हें 'स्रिग' तथा 'छत्रपति'। 'भ्रिग' तथा 'स्रिग' पाठान्तर अधिक संगत प्रतीत होता है क्योंकि इसी पंक्ति में आगे चलकर पुनः 'मृग' शब्द का प्रयोग मिलता है। 'स्रिग' का अर्थ होता है कई अंगों का अप्रत्यक्ष रूप से उल्लेख कर दिया है, जिनकी उपमा कमल से दी जाती है जैसे मुख, नेत्र, कर तथा चरण। ये अंग इतने सुन्दर हैं मानो प्रफुल्लित कमलों की माला हो, अर्थात् उसका सादा रूप कमलों के समान शोभायमान है। इसलिए यहाँ स्रिग अध्याय ही स्वीकार करना चाहिए। एक आलोचक महोदय ने 'स्रिग' का 'वाण' माना है। परन्तु बाल्यावस्था यद्यपि चाल में मन्घटता का होना असम्भव नहीं। इसलिए 'स्रिग' का अर्थ श्रेणी या माला ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

'छप्पति' के स्थान पर 'छत्रपति' अध्याय पूर्णतः असंगत है, क्योंकि 'छत्रपति' का अर्थ होता है राजा। 'गयन्द' का अर्थ होता है, हाथियों का राजा। 'छत्रपति' गयन्द का क्या अर्थ होगा, यह समझ में नहीं आता। कुछ आलोचकों ने इसी पाठांतर को स्वीकार कर इसका अर्थ किया है। 'श्रेष्ठ गज' 'गयन्द' का अर्थ ही 'श्रेष्ठ गज' होता है। 'छप्पति' का अर्थ है 'छिप जाना', सूर–विघापति, जायसी आदि ने नायिकाओं का नख–शिख वर्णन करते समय अनेक स्थलों पर सही भाव व्यक्त किया है कि नायिका के अंगों को देख उनके उपमान सिंह, हाथी, शुक आदि लज्जित हो वन में जा छिपे हैं। इसलिए 'छप्पति' अध्याय ही शुद्ध और संगत माना जाना चाहिए।

3. चन्द द्वारा किया गया पद्‌मावती का यह रूप–वर्णन परम्परागत वर्णन है।

1.3.1 स्व–मूल्यांकन (क)

प्रिय विद्यार्थियों ! इस अध्याय में दिए गए रिक्त स्थान भरकर अभी तक प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

1. पद्‌मावती इतनी सुन्दर है मानो साक्षात् –––––––––– की कला ही इस भूमि पर अवतरित हुई हो।
2. अजेय यादव वंश का इन्द्र के समान ऐश्वर्यशाली एवं प्रतापी राजा ––––––––––– राज्य करता है।
3. पदमावती –––––––––– की राजकन्या बतायी गयी है।

4. उसकी हरावल सेना, अर्थात् अग्रगामी पद्यति (पैदल) सेना की संख्या ---------- है।

5. राजा विजयपाल के नगाड़ों की ध्वनि अत्यन्त गम्भीर स्वर से गूँजती रहती है, उसके यहाँ नित्यप्रति ------------- बजते रहते हैं।

1.4 विद्यापति पदावली की सप्रसंग व्याख्या

(1) वन्दना

(1) श्री कृष्ण वन्दना

नन्दक नन्दक कदम्बक तरू–तर, धिरे–धिरे मुरली बजाय।
समय–सकेत–निकेतन बइसल, बेरि–बेरि बोलि पठाब।
सामरि, तोरा लागि, अनुखन विकल मुरारि।
जमुनाक तिर उपवन उदवेगल, फिर–फिर ततहि विहारि।
गोरस वेचए अवइत–जाइत जनि–जनि पुछ बनमारि।
तोहे मति मान सुमति मधुसूदन, बचन सुनह किछ मोरा।
भतई विद्यापति सुनु वर जौवति बन्दह नन्द किसोय।

शब्दार्थः– नन्दक = नन्दन,नन्द के बेटे, श्रीकृष्ण। तर = तले, नीचे। संकेत–निकेतन = मिलने का सांकेतिक स्थान। बइसल = बैठे हुए। बेरि–बेरि = बार–बार सामरि = श्यामा–सुन्दरी।तोरा लागि = तुम्हारे लिए। अनुखन = प्रतिक्षण। तिर = तट। उदबेगल = उद्विग्न होकर, व्याकुल। ततहि = उसी ओर। जनिजनि = प्रत्येक स्त्री से (पुलिंग–जन, स्त्री– जनी)। मतिमान = अनुरक्त। भनई = कहते हैं। बन्दह = वन्दना करो।

प्रसंगः– कवि विद्यापति शृंगार के अप्रतिम कवि है और उनकी पदावली शृंगार रस से परिप्लावित। कवि ने शृंगार–वर्णन से पूर्व शृंगार के देवता श्रीकृष्ण की अभ्यर्थना की है, जो उचित है। कवि का कथन है–

व्याख्याः– नन्द के पुत्र श्रीकृष्ण कदम्ब वृक्ष के नीचे धीरे–धीरे मुरली बजा रहे हैं, नियत समय पर ही संकेत किये हुए स्थान पर आकर बैठ गये हैं और अनेक बार आमंत्रित भी कर चुके हैं। वंशी में पुकार रहे हैं– सुन्दरी। तुम्हारे प्रेम में श्रीकृष्ण आकुल–व्याकुल हैं, प्रतिपल तुम्हारी स्मृति उन्हें व्याकुल बना रही है, वे यमुना के किनारे उपवन में (भ्रमण करते हुए) व्याकुल होकर पुनः पुनः उसी ओर (तुम्हारे आगमन पथ की ओर) देखते हैं और दूध–दही बेचने को आने–जाने वालीद प्रत्येक स्त्री से वनमाली (श्रीकृष्ण तुम्हारे विषय में) पूछते हैं। श्रीकृष्ण के मन में तुम निवास करती हो, श्री कृष्ण तुम पर आसक्त और अनुरक्त हैं, हे सुमति! कुछ मेरी बात भी सुनो। हे युवतियों में श्रेष्ठ, कवि विद्यापति कहते हैं तुम नन्द किशोर श्रीकृष्ण की इच्छा पूरी करो (उनकी अर्चना–वन्दना करो)।

विशेषः–

1. 'सामरि' से कवि का तात्पर्य श्याम अथवा षोडशी से है। श्यामा का यह लक्षण दिया गया है– ''शीते सुखोष्णसर्वागी ग्रीष्मे च सुख शीतला। तत्कांचनवरर्गाभा सा स्त्री श्यामेति कथ्यते।'' अर्थात् शीतकाल में जिसका अंग उष्ण हो, गरमी में जिसके अंग शीतल हों, और तत्व सोने की तरह जिसका रंग हो वह स्त्री श्यामा कहलाती है।

2. पद में सरस प्रवाह और सरल स्निग्धता ध्यान देने योग्य है।

3. अलंकार (क) 'नन्दक नंदन–यमक अलंकार।'

4. 'धिरे–धिरे–वीप्सा अलंकार।

(2) नख–शिख वर्णन

(1) पीन पयोधर दूबरि गता, मेरा उपजल कनक लता।
ए कान्हु ए कान्हु तोरि दोहाई, अति अपूरुन देखल साई।
मुख मनोहर अधर रंगे, फूललि मधुरी कमल संगे।
लोचन जुगल भृंग अकारे, मधुक मातल उजए न पारे।
भउंहक कथा पूछह जून, मदन जोड़ल काजर धनू।
भन विद्यापति दूति बचने, एत सुनि कान्हु कयल गमने

शब्दार्थः– दीन पयोधर = पुष्ट कुय। दूबरि = क्षीण गता–मात्र, शरीर। गेरु उपजल = पर्वत उत्पन्न हुआ है। साई = उसे मधुरी = एक प्रकार के लाल रंग का फूल जो मिथिला में विशेष रूप से उत्पन्न होता है। मधुक मातल = मधु पीकर उनमल। भउँह = भौहें जनू = मत पूछो। काजर–धनू = काजल–सा धनुष। दूति बचने = दूति के वचन। कयल गमने = प्रस्थान किया, गमन किया।

प्रसंगः– अब वयः सधि वाली नायिका युवती हो गई है। विद्यापति उसके नख–शिख वर्णन में सलग्न जान पड़ते हैं, कवि ने प्रस्तुत पद में नायिका के कुचों, देह, अधर, नेत्र, भौंह आदि का वर्णन बड़ी ही सुन्दरता से किया है। एक सखी कृष्ण से उसके नख–शिख का वर्णन करती हुई कह रही है–

व्याख्याः– उस क्षीण शरीर वाली नायिका के शरीर पर पुष्ट कुच (उभरे) हुए सुशोभित हैं, ऐसा लगता है मानो स्वर्णलता पर सुमेरु पर्वत विकसित हुआ है (यहाँ सुमेरु कुचोः का प्रतीक है) इसका एक अर्थ यह भी हो सकता है– सुमेरु पर्वत पर मानो स्वर्णलता पल्लवित हुई हो। इसमें नायिका की देह स्वर्णलता का प्रतीक है। (हमारे विचार से द्वितीय अर्थ ही अधिक असंगत जान पड़ता है)। सखी कहती है कि ऐह कृष्ण! तुम्हारी दुहाई है अर्थात् तुम उस नायिका के सौंदर्य का जाकर अवलोकन करो। इसके पूर्व ऐसी सुन्दरी मैंने नहीं देखी। उसका मुख मनोहर और अधर अरुणिम है। लगता है मानो कमल (मुख) के साथ मधुरी के फूल (होंठ) खिल उठे हों। उसके दोनों नेत्र भ्रमर के आकार के हैं और ऐसा प्रतीत होता है मानो वे मकरंद स्वरूप कमल मुख के लावण्य में उन्मत हैं और इसीलिए उड़ने में असमर्थ होकर वहीं पड़े रह गये हैं, उसकी भौहों के विषय में मत पूछो वे ऐसी लगती है मानो कामदेव के द्वारा जोड़ा हुआ काजल का धनुष है और उसी के सहारे वह अपना शिकार करता है।

कवि विद्यापति कहते हैं कि दूती के मुख से इन वचनों को सुनकर कृष्ण तुरंत ही उसके पास गमन किया, एक क्षण का भी विलम्ब न लगाया।

विशेषः–

1. नख–शिख चित्रण मुख में और नेत्रों का चित्रण करते समय कवियों ने नेत्र–रूपी भ्रमर द्वारा मुख–रूपी कमल के मकरन्द का पान करने का उल्लेख किया है। संस्कृत का एक उदाहरण दृष्टव्य है–

   ''यावन्न कोषविकासं प्राप्नोतीषन्मालती कलिका।'

   मकरन्दपानलोभयुक्त भ्रमर तावदेव मर्दयपि।।

2. प्रस्तुत पद में भावपक्ष और कलापक्ष का सुन्दर समन्वय है।

3. अलंकार–

(क) पीन यशोधर.... लता' तथा 'भय ह.... धनू' में उत्प्रेक्षा अलंकार।

(ख) 'अति अपूरब– साई'– अतिधयोक्ति अलंकार।

(ग) मुख... सगे'– सहोक्ति से पुष्ट उत्प्रेक्षा।

(घ) 'लोचन–अकारे'– रूपक अलंकार।

(ङ) 'मधुक.... पारे' सहोक्ति से पुष्ट हेतु।

(2) कि आरे। नव जौवन अभिरामा।
जत देखल तत कहए न पारिअ छप्रो अनुपम एक ठामा।
हरिन इन्दु अरविन्द करिनि हेमः पिक बूझल अनुमानी।
नयन बदन परिमल गति तन रूचि अओ अति सुललित बानी।
कुच युग परसि चिंकुर फुजि पसरल ता अरुकायल हारा।
अनि सुमेरू ऊपर मिलि ऊगल चांद निहिन सब तारा।
लोल कपोल ललित मुनि–कुंग्ड़ अधर–बिम्ब अथ जाई।
भौह–भ्रमर, नासापुट सुन्दर से देखि कीर ल।
मनइ विद्यापति से वर नागरि आन न पावए कोई।
कंस दलन नारायन सुन्दर तसु रंगनि पए होई।

शब्दार्थः– कि आरे = अहा कैसा? अभिरामा = सुन्दर। छओ = छः। एक ठामा = एक स्थान पर। करिनि = हस्तिनी। हेम = स्वर्ण, कंचन। परिमल = सुगन्ध। तन रूचि = शरीर की कांति। अओ = और परसि = स्पर्श कर। चिकुर = बाल, केश। फुजि = खुलकर। बिहिनु = रहित। लोल = चंचल, अस्थिर। अथ = नीचे। अध = तुच्छ।नासापुर = नाक। कंस दलन नारायण = कंस का दलन करने वाले श्रीकृष्ण, मिथिला के राजा का नाम भी नारायण था। तसु = उसकी।रंगनि = स्त्री।

प्रसंगः– प्रस्तुत पद में कवि ने नायिका के अंगों की तुलना में प्रस्तुत किये जाने वाले प्राचीन परम्परागत उपमानों का वर्णन करते हुए नख–शिख सौंदर्य का भव्य चित्र प्रस्तुत किया है।

व्याख्याः– अहा! नायिका का यह नवयौवन कितना नवीन और आकर्षक है, आँखों से जैसा देखा जाता है उसका उसी रूप में वर्णन नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, नायिका का सौंन्दर्य श्रवर्णनीय है।

नायिका के शरीर के संघटन में छहों अपूर्व पदार्थ एक ही स्थान पर आकर एकत्रित हो गये हैं। (कवि लोक, हरिण, चन्द्रमा, कमल, हस्तिनी, सोना और कोकिन से आँख, मुख, शरीर की सुगन्ध, गति, शरीर की कान्ति और मधुर वाणी की उपमा देते आये हैं)। अर्थात् नायिका सब दृष्टियों से 'पूर्ण और अनुपम सुन्दरी है। दोनों कुचों पर उसके अस्त–व्यस्त केश मुकुलित हो गये हैं, उनमें हार उलझ गया है। काले वालों के बीच हार के श्वेत मोती इस प्रकार चमकते हैं मानो सुमेरू पर्वत के ऊपर चन्द्रमा रहित सम्पूर्ण तारे उग आये हों। सुन्दर कपोलों पर लटकते हुए कुण्डल भो बड़े आकर्षक है। अधरों की लालिमा के समक्ष बिम्बाफल भी त्रीविहीन हो जाता है। उसकी भौहें भ्रमर के समान श्याम वर्ण हैं। नासिका इतनी सुन्दर और सुडौल है कि उसे देखकर तोता भी लज्जित हो जाता है। कवि विद्यापति कहते हैं कि ऐसी अद्वितीय सुन्दरी नायिका को दूसरा कौन प्राप्त कर सकता है। कंस का वध करने वाले श्री कृष्ण की प्रेमिका में ही ऐसे सौन्दर्य का एक स्थान पर होना सम्भव है।

विशेषः–

1. प्रसाद और माधुर्य गुण के योग से वर्णित चित्र खिल उठा है।
2. बिम्बग्रहण शैली है।
3. कोमल वृति का प्रयोग सराहनीय है।
4. अलंकार– (क) 'हरिन .... बानी' में यथासंख्य तथा भ्रान्तापन्हुति का व्यंग्य है। (ख) 'कुच तारा' और 'जनि... तारा में उत्प्रेक्षा अलंकार है।'

   (ग) 'लाल... लजाई' में व्यतिरेक और अनुप्रास अलंकार।

   (घ) 'बिम्ब.... वाई–प्रतीप अलंकार।

   (ङ) कंस दलन... होई' – अनन्वय अलंकार।

(3) जुगल सैल सिम हिमर देखल एक कमल दुन जोति रे।
फुललि मधुरि फुल सिंदुर लोटाएल पांति बइसलि गज मोति रे।
आज देखल जति के परिआष्ट अपुरुब बिहि निरमान रे।
विपरीत कनक–कदलि तर सीमित थल पंकजके रूप रे।
तबहु मनोहर वाजन बाजए जनि जागे मनसिज भूप रे
भनइ विद्यापति पूरब पुन तह ऐसनि भजए रसमन्त रे
वुसल राकल रस वृप सिवसिंह ललिमा देर कर रे।

शब्दार्थः– जुगल सैल, नृप = दो पहाड़ (कुंचों की उपमा) सिम = सीमा में निकट। हिमकर = चंद्रमा (मुख की उपमा)। कमल = मुख की उपमा दुई जोति = दो ज्योतियाँ (दोनों आँखें) मधुरि फूल = एक प्रकार का लाल फूल। विपरीत = उल्टा। कनक = जाँघ की उपमा। थल पंकज = स्थल कमल (पैरों की उपमा) तथहु = वहाँ भी। मनसिज = कामदेव। पुन = पुण्य। ऐसनि = ऐसा। रसमंत = रमवती, सुरसिका।

प्रसंगः– कवि नायका के अपूर्व सौन्दर्य का भिन्न–भिन्न प्रकार से वर्णित करता है।

व्याख्याः– मैंने दो पर्वतों की सीमा में चन्द्रमा के दर्शन किये अर्थात् दोनों कुचों के सन्धिस्थल के ऊपर मुख को उदित करते हुए देखा। उसी स्थान पर एक कमल रूपी मुख में से प्रकाश बिन्दु (नेत्र) भी दिखाई दिये। वहीं एक मधुरी का फूल विकसित है अर्थात् मंगल–बिन्दु शोभायमान है जिस पर सिन्दूर लौटता है और उसके नीचे गज–मुक्ताओं की पंक्ति शोभायमान हो रही थी। अर्थात् गज–मुक्ताओं के सामने दांतों की पंक्ति सुशोभित थी। आज मैंने उसे जाते हुए देखा और विश्वास उत्पन्न हुआ कि ब्रह्मा ने उसका निर्माण अपूर्व ढंग से किया है। उसका रूप अद्वितीय था, अनुपम था, अवर्णनीय था। सोने के केले के स्तम्भ के नीचे स्थल पर विकसित होने वाला कमल शोभित हो रहा था अर्थात् स्वर्णकदली के सदृश सुन्दर, सुडौल जंघाओं के नीचे चरण रूपी दो कमल विकसित हो रहे थे। उन चरणों में मनोहर घुँघरू बज रहे थे। यह दृश्य ऐसा प्रतीत होता था मानो घुँघरू का यह मधुर निवाद कामदेव को जागृत कर रहा हो। विद्यापति कहते हैं कि ऐसी रसबन्ती, सुरसिका नायिका को वही प्राप्त कर सकता है जिसने पूर्व जन्म में अनेक पुण्य किए हों। इस सम्पूर्ण रस को लखिमादेई के पति राजा शिवसिंह ही जानते हैं।

विशेषः–

1. विद्यापति बाह्म–सौन्दर्य के ही कुशल चित्रकार हैं, आन्तरिक सौंदर्य उन्हें आकर्षित नहीं करता, यह इस पर से सिद्ध हो जाता है। डॉ. रामकुमार वर्मा का कथन है कि अन्तर्जगत की अपेक्षा नहिजगत का वर्णन उन्होंने अधिक किया है।
2. 'विपरीत कनक–कदलितर' कवि की सर्वाधिक नवीन और चमत्कारपूर्ण उपमा है।
3. अलंकार– (क) 'जुगल.... गज–मोती रे' – रूपकातिशयोक्ति।

   (ख) 'विपरीत.... रूप रे'– रूपकाविशयोक्ति।

   (ग) 'तथहु' ..... भूप रे' – उत्प्रेक्षा।

(4) चाँद–सार लिए मुख घटना करू लोचत चकित चकोरे।
अमिय घोय आँचर धनि पोछलि वह दिसी भेल उजोरे।
जुग–जुग के बिहि बूढ़ निरस उस कामिनि कोने गढ़ली।
रूप सरूप मोर्य कहइत असम्भव लोचन लागि रहली।
गुरु नितम्ब भरे चलए न पारए सास खानि खीना निभाई।
भागि जाइत मनसिज धरि राखलि त्रिवलि लता अरझाई।
भनइ विद्यापति अद्भुत कौतुक ई सब वचन सरुपे।
रूप नरायन ई रस जानधि सिवसिंह मिथिला भूपे।

शब्दार्थः– 1.चाँदसार = चन्द्रमा का सार तत्व। घटना करू = गढ़ा। धनि = स्त्री, नायिका। पोंछलि = पोंछा। कोने = किसने। पढ़ ली = रचना की। सरूप = प्रत्यक्ष। रहली = लगे रह गये। भरे = भार से। माझ खानि = मध्य भाग में (कटि) खीनि = क्षीण, पगली। निमाई = निर्माण की। त्रिवलि लता = त्रिवली, पेट में पड़ी तीन रेखायें। जानधि = जानते हैं।

प्रसंगः– एक सखी नायिका के अनुपम रूप–सौंदर्य का वर्णन करती है।

व्याख्याः– विद्यापति ने चन्द्रमा का सार भाग लेकर उस राधा के मुख की रचना की जिसे देखते ही चकोर की आँखें चकित हुई। वाला ने (अपने मुख चन्द्र को) अंचल से पोंछ कर जो अमृत धो बहाया, वही (चाँदनी के रूप में) दशों दिशाओं में प्रकाशित हुआ। उस रमणी की सृष्टि किसने की (क्योंकि विधाता तो वृद्ध एवं रसविहीन हो गया है फिर ऐसी अनिध सुन्दरी आते समाप्त हो जाती है। सर्पिणी बिल में रहती है, यहाँ भी वह नाभिविल से निकलकर उत्तर चढ़ी है। अतः यह उपमा मनोरम और संगत बन पड़ी है।) कामदेव को पंचबाण कहते हैं, सो मदन ने (पाँच वाणों में से) तीन बाण तो तीनों लोकों में छोड़े, शेष उसके दो बाण रह गये। ब्रह्म बड़ा ही निष्ठर है (उन बचे हुए दो बाणों को) रसिकों की हत्या करने के लिए तुम्हारे नयनों को सौंप दिया। भाव यह है कि नायिका के नेत्र–कटाक्ष बाजा के समान मर्मभेदी प्रहार करते हैं जो भी उनका लक्ष्य बनता, वही घायल होता है। कवि विद्यापति कहते हैं– हे श्रेष्ठ सुन्दरी। यह रस कोई–कोई जानता है, रानी लखिमा देवी को प्रसन्न करने वाले रूपनारायण राजा शिवसिंह हो उस रस को भली प्रकार से जानते हैं।

विशेषः–

1. कविवर जायसी की रोमावलीविषयक कल्पना भी विद्यापति के इस रूपक से निमली जुलती है

   ''साम भुयंगिनी रोमावली नाभी निकसि केवल कहं चली।

   आई दुऔ नारंग बिच भई। देखि मयूर ठमकि रहि गई।।'

2. विद्यापति सदृश ही शृंगार कवियों ने नायिका के नेत्रों को रसिक जनों के हद का शिकार करने वाला कहा है। इसीसे सम्बन्धित निम्न दोहा ध्यान देने योग्य है–

   खेलन सिखए अलि भले, चतुर अहेरी मार।

   कानकचारी नैन मृग, नागर–नरनि शिकार–विहारी।।

   यहाँ 'काननचारी मृग' 'नागर–नरनि' का शिकार कर रहे हैं, किंतु भाव वही है।

3. अलंकार– (क) 'सुधामुखि.... माला' – अतिशयोक्ति उत्प्रेक्षा।

   (ख) 'कनक... खेला'– रूपकातिशयोक्ति।

   (ग) 'नाभि... पियासा'– रूपक और उत्प्रेक्ष्य।

   (घ) 'नासा.... भ्रन्तिमान' – भ्राप्तिमान।

   (ङ) 'कच .... निवासा' – काव्यलिंग।

1.4.1 स्व–मूल्यांकन (ख)

प्रिय विद्यार्थियों ! इस अध्याय में दी गयी व्याख्याओं का आपने अध्ययन किया है। इस अध्ययन से प्राप्त जानकारी के आधार पर आप निम्नलिखित शब्दों के अर्थ खोजें तथा उन्हें सुमेलित करें। यदि आप इसमें असमर्थ हैं तो निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

1. बेरि–बेरि = पुष्ट
2. सामरि = स्त्री
3. तर = दो पहाड़
4. पयोधर = बार–बार
5. मधुक मातल = मधु पीकर उनमल।
6. रंगनि = श्यामा–सुन्दरी
7. जुगल बैल = कामदेव
8. मनसिण = तले, नीचे

1.5 उत्तर कुंजी

- स्व–मूल्यांकन (क)

1. चन्द्रमा 2. विजयपाल 3. उत्तर देश 4. तीन शंख 5. पंच वाघ

- स्व–मूल्यांकन (ख)

1. बेरि–बेरि = बार–बार
2. सामरि = श्यामा–सुन्दरी
3. तर = तले, नीचे।
4. पयोधर = पुष्ट
5. मधुक मातल = मधु पीकर उनमल।
6. रंगनि = स्त्री
7. जुगल बैल = दो पहाड़
8. मनसिण = कामदेव।

1.6 पठनीय पुस्तकें

1. रासो विमर्श – माताप्रसाद गुप्त, प्रकाशन–1962, प्रकाशक साहित्य भवन।
2. रासो काव्य परम्परा – सुमन राजे, प्रकाशन–1973, प्रकाशक ग्रन्धाम कानपुर।
3. चन्दबरदाई और उनका काव्य – विपिन बिहारी, प्रकाशक–हिन्दुस्तानी अकादमी–1952।
4. विद्यापति – डॉ. आनन्द प्रकाश दीक्षित, प्रकाशिक–दिव्या प्रकाशन, ग्वाल्यिर।
5. विद्यापति – मनमोहन सहगल

'कबीर के पद' व 'नागमती वियोग खंड' : सप्रसंग व्याख्या

रूपरेखा

2.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

2.2 प्रस्तावना

2.3 'कबीर के पद' रू सप्रसंग व्याख्या

2.3.1 स्व–मूल्यांकन (क)

2.4 'नागमती वियोग खंड' रू सप्रसंग व्याख्या

2.4.1 स्व–मूल्यांकन (ख)

2.5 उत्तर कुंजी

2.6 पठनीय पुस्तकें

2.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम–

प्रिय विद्यार्थियों इस अध्याय का उद्देश्य आपको कबीर के पदों की व्याख्या' व 'नागमती वियोग खंड' की व्याख्या करके समझाना है।

अपेक्षित परिणाम– इस अध्याय का अध्ययन करने के पश्चात आप कबीर के पदों' व 'नागमती वियोग खंड' से पूर्ण परिचित हो सकेंगे।

2.2 प्रस्तावना–

प्रिय विद्यार्थियों ! इस अध्याय में कबीर के पदों' व 'नागमती वियोग खंड'की महत्वपूर्ण पंक्तियों की व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

2.3 कबीर के पदों की व्याख्या

(1) पीछे लगा जाइ था, लोक वेद के साथि।
आगे थैं सतगुरु मिल्या, दीपक दीया हाथि।।(1)
दीपक दीया तेल भरि बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहुणां, बहुरि न आवौं हट्ट।। (2)
कबीर गुरु गरवा मिल्या, रलि गया आटे लूंण।
जाति–पांति कुल सब मिटै, नांव धरौगे कौण।। (3)
सतगुरु हमसू रीझि करि एक कह्या परसंग।
बरस्या बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग।।(4)

शब्दार्थः– अघट्ट = कभी न घटने वाली, अक्षय। शरीर दीपक है, आयु तेल है और आत्मा अक्षय बनी है। बिसाहुणाँ = खरीदना। गुरु गवा मिल्या = गुरु गले मिले। लूँण = नमक। बहुरि = पुनः, फिर।

प्रसंगः– कबीर दास की इन साखियों में 'गुरु के महत्व का वर्णन किया गया है। सद्‌गुरु अपने ज्ञान द्वारा 'साधक' का पथ प्रकाशमय बनाता है, वही साधक के मन में परमेश्वर के प्रति प्रेम को जागरुक करने उसकी मनोवृति को उद्धीप्त करता है।

व्याख्याः– प्रस्तुत पंक्तियों में कबीरदास कहते हैं कि मैं तो लोक परम्परा का अनुकरण करते हुए वेदों का अन्धानुकरण कर रहा था, चूंकि मुझे सही गलत का कोई ज्ञान नहीं था, परन्तु सद्‌गुरु के कारण मुझे ज्ञान रूपी प्रकाश मिला जिससे मैं अपनी राह आसान कर अपने उद्देश्य तक पहुँच सकूँ। भाव यह है कि गुरु से प्राप्त किए गए ज्ञान द्वारा ही व्यक्ति अपने लिए सही राह चुनता है।

कबीरदास जी कहते हैं गुरु ने प्रेम रूपी तेल से भरी हुई तथा भक्ति रूपी कभी न कम होने वाली वाती (बत्ती) से उज्जवल होने वाला 'ज्ञान दीप' मुझको दिया है जिसकी रोशनी में मैं अपने सम्पूर्ण लौकिक कार्यों से विमुख होकर मुक्त हो गया हूँ। अतः अब इस जगत रूपी बाजार में मेरा पुनः लौटना असंभव है। कहने का तात्पर्य यह है कि सतगुरु साधक के मन में परमात्मा के प्रति स्नेह, भक्ति तथा जागरुकता उत्पन्न करता है जिसके परिणाम स्वरूप वह संसार की हकीकत का ज्ञान प्राप्त कर अग्रगामी बन जाता है।

कबीरदास जी पुनः कहते हैं कि मुझे ऐसा उदान्त गुरु मिला है जिसकी मेहरबानी से मैं अपने ईश्वर से ऐसा एकाकार हो गया जैसे आटे के भीतर नमक मिलकर एकनेक हो जाता है। साथ ही मेरी जात–पात कुल परिचय सब उसी में मिल गए हैं, अब मेरा अपना कोई अलग अस्तित्व नहीं रह गया है।

कवि कहते हैं कि सतगुरु ने मुझ से प्रसन्न होकर ईश्वरीय भक्ति का ऐसा रमणीय वर्णन किया है जिससे मेरे मन में अनुराग का बादल बरस गया तथा मेरा अंग–प्रत्यंग भीग गया। भाव यह है कि गुरु के कारण ही साधक के मन में परमात्मा के प्रति स्नेह की वर्षा होने लगती है।

विशेषः–

1. इन साखियों द्वारा कवि ने गुरु महत्व का वर्णन करते हुए कहा है कि सत्गुरु ही परमेश्वर की जीवात्मा की भेंट करवाता है।
2. जायसी की पंक्ति द्वारा भी गुरु की महत्ता का वर्णन मिलता है– ''बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।''
3. वेद और लोक के प्रति कवि की अपेक्षा यहां स्पष्ट झलकती है।
4. गुरु के उपदेश का महत्व तथा उनके परिणाम का निरुपण भी प्रस्तुत साखियों में है।
5. दीपक दीया ने रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।
6. कबीर की साखियों में सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग मिलता है।

(2) वे दिन कब आवैंगे माइ।
जा कारनि हम देहधरी है, मिलिबौ अंगि लगाइ।
हौ जांनूं जे हिल–मिल खेलूं, तन मन प्राण समाइ।
या कामना खरौ परिपूरन, समरथ हौ राम राइ।
मांहि उदासी माथौ चाहै, चितवन रैनि बिहाइ।
रोज हमारी स्यध भई है, जब सोऊं तब खाइ।।
यहु अरदास दास की सुनिये, तन की तपनि बुझाइ।
कहै कबीर मिलै जे साई, मिलि करि मंगल जाइ।।

शब्दार्थः– स्यंध = सिंह। देहधारी = प्राणी, जीवा। अंगि = शरीर, देह। समरथ =क्षमता। रैनि = रात। तपनि = गर्मी या तपिश।

प्रसंगः– प्रस्तुत पंक्तियों में कबीरदास जी ने ईश्वर से मिलाप की अभिव्यक्ति की है। आत्मा ने यह शरीर इसलिए भरण किया है जिससे वह परमेश्वर रूपी प्रिय से एकत्र होने का उल्लास पा सके परन्तु उसकी यह अभिलाषा अभी पूर्ण नहीं हो पाई है। जीवात्मा का मानना है जब वो परमात्मा को पा लेगी तभी उसकी तपन शांत होगी।

व्याख्याः– कबीरदास कहते हैं कि हे संगिनी! वह समय कब आएगा जब परमेश्वर से मेरा एकाकार हो जाएगा। इस ईश्वर को प्राप्त करने के लिए ही मैंने इस शरीर को धारण किया है न जाने कब मेरी यह इच्छा पूरी होगी जब प्रिय के अंग लगकर मिलन सुख को प्राप्त करूंगी। ऐ ईश्वर आप तो सक्षम हैं, मेरी इस आकांक्षा को शीघ्र ही सूपर्ण कीजिए।

कबीरदास जी कहते हैं प्रियतम के इंतजार में मुझे रात–दिन का पता ही नहीं चलता है मैं तो संसार से उदासीन होकर अपने प्रियतम को पाना चाहती हूँ। उनके बिना मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता है हे परमात्मा मेरी ये विनती सुनिए और तनि की तपन को शान्त होगी। कबीर जी कहते हैं यदि मुझे मेरा प्रियतम मिल गया, तो उसे पाकर मैं प्रसन्नता से मंगल गीत गाऊंगी।

विशेषः–

1. प्रिय परमात्मा से मिलने की आकांक्षा।
2. कबीर ने जीवात्मा–परमात्मा के मिलन का वर्णन दाम्पत्य प्रेम के आधार पर किया है।
3. इन पदों में भावात्मक रहस्यवाद की प्रवृति स्पष्ट झलकती है।
4. संधुक्कड़ी भाषा
5. श्रृंगार रस का प्रयोग।

(3) मेरी अंखियां जान सुजान भई।
देवर ननद सुसर संग तजि करि हरि पीव तहां गई।।
बालपनें के करम हमारे काटे जानि दई।
वाहं पकरि करि किरण कीन्ही आप समीप लई।।
पानी की बूंद थै जिनि प्यंड साज्या ता संगि अधिक रई।
दास कबीर पल प्रेम न घटई दिन–दिन प्रीति नई।।

शब्दार्थः– अंखिया = नेत्र, नयन, लोचन। सुजान = कुशल, निपुण, प्रवीण। करि = करना। हरि = भगवान, ईश्वर। पीव =घाव का मवाद, पस। तहां = उस स्थान। बालपने = बचपन, बाल्यकाल। बाहं = हाथ, बाजू।

प्रसंगः– प्रस्तुत पंक्तियों में कबीरदास जी ने जीवात्मा की उस अवस्था का चित्रण किया है, जब उसे ईश्वर का प्रेम प्राप्त हो जाता है तो वह प्रेम नित्यप्रति बढ़ता ही जाता है।

व्याख्याः– कबीर दास जी कहते हैं कि परमात्मा के स्नेह में अनुरक्त आत्मा कहती है कि मेरे नयन प्रियतम के दर्शन कर ज्ञानी एवं निपुण हो गए हैं। अब मैंने अपने रिश्ते नातों का साथ छोड़ परमेश्वर रूपी प्रिय का हाथ थाम लिया है अर्थात् संदेह, भांति एवं मोह को त्यागकर इस समय जीवात्मा प्रभु के पास चली गई है।

कवि पुनः कहते हैं कि परमेश्वर ने मेरे बुरे कर्मों का निर्वाण कर मुझे अपने समीप बुला लिया है। जीवात्मा का परमात्मा के इतना निकट जाने के कारण उसका प्रेम ईश्वर के लिए दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। वह कुछ समय के लिए भी कम नहीं होता है।

विशेषः–

1. कबीरदास ने इन पंक्तियों में जीवात्मा तथा परमात्मा का चित्रण किया है।
2. जीवात्मा को अपने सारे रिश्ते नातों एवं संदेह भ्रांति तथा मोह को छोड़कर ही ईश्वर की प्राप्ति होती है।
3. परमेश्वर ही हमें हमारे बुरे कर्मों से मुक्त करता है, जिसका वर्णन कबीर ने प्रस्तुत पदों में किया है।
4. प्रस्तुत पदों में सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग है।

(4) मोरे लगि गए बान सुरंगी हो।
धन सतगुरु उपदेस दियो है, होइ गयो चित्त भिरंगी हो।
ध्यान पुरुष की बनी है तिरिया घायल पांचों संगी हो।।
घायल की गति घायल जानै की जानै जान पतंगी हो।
कहै कबीर सुनो भई साधो, निसि दिन प्रेम उमंगी हो।।

शब्दार्थः– लगि = तक, पर्यंत, निकट, पास। सुरंगी = काकनारंग, कौआठोठी, सुलतान चंपा।

बान = बाण, तीर। चित्त = मन का सबसे भीतरी हिस्सा। भिरंगी = एक तरह का कीड़ा या भृंग। तिरिया = स्त्री या औरत। पतंगी = पक्षी, चिड़िया। उमंगी = जिसे उल्लायस हो, उल्लसित।

प्रसंगः– प्रस्तुत पंक्तियों में कवि कहता है कि जब गुरु उपदेश मन में बंध जाता है तब साधक का अंतः करण भृंगी कीट जैसा हो जाता है, प्रणय की इस स्थिति को कोई प्रिय ही समझ पाता है। कबीर ने प्रस्तुत पद में इसी का वर्णन किया है।

व्याख्याः– कबीरदास जी कहते हैं कि गुरु के कथन रूपी बाण मेरे मन में लग गए हैं, प्रशंसनीयध् है मेरे गुरु जिन्होंने मुझे ऐसी सीख दी है कि मेरा हृदय भृंगी कीट के समान अनवरत उसी में मग्न रहता है। मेरे पंच प्राण आहट हो गए हैं तथा आत्मा अपने इस परमात्मा के स्मरण में तन्मय होकर उसी की दासी बनकर रह गई है।

कबीरदास पुनः कहते हैं कि अनुराग की इस अद्भुत अवस्था को कोई भावुक प्रेमी ही जान सकता है। आहट की वेदना कोई चोटिल ही जान सकता है अथवा कोई प्रेम करने वाला पतंगा ही भली–भांति जान सकता है। जो स्नेह के कारण दीपक के पास आकर खुद को भस्म कर देता है। कवि कहते हैं कि सतगुरु ने उनके मन में प्रेम की ऐसी धारा बहा दी है जो रात–दिन बहती रहती है।

विशेषः–

1. बान का आशय है। उपदेश रूपी बाण अतः रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।
2. गुरु के कथनों का जो प्रभाव सच्चे शिष्य पर पड़ता है उसका चित्रण इन पदों में किया गया है।
3. सधुक्कड़ी भाषा के अन्तर्गत ब्रजभाषा के शब्दों की बहुलता है।
4. पांचों संगी से अभिप्राय पंच प्राण से है।

(5) **गुरु बड़े भृंगी हमारे गुरु बड़े भृंगी।**
कीटसों ले भृंग कीन्हा आपसों रंगी
पांव और कोई सब भये भृंगी और और रंगी रंगी।
जाति कला न लखें कोई सब भये भृंगी।
नदी–नाले गिले गंगै कहलावै गंगी।
दरियाव–दरिया जो सामने संग में संगी।

प्रसंगः– प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने गुरु की महानता का वर्णन किया है। गुरु ने कवि को ऐसी सीख दी है कि वह भृंगी कीट समान उसी रंग में रंग गया है। गुरु के कथनों को सुनकर कवि के मन की मलिनता समाप्त हो गई है और उसमें पवित्रता का समावेश हुआ है।

व्याख्याः– कवि कहते हैं कि मेरे सद्गुरु तो सच में भृंगी कीट के समान हैं जो दूसरे कीट के चारों ओर घूमकर उसे भी अपने ही जैसा बना लेते हैं। उनके मीठे वचनों को सुनकर कवि उन्हीं के रंग में रंग गया है। कवि कहते हैं कि मेरे गुरु ने मेरी जाति कुल पर चिन्तन मनन नहीं किया। बल्कि विपत्ति में मुझे भृंगी बनाकर अपने रंग में रंग डाला। मेरी सारी मलिनता ऐसे दूर हो गयी जिस प्रकार नदी–नाले जब पवित्र गंगा में मिलकर उसके समान पावन बन जाते हैं।

कबीरदास जी कहते हैं कि मेरे गुरु ने मेरे भीतर ऐसी उत्सुकता प्रदान की है जिससे मेरे अंतर्मन की चंचलता समाप्त हो गई है। अर्थात् मेरा गुरु में सम्पूर्ण भाव से समावेश हो गया है।

विशेषः–

1. प्रस्तुत पद में गुरु की महानता का वर्णन किया है।
2. भृंगी कीट दूसरे कीड़ों के चारों तरफ तब तक मंडराते रहते हैं जब तक वह उसे अपने रंग में न रंग दें।
3. सतगुरु बिना जाति कुल देख सबकी भलाई करता है।
4. सरदास ने भी लिखा है–

   इक नदिया इक नार कहावत मैलो नीर भरयो।

   जब दोउ मिलि एक बरन मैं सुरसरि नाम परयो।।
5. प्रस्तुत पद में सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग है।

2.3.1 स्व–मूल्यांकन (क)

प्रिय विद्यार्थियों ! इस अध्याय में दिए गए रिक्त स्थान भरकर अभी तक प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

1. कबीर कहते हैं कि इस जगत रूपी –––––––––– में मेरा पुनः लौटना असंभव है।
2. कबीर के अनुसार सतगुरु साधक के मन में परमात्मा के –––––––––––––––––––––––––––––––––– ––––––– उत्पन्न करता है।

3. कबीर कहते हैं कि परमेश्वर ने मेरे ———————————— का निर्वाण कर मुझे अपने समीप बुला लिया है।

4. कबीर के अनुसार किमेरे गुरु जिन्होंने मुझे ऐसी सीख दी है कि मेरा हृदय —————————————————— के समान अनवरत उसी में मग्न रहता है।

5. कबीरदास जी कहते हैं कि ——————————— ने मेरे भीतर ऐसी उत्सुकता प्रदान की है जिससे मेरे अंतर्मन की चंचलता समाप्त हो गई है।

2.4 जायसी ग्रंथावली : नागमती–वियोग खण्ड की सप्रसंग व्याख्या

(1) नागमती चितउर पंथ हेरा, पिउ जो गए फिरि कीन्ह न फेरा।1।
नागरि नारि काहुं बस पय। तेइ विमोहि मोसौ चितु हरा।2।
सुवा काल होइ लै गा पीऊ। पिउ नहिं लेत लेत बरू जीऊ।3।
ए नरायन बावन करा। राज करत बलि राजा छरा।4।
करन बान लीन्हेउ कै छदू। भारय ए झिलमिल आनंद।5।
मानत भोग गोपीचंद भोगी। लै उपसवा जलंधर जोगी।6।
लै कान्हहि का अकरूर अलोपी। कठिन विछोड़ जिअै किमि गोपी।7।
सारस जोरी किमि हरी मारि ए किन खग्गि।
झुरि झुरि पांजरि धनि भई बिरह के लांगी अग्गि।।30/9।।

शब्दार्थः— चितउर = चितौड़। हेरा = देखने लगी।नागरि = चतुर स्त्रीं। विमोही =मोहित करके बस = वश में बावन करा = विष्णु का वामन अवतार द्वारा छल करना और राजा बलि को पाताल बेजना। करन = राजा कर्ण।भारथ = महाभारत।झिलमिल = कवच।उपसवा = समीप ले गया।अकरूर = अक्रूर, जो श्रीकृष्ण को गोकुल से मथुरा लिवा ले गए थे।किमि = कैसे।पांजरि = पिंजर, हड्डियों का ढांचा। झुरि = सूखकर।

संदर्भः— इससे पूर्ववर्ती खण्डों में कवि ने रत्नसेन और पदमावती संबंधी वृत्तान्त का चित्रण किया है। प्रस्तुत खण्ड में वह कथानक को चितौड़ की ओर मोड़ता है और विरहिणी नागमती की विरहावस्थाा का वर्णन करता है।

सप्रसंग व्याख्या—कवि कहता है कि उधर चितौड़ में नागमती रत्नसेन के प्रत्यागमन के मार्ग की ओर देखती हुई उसके लौटने की प्रतीक्षा करते रहती थी और सोचती रहती थी कि मेरे प्रियतम यहां से एक बार क्या गए कि उन्होंने लौटकर आने का नाम तक नहीं लिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे किसी चतुर नारी के वशीभूत हो गए हैं और उसने उनको मोहित करके, उनके हृदय को मेरी ओर से अपछत कर लिया है, उनके हृदय में वह स्वयं बस गई है। वह तोता (हीरामन) मेरे लिए काल तुल्य बनकर मेरे प्रियतम को मुझसे विलग करके अपने साथ लिवा गया है। उस तोते को मेरे प्रियतम को नहीं ले जाना चाहिए था चाहे उसके स्थान पर वह मेरी जान ले लेता। वह तोता तो मेरे प्रति उसी प्रकार छली सिद्ध हुआ है, जैसे राजा बलि के साथ वामन ने छल किया था (उनको स्वर्ग के स्थान पर पाताल भेज दिया था।) उसने इन्द्र की भांति छल करते हुए कर्ण से उसके अमोध वाणों को छलपूर्वक लेने के तुल्य मेरे पति को छलपूर्वक मुझसे विमुक्त किया है और जैसे महाभारत के युद्ध में कर्ण को संत्रस्त देखकर इन्द्र प्रसन्न हुआ था, वह भी उसी प्रकार प्रसन्न हो रहा होगा। राजा गोपीचन्द राजसी वैभवों के उपभोग में निमग्न रहते थे, किन्तु जिस प्रकार उनको जालधर योगी अपने साथ लिवा ले गए थे, उसी प्रकार राजसी भोगों में लिप्त मेरे प्राणेश्वर को हीरामन लिवा ले गया है। वह तोता मेरे प्रियतम को अपने साथ ले जाकर उसी प्रकार विलुप्त हो गया है, जैसे श्रीकृष्ण को अक्रूर अपने साथ मथुरा ले गए थे और अब मुझ विरहीणी का जीवित रहना उसी प्रकार दुष्कर हो गया है जैसे

कृष्ण के वियोग में गोपियों का जीवन दूभर हो गया था।

नागमती अंतर्विलाप–सा करते हुए कहने लगी कि अरे तोते। तूने हमारी सारसों की जैसी जोड़ी को भंग किया है, इससे अच्छा तो यह रहता कि तू खड्ग द्वारा मेरी हत्या कर देता। अब तो मेरी काया में ऐसी विरहाग्नि खलती रहती है कि उसमें जलकर मेरा शरीर झूर–झूर हो उठा है। उसमें रचमात्र भी सत्व वहीं नया है।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) वामन करा– एक पौराणिक कथा के अनुसार राजा बलि महादानी थे और उन्होंने स्वर्ग का राज्य प्राप्त करने की कामना से 99 यज्ञ पूर्ण कर लिए थे। यदि उनका एक यज्ञ और निर्वहन पूरा हो जाता तो वे स्वर्ग के राजा बन जाते। देवताओं में इस तथ्य को लेकर खलवली मच गई क्योंकि राजा बलि का दैत्य–कुल से सम्बन्ध था। देवों द्वारा प्रार्थना किए जाने पर विष्णु ने वामन का रूप धारण करके राजा बलि से ढाई पग भूमि की मांग की थी और राजा बलि द्वारा इस मांग को स्वीकार कर लेने पर एक कदम से आकाश, दूसरे में पाताल को नाप लिया था। उनका तीसरा कदम सम्पूर्ण पृथ्वी से बढ़कर था अतः राजा बलि स्वयं भी लेट गए थे कि आप मेरे शरीर को भी नापकर अपना कदम पूरा कीजिए। इस प्रकार विष्णु ने राजा बलि के साथ छल करके बलि को पाताल का राजा बना दिया था। इस विषय में एक कहावत भी प्रसिद्ध है.....

''मन चाही ना होति है प्रभु चाही तत्काल।
बलि चाहा था स्वर्ग को भेजि दिया पाताल।''

(2) करन बान लीन्हेउ कै छंदू– महाभारत संबंधी एक प्रसंग के अनुसार सूर्य–पुत्र कर्ण का जन्म दिव्य कवच और कुंडलों के साथ हुआ था। इसके साथ ही उसके पास पांच अमोध बाण भी थे जिनसे कर्ण दूर्योदन की ओर से युद्ध करते हुए पांचों पांडव–भ्राताओं को मारना चाहता था। अर्जुन के पिता इन्द्र इस बात को सोचकर बड़े दुखी थे और उन्होंने अंततः छल का आश्रय लिया कि एक ब्राह्मण के वेश में कर्ण से उसके कवच–कुंडल और अमोध वाणों को दान के रूप में मांग लिया और महादानी कर्ण ने इन वस्तुओं को प्राणधिक मूल्यवान होते हुए भी इन्द्र को सौंप दिया। दान के भार से इन्द्र का रथ जब आकाश की ओर नहीं उड़ सका तो इन्द्र को एक अमोध बाण कर्ण को देने के लिए विवश होना पड़ा। कर्ण संतुष्ट था कि इस बाण से मैं अपने प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी अर्जुन की हत्या कर दूंगा, किन्तु श्रीकृष्ण की चाल के कारण कर्ण को अपने इस अमोध बाण को भी भीमसेन और हिडिम्बा के पुत्र घटोत्कच पर छोड़ने को विवश होना पड़ा था और वह स्वयं अर्जुन के हाथों मारा गया था। नागमती का अभिप्राय यह है कि मेरे पति का महत्व मेरे लिए उसी प्रकार प्राणाधिक था जैसे कर्ण के लिए उसके बाणों और कवच का था।

साहित्यिक सौन्दर्य – दृष्टांत, रूपक, अलंकार

(2) पिउ वियोग अस बाउर जीऊ। पपिहा तस बोलै पिउ पीऊ।1।
अधिक काम दगधै सो रामा। हरि जिउ लै सो ए पिय नामा।2।
बिरह बान तस लाग न डोली। रकत पसीज भीजि तन चोली।3।
सखि हिय हेरि घर मैन मारी। हहरि परान तजै अब नारी।4।
खिन एक आव पेट महं स्वांसा। खिनहि जाइ सब होइ निरासा।5।
पौनु डोलावहिं सीचहिं चोला। पहरक समुझि नारि मुख बोला।6।
प्रान पयान होत केइं राखा। को मिलाव चात्रिक कै भाखा।7।
आह जो मारी विरह की आगि उठी तेहिं हांक।
हंस जो रहा सरीर महं पांचख जरे तन पाक।।30ध्2।।

शब्दार्थः–बाउर = बावला। तस = उस प्रकार। दगधै = जलाता। रामा = स्त्री। मैन = कामदेव। हहरि = हाथ छोड़कर। खिन = क्षण। पहरक = एक पहर। समुझि = होश में आकर। पयान = गमन। चात्रिक = चातकी।

संदर्भः– नागमती की वियोगावस्था का वर्णन किया गया है।

सप्रसंग व्याख्या–कवि कहता है कि अपने प्राणेश्वर के वियोग में पद्मावती बावली–सी हो गई और उसके मुख से सदैव पपीहे की भांति पिउ–पिउ की ध्वनि निकलती रहती थी। उस रमणी को काम अत्यधिक प्रपीड़ित करने लगी। हीरामन मानो उसके प्रियतम के रूप में उसके प्राणों को ही अपहत कर ले गया था। उसे ऐसा विरह–रूपी वाण लगा हुआ था कि वह हिल–डुल भी नहीं सकती थी और रक्त के पसीजने के कारण उसकी चोली सदैव गीली रहती थी। उसको देखकर सखियां सोचने लगी कि अब यह नारी कामदेव द्वारा परास्त की जा चुकी है– इस पर कामदेव ने विजय प्राप्त कर ली है और अब कांप–कांपकर अपने प्राण छोड़ देगी। उसे एक क्षण के लिए श्वास आता था और उसके उदर में स्पन्दन होता था, किन्तु क्षण भर में ही वह श्वास निकल जाता था जिससे उसकी समस्त सखियां निराश हो उठती थीं। उसको बेहोश दुई देखकर सखियां उस पर पंखे से हवा करते हुए, उसकी चोली पर जल छिड़कने लगीं, तब कहीं जाकर एक प्रहर के बाद नागमती कुछ सचेत हुई और यह समझते हुए कि मैं अपनी परेशान सखियों से घिरी हुई हूँ, उसके मुख से कुछ शब्द निकले। वह कहने लगी कि अपने प्राणेश्वर के वियोग में मेरे उड़ते हुए प्राण–पखेरूओं को किसने और क्यों उड़ने से रोक दिया है। अब मुझ चातकी का स्वप्रियतम–स्त्री मेघ से कौन सम्मिलन करायेगा।

कवि कहता है कि विरहिणी नागमती ने जब आह भरी तो उसकी आह के साथ–साथ आग निकलने लगी। उस विरहाग्नि के कारण नागमती के शरीर में जीव रूपी जो हंस विद्यमान था उसके पंख जल उठे जिससे उड़ नहीं सका– उसका आत्मा–रूपी हंस पंख जल जाने के कारण उड़ने में असमर्थ होकर उसके शरीर में ही रह गया।

साहित्यिक सौन्दर्यः– उत्प्रेक्षा, रूपक, उपमा, अलंकार

(3) पाट महादेई हिएं न हारु। समुझि जीउ चित चेतु संभारु।1।
भंवर कवल संग होइ न परावा। संवरि नेह मालति पहं आवा।2।
पीउ सेवाति सौं जैस पिरीती। टेकु पियास नाथु जय थीती।3।
धरती जैस गंगन के नेहा। पलटि भरै नरखा रितु मेहा।4।
पुनि बसंत रितु आव नवेली सो रस सो मधुकर सो बेली।5।
जनि अस जीउ करसि नवेली नारी। दहि तरिवर उठहिं संभारी।6।
दिन दस जल सूखा का नंसा। पुनि सोइ सरवर सोइ सरवर सोई हंसा।7।?
मिलहि जो विछुरै साजवा गहि गहि भेट महत।
तपनि मिरगिसिरा जे सहहिं अद्रा ते पलुहंत।।30/3।।

शब्दार्थः– पार महादेई = महारानी की पदवी वाली पटरानी।चेतु संभारु = होश सम्हाला।परावा = दूसरा।संवरि नेह = प्रेम का स्मरण करके।सेवाति = स्वाति नक्षत्र। पिरीती = प्रेम।टेकु = आप्रय। चीति = स्थिति। पियास = पियासा, प्रियतम की आशा।जियचीति = जीवन रूपी धरोहर।नेहा = प्रेम।मेहा = वर्षा।जनि = नहीं।सरवर = सरोवर दहि = जलकर।गहंत = ग्रहण करना।मिटगिसिरा = मृगशिय नामक नक्षत्र।अद्रा = आद्रां नामक नक्षत्र।पलहुंत = पल्लवित, हरे–भरे।नंसा = नाश।

संदर्भः– नागमती की विरह अनुभूतियों का वर्णन किया गया है।

सप्रसंग व्याख्या– नागमती को समाश्वासन देते हुए उसकी सखियां कहने लगी कि हे रानी। आप इस प्रकार हिम्मत मत हारिए अपितु हृदय में सोच–विचार कर अपने चौतन्य की रक्षा कीजिए अर्थात् अपने होशहवास मत खोइये। हे महारानी आप यह विश्वास रखिए कि जिस प्रकार भ्रमर कमल के समीप जाकर भी अंततः मालती के प्रेम का स्मरण करके उसके समीप लौट आता है उसी प्रकार आपके प्राणेश्वर भी पद्मावती–रूपी कमल के पास जाकर भी अंततः आपके समीप लौट आएंगे। सुप्राणेश्वर रूपी स्वाति–नक्षत्र के प्रति आपका जैसा दृढ़ प्रेम–भाव है, उसको ध्यान में रखते हुए अपनी काम–पियासा को वशवर्तिनी रखिए और प्रियतम के लौटने की आशा का सहारा लेकर अपने हृदय में धैर्य धारण रखिए। जिस प्रकार पृथ्वी आकाश के प्रेम भाव में निमग्न रहती है तो आकाश उसको वर्षा ऋतु में जल से ओत–प्रोत कर देता है– उस पर स्नेह की वर्षा करता है उसी प्रकार तुम भी अंततः स्व–पति का स्नेह प्राप्त करोगी। इसी प्रकार पृथ्वी आकाश के प्रेम भाव में निमग्न रहती है तो आकाश उसको वर्षा ऋतु में जल से ओत–प्रोत कर देता है– उस पर स्नेह की वर्षा करता है, उसी प्रकार तुम भी अंततः स्व–पति का स्नेह प्राप्त करोगी। इसी प्रकार तुम्हारे जीवन में पुनः वही बसन्त ऋतु आएगी, जिसमें समस्त प्रकार के सुख–भोग होंगे, और तुम्हारे पति–रूप भ्रमर द्वारा लता रूप तुम्हारा मकरूद पान किया जाएगा। हे महारानी। आप अपना हृदय इस प्रकार क्यों दुखी और खट्टा कर रही हैं, आप यह सोचकर धैर्य क्यों नहीं धरा करतीं कि ग्रीष्म ऋतु में दग्ध हुए वृक्ष वसन्त ऋतु के आगमन से पुनः हरे हो उठते हैं– उनमें नयी नयी कोंपल फूट पड़ती हैं। यदि इस दिवस तक जल सूख भी जाता है, अर्थात् यदि आपका स्व–पति से कुछ दिनों के लिए मिलन नहीं भी हो पाता है, तो क्या हुआ, क्योंकि बाद में तो वही सरोवर और वे ही हंस होंगे अर्थात् तुम्हारा मिलन होकर ही रहेगा।

हे महारानी आप इस तथ्य को भी विस्मृत मत कीजिए कि वियोग के पश्चात् मिलन की आशा बहुत अधिक बढ़ जाया करती है और बिछुड़े हुए पति बड़े ही उल्लासपूर्वक मिलते और आलिंगन करते हैं– वे ही आर्द्रा नक्षत्र की घोर वर्षा में पल्लवित पुष्पित हुआ करते हैं– उन्हीं पर पति–प्रेम की ओर वर्षा हुआ करती है।

साहित्यिक सौन्दर्यः– रूपक, अर्थान्तरूपास, उपमा, रूपक अलंकार।

(4) चढ़ा असाढ़ गंगन धन गाजा। साजा दुंद दल बाजा।1।
धूम स्याम धीरे घन धाए। सेत धुजा बगु पांति देखाए।2।
खरग बीज चमकै चहूं ओरा। बुंद बान बरिसै धन घोरा।3।
अद्रा लाग बीज भुई लेई। मोहि पिय बिनु को आदर देई।4।
ओनै घटा आई चहूं फेरी। कतं उबारू सदन हौं घेरी।5।
दादुर मोर कोकिला पीऊ। करहिं बेस घट रहै न जीऊ।6।
पुख नछत्र सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नांह मंदिर को छावा।7।
जिन्ह घर कंता ते सुखी तिन्ह गारौ तिन्ह गर्व।
कंत पिपारा वाहिरें हम सुख भूला सर्व।।30/4।।

शब्दार्थः– गाजा = गरजने लगे।दुंद = युद्धधूम = धुएं के रंग के।धौरे = श्वेत। धुजा = ध्वजा।बगु = बगुला।बीज = बिजली।ओनै = झुक आई, उमड़ उठी।फेरी = ओर।उवारु = रक्षा करो।दादुर = मेंढ़क। बेझ = वेथ, निराशा लगाना।पुख = पुण्य, नक्षत्र। नांह = पति। मन्दिर = भवन। गारौ = गौरव।

संदर्भः– नागमती की विरहावस्था का वर्णन किया गया है।

सप्रसंग व्याख्या–आसाढ़ का महीना आया तो आकाश में बादलों की गर्जन होने लगी, जो नागमती को ऐसी प्रतीत हुई कि विरह ने युद्ध की तैयारी की है और उसकी सेना ने कूंच का नगाड़ा बजाया है। धुमैले, काले और भूरे

रंग के बादल आकाश में दौड़ने लगे और उनमें उड़ती हुई बगुलों की पंक्तियां उनकी ध्वजाओं जैसी प्रतीत होने लगीं। खड़ग रूपी बिजली चारों ओर धमकने लगी और वर्षा की बूंद रूपी बाणों की घनघोर वर्षा होने लगी। आर्द्रा नक्षत्र के लगते ही बिजली चमककर भूमि को छूने लगी। नागमती सोचने लगी कि ऐसे विरहोप्रेजक वातावरण में प्रियतम की अनुपस्थिति में मुझको कौन समादर देगा– अर्थात् मेरी कुछ भी पूछ नहीं रही है जबकि पति के यहां होने पर ऐसे उन्मादक वातावरण में अवश्य ही काम के लिए मेरी मनुहार करते। चारों ओर उमगे हुई घटाएं पृथ्वी पर झुकी–सी प्रतीत होती हैं, जिन्हें देखकर मेरी कामोतेजना और भी अधिक बढ़ उठती है। हे प्राणनाथ! आप शीघ्र ही आकर मेरी रक्षा कीजिए क्योंकि मुझको कामदेव की सेना ने घेरा हुआ है, मेंढक, मयूर और कोयल के शब्द तो मुझे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो मेरे हृदय को वेधे डाल रहे हैं और मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। अब तो पुण्य नक्षत्र सिर पर आ गया है जो इस बात का द्योतक है कि और भी अधिक वर्षा होगी। मेरे तो पति भी यहां नहीं हैं अतः मेरे भवन पर छप्पर कौन छवाएगा।

स्व–प्रियतम की स्मृति में निमग्न होते हुए नागमती रूदन करने लगी कि हे प्राणेश्वर जिन स्त्रियों के पति उनके घर में हैं वे गर्व और गौरव की भावना से अभिभूत हैं, जबकि आपके परदेश में होने के कारण मेरा पति–प्रेम संबंधी गर्व और गौरव तो मिट्टी मे मिट ही गया है, मैं अपने समस्त प्रकार के सुखों को भी भूल चुकी हूं।

साहित्यिक सौन्दर्य–

1. जायसी के वियोग–वर्णन की यह विशेषता ही कही जाएगी कि उनकी नागमती अपने रानीपन को भूलकर किसी सामान्य नारी की भांति यह कहकर विषादमग्न हो उठती है कि इस घोर वर्षा–काल में, पति की अनुपस्थिति में मेरे भवन पर कौन छप्पर डालेगा।
2. सांगरुपक अलंकार।

(5) सावन वरिस मेह अति पानी। भरनि भरइ हौं बिरह झुरनि।1।
लागु पुनर्वसु पीउ न देखा। मैं बाउरि कहं कंत सरेखा।2।
रक्त के आंसु परे भुईं टूटी। रेंगि चली जनु बीर बहूटी।3।
सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला। हरियर भुइं कुसंभि तन चोला।4।
हिय हिंगेल जस डोलै मोरा। बिरह झुलावै देइ झंकोटा।5।
वाट असूम अथाह गंभीरा। जिउ बाउर भा भवै भंभीरा। 6।
जग जल बूड़ि जहां लगि ताकी। मोर नाव खेवक विनु पाकी।7।
परबत समुंद्र अगम विच बन बेहड़ घन दंख।
किमि करि भेटौं कंट तोहि ना मोहि पांव न पंख।।30६5।।

शब्दार्थः– अति पानी = अत्यधिक। भरनि = मूसलाधार वृष्टि। पुनर्वसु = नक्षत्र, विशेष। बाउरि = बावली। सरेखा = समान।रकत = रुधिर। असूझ = जहां कुछ दिखाई न दे।ताकी = देखना। खेवक = मल्लाह। वूड़ि = डूबना। ढख = ढाक।किमि करि = किस प्रकार।बेहड़ = कठिन।

संदर्भः– बारहमास– वर्णन में नागमती की विरहावस्था का वर्णन किया गया है।

सप्रसंग व्याख्या– बारहमास– वर्णन के अंतर्गत विरहिणी नागमती की विरहावस्था का वर्णन करते हुए जायसी कहते हैं कि सावन के महीने में जोरदार वर्षा होने लगी। एक ओर तो मूसलाधार वृष्टि हो रही थी जबकि बेचारी नागमती विरहाग्नि में झुलसती जा रही थी। नागमती सोचने लगी कि पुनर्वसु नामक नक्षत्र लग गया है किन्तु मैं अब

तक स्व–पति के दर्शन प्राप्त करने में असफल रही हूं। यह सोच–समझकर मैं बावली हो चुकी हूं कि न जाने मेरे चतुर प्रियतम कहां रह रहे हैं– अथवा यह कि प्रियतम के समान और कौन सुखदायक हो सकता है। मेरे नेत्रों से रक्त के आंसू भूमि पर टूट–टूटकर गिरते रहते हैं जो ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो वीर बहूटियां रेंग रही हों, मेरी सखियों ने अपने–अपने प्रियतमों के साथ हिंगेले डाले हुए हैं। वसुन्धरा पर चारों ओर हरितिमा छाई हुई है जबकि उन्होंने भी कुसुम्भी रंग के चोले धारण किए हुए हैं। सखियों को अपने प्रियतमों के साथ हिंगेलों पर झूलते देखकर मेरा हृदय भी विरह–भाव के हिंगेले पर घूमने लगता है और विरह मुझको झोंटे और झंकोरे देता हुआ इस झूले पर झुला रहा है, झंकझोर–झंकझोर कर झुला रहा है झुलने वाले को ठीक प्रकार से झोरे से गिर जाए झंकोरे देना कहलाता है। मुझे अपने पति से सम्मिलन का मार्ग बड़ा ही असूस, अघाह और अत्यधिक गंभीर लग रहा है और मेरा हृदय बावला होकर भंभीरी की भांति घूम रहा है। जहां तक भी पृथ्वी दिखाई पड़ती है, वह जल में डूबी हुई है। ऐसे घनघोर वर्षा–काल में जहां चारों ओर पानी–ही–पानी दृष्टिगत होता है मेरी जीवन रूपी नौका को पार लगाने वाला मल्लाह, पति के अभाव में और कौन हो सकता है।

स्व–प्रियतम को संबोधित करती हुई नागमती कहने लगी कि हे प्राणनाथ। मेरे और तुम्हारे मध्य अनेक अगम्य पर्वत और समुद्र तथा बीहड़ वनों और सघन ढाक के वनों के अन्तराल (दूरी) है। मैं आपसे कैसे आकर मिलूं क्योंकि न तो मेरे पैर ही हैं और न पंख ही हैं जिनकी सहायता से मैं उड़कर आपसे आ मिलूं।

साहित्यिक सौन्दर्यः–

1. दोहे में व्यक्त विरह–भाव बड़ा ही मार्मिक और करूणोलेजक है।
2. 'भरनि.... झुरानो– में विरोधाभास अलंकार।
3. 'रेंगि.... बहूटी– में उत्प्रेक्षा अलंकार।
4. 'दिप..... मोरा' में उपमा अलंकार
5. 'मोर.......... थाकी' में रूपक अलंकार।

2.4.1 स्व–मूल्यांकन (ख)

प्रिय विद्यार्थियों! इस अध्याय में दी गयी व्याख्याओं का आपने अध्ययन किया है। इस अध्ययन से प्राप्त जानकारी के आधार पर आप निम्नलिखित शब्दों के अर्थ खोजें तथा उन्हें सुमेलित करें। यदि आप इसमें असमर्थ हैं तो निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

1. चितउर = सूखकर
2. हेरा = देखने लगी चतुर स्त्रीं
3. नागरि = देखने लगी
4. झुरि = चितौड़
5. पिरीती = जीवन रूपी धरोहर।
6. जियचीटी = प्रेम
7. नेहा = बगुला

8. मेहा = वर्षा
9. बगु = बिजली
10. बीज = प्रेम

2.5 उत्तर कुंजी

- स्व–मूल्यांकन (क)

1. बाजार 2. प्रति स्नेह, भक्ति तथा जागरुकता 3. बुरे कर्मों 4. भृंगी कीट 5. मेरे गुरु

- स्व–मूल्यांकन (ख)

1. चितउर = चितौड़
2. हेरा = देखने लगी
3. नागरि = चतुर स्त्रीं
4. झुरि = सूखकर
5. पिरीती = प्रेम
6. जियचीटी = जीवन रूपी धरोहर।
7. नेहा = प्रेम
8. मेहा = वर्षा
9. बगु = बगुला
10. बीज = बिजली

2.6 पठनीय पुस्तकें

1. कबीर– हजारी प्रसाद द्विवेदी, 1942 ई. – प्रकाशक हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय 09, मुंबई।
2. कबीर साहित्य की परख–परशुराम चतुर्वेदी, 1954 – भारती भंडार।
4. जायसी ग्रन्थावली – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 1924 – नागरी प्रकाशिण सभा, वाराणासी।
5. पद्मावत का काव्य वैभव– मनमोहन गौतम, 1974 – मलिक मिलाना ऑफ इण्डिया।
6. मलिक मोहम्मद जायसी और उनका काव्य – शिव सहाय पाठक, 1984 – साहित्य भवन, इलाहाबाद।

'भ्रमरगीत सार' व 'अयोध्या कांड' की सप्रसंग व्याख्या

रूपरेखा

3.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
3.2 प्रस्तावना
3.3 भ्रमरगीत सार : सप्रसंग व्याख्या
3.3.1 स्व–मूल्यांकन (क)
3.4 अयोध्या कांड रू सप्रसंग व्याख्या
3.4.1 स्व–मूल्यांकन (ख)
3.4 उत्तर कुंजी
3.5 पठनीय पुस्तकें

3.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम–

प्रिय विद्यार्थियों ! इस अध्याय का उद्देश्य आपको 'भ्रमरगीत सार' में अभिव्यक्त गोपियों के विरह व कवितावली के 'अयोध्या कांड' से अवगत करवाना है

अपेक्षित परिणाम– इस अध्याय का अध्ययन करने के पश्चात आप 'भ्रमरगीत सार' में अभिव्यक्त गोपियों के विरह व कवितावली के 'अयोध्या कांड' से पूर्ण परिचित हो सकेंगे।

3.2 प्रस्तावना–

प्रिय विद्यार्थियों ! इस अध्याय में 'भ्रमरगीत सार' व कवितावली के 'अयोध्या कांड' की महत्वपूर्ण पंक्तियों की व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

3.3 भ्रमरगीत सार : सप्रसंग व्याख्या

(1) गोकुल सबै गोपाल–उपासी
जोग–अंग साधत जे ऊधो ते सब बसत ईसपुर कासी।
यद्यपि हरि हम तजि अनाथ करि तदपि रहति चरननि रसरासी।
अपनी सीतल न छोड़त यदि्प है ससि राहु गरासी।
का अपराध जोग लिखि पठवत प्रेमभजन तजि करत उदासी।
सूरदास ऐसी को बिरहिन मांगती मुक्ति ताजे गुनरासी।।

शब्दार्थ:–उपासी– उपासना, अर्चना पूजा करते है।जोग– अंग–अष्टाँग योग। बसत रहते है।ईसपुर– महादेव की तगरी। रसरासी–प्रम में पगी हुई है तथापि = तो भी। ससि–चन्द्रमा गरासी =ग्रसित होता है। पठवत =भेजा है।उदासी= उदासीन, विरक्त। गुनरासी= सुखों की खान

प्रसंगः– उद्वव जी के ज्ञान योग के के उपदेश को सुनकर गोपियों में अनेक प्रकार की प्रतिक्रिया हुई। उद्वव की योग–स्थापना के विरुद्ध गोपियाँ अपने प्रेम मार्ग की श्रेष्ठता प्रतिपादित करती है। उनके मत में श्रीकृष्ण की रुप राशि और बंसी की धुन के आगे आठों महासिद्धियों के प्राप्त सुख भी तुच्छ है, प्याज्य है। इस पद में वह उद्धव से पूछ रही है कि उनके किस अपराध के कारण कृष्ण ने उनके लिए योग का संदेश लिख कर भेजा है।

व्याख्या– हे उद्वव। गोकुल में सब नर–नारी गोपालक श्रीकृष्ष के उपासक है, उसी की रुप राशि में रसलीन हैः जो जन अष्टॉग योग की साधना करते है वह शिव जी की नगरी काशी में निवास करते है यहाँ उनका कोई कार्य नहीं। यद्यपि श्रीकृष्ण ने हमे त्याग दिया है और इस प्रकार हम अनाथ हो गई हैं तो भी हमें उनेक चरणो में रति है, उनके चरणों की रुप राशि में हम पगी हुई है, उनमें ही हमरा अनुराग है, यह उसी प्रकार सम्भव है जिस प्रकार चन्द्रमा राहु द्वारा ग्रसे जाने पर भी अपना स्वाभाव गुण–संसार को शीतलता प्रदान करना नहीं छोड़ता। उसी प्रकार कृष्ण को यह अधिकार है कि वह हमें त्याग दे किन्तु हम अपना स्वभाव, धर्म नहीं छोडेंगी। उनके चरणों मे ध्यानस्थ ही रहेगी। हमारी समझ में नहीं आता कि हमारे किस अपराध के कारण दण्ड के रुप में कृष्ण ने हमारे लिए योग का संदेश लिख भेजा ऐ। इस प्रकार हमें हरि भक्ति छोड़ने को कह कर संसार से विरक्त करना चाहते है। सूरदास जी कहते है कि यहाँ ब्रज में ऐसी कौन सी विरहिणी है जो गुणों की खान श्री कृष्ण को छोड़कर मुक्ति की कामना करती हो, अर्थात गोपियाँ श्री कृष्ण प्रेम के सम्मुख निर्गुणोपासना से प्राप्त मुक्ति का कोई महत्व नहीं समझती।

विशेष—

1) अन्तिम पंक्ति में निवृतिमार्ग से प्रवृति मार्ग की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है। प्रवृति को ही महत्व देने के कारण गोपियाँ 'सायुज्य' नही अपितु सामीप्य चाहती है। इस प्रकार भक्त मुक्ति की आकाँक्षा न करके भगवत–प्रेम में लीन रहना चाहता है। मुक्ति की कामना तो योग–मार्गी साधक ही करते है।

2) "ईस पुर कासी" का अत्यन्त सुन्दर साभिप्राय प्रयोग हुआ है। काशी आरम्भ से ही योगियों का गढ़ रही है, फिर शिव से इसका सम्बन्ध जोड़ने से इस पंक्ति की व्यंजना शक्ति बढ़ जाती है क्योंकि योगियों के सभी सम्प्रदायों–विशेषतया नाथों का शिव एंव शैव सम्प्रदाय से प्रर्याप्त सम्बन्ध रहा है।

3) रत्नाकर की गोपियों ने भी स्पष्ट कहा है कि जब वह "मोहनलता" पर "मन मानिक" वार चुकी है तो उनके सम्मुख मुक्ति–मुक्ता का "मोल" ही क्या है इसी कारण–

   वाही मुख मंजुल की यहति नरीचौ सदा,

   हमको तिहारी ब्रह्म ज्योति करिनो कहा

4) वस्तुतः गोपियां ज्ञान–योग से प्राप्त निर्गुण ब्रह्म का विरोध न करके

स्वयं को उसका अधिकारी नहीं समझती। इससे यह सिद्द होता है कि सूर योग आदि से प्राप्त निर्गुण ब्रह्म के विरुद्ध न होकर उसके लिए अधिकारी भेद स्वीकार करते थे।

5) "जोग–अंग" योग के अष्टांग–साधनों के लिए प्रयुक्त हुआ है जो इस प्रकार है–

   धारणा, ध्यान, समाधि।
   अलंकार– उदाहरण "ससिराहु गरासी"।

(2) जीवन मुँहचाही को नीको।
द परस दिनरात करति है कान्ह पियारे पीको,
नयनव मूंदि–मूंदि किन देखो बँध्यो ज्ञान पोधीको।
आछे सुन्दर स्याम मनोहर और जगत सब फीको।
सुनो जोग को का लै कीजै यहाँ ज्यान है जीको?
खाटी मही नहीं रुचि मानै सूर खवैया घी को।।22।।

शब्दार्थः–मुँहमारी–प्रियतम को प्रिय लगने वाली प्रेमिका। नीको = अच्छा, सुन्दर। दरस = दर्शन। परस = स्पर्श। कान्ह = कन्हैया। ज्ञान पोथी को = पुस्तक से प्राप्त ज्ञान। आछे = अच्छे। जगत = संसार फीको = तुच्छ, त्याज्य। ज्यान= हानि। मही = मट्ठा, छाछ। खवैया = खाने वाला।

प्रसंगः–उद्धव का उपदेश सुनने के उपरांत गोपियाँ शांत नहीं रहती बल्कि अनेक युक्तियों द्वारा अपने प्रेम मार्ग की श्रेष्ठता प्रतिपादित करती है। उनके मत में कृष्ण ने यह योग का संदेश उनके किसी अपराध के दण्डस्वरुप उन्हें लिखकर भेजा है किन्तु वे मोक्ष की कामना न करते हुए भगवत् दृरति में लीन रहना चाहती हैं।

व्याख्याः–गोपियाँ उद्धव से कहती है कि प्रियतम को भाने वाली प्रेमिका का जीवन अच्छा है, सफल है अर्थात् प्रियतम के मन में समाने के कारण उनके संसार के जीवन का फल भोग लिया है। इस प्रकार वे यहाँ कुब्जा से ईर्ष्या का भाव प्रकट करते हुए कहती है कि जीवन तो उसका अच्छा है, सफल है क्योंकि वह कृष्ण की चहेती प्रेमिका है। वह अपने प्रियतम कन्हैया का प्रतिदिन दर्शन प्राप्त करती है और उनके स्पर्श से उसे शारीरिक सुख आनन्द भी प्राप्त होता है, किन्तु उसे भी इतना सुख आनन्द प्राप्त नहीं क्योंकि वह प्रेम करने की उचित रीती से परिचित नही। हे उद्धव। आँखे मूँद–मूँद कर किसने पुस्तक में निहित ज्ञान को प्राप्त किया है, उसे तो आँखे खोलकर अध्ययन से ही प्राप्त किया जा सकता है, उसी प्रकार प्रियतम के पास बने रहने से, दर्शन–स्पर्श से जीवन सफल नही होता, यह तो तभी सम्भव है जब वह प्रेम की रीति ते सपरिचित हो और प्रियतम को रिझाने में समर्थ हो। हमारे लिए तो श्यामसुन्दर कृष्ण ही एक मात्र सुन्दर एवं मनोहर है। उसके सम्मुख हमें समस्त संसार और उससे प्राप्त सुख फीका प्रतीत होता है अर्थात् हमारे लिए सुन्दर और परम मनोहर कृष्ण की तुलना में समस्त सांसारिक सुख नीरस है। हे उद्धव। तुम हमारी बात सुनो, हम तुम्हारे जोग–ध्यान को लेकर क्या करे, यह हमारे किसी काम का नहीं क्योंकि इससे हमें प्राणहानि का भय है, कवि का कहने का तात्पर्य यह है कि योग–साथना पर अमल करने से हमें अपने प्राणप्रिय श्री कृष्ण से बिछुड़ना पड़ेगा। उनके बिना हमारा जीवित रहना सम्भव नहीं। जिस प्रकार शुद्ध घी का प्रयोग करने वाला व्यक्ति खट्टी छाछ पीकर प्रसन्न नहीं रह सकता, उसी प्रकार कृष्ण के प्रेमामृत करने वाला हमारा यह ह्दय तुम्हारी योग की नीरस बातें सुनकर आनन्दित नहीं होता।

2) "ज्यान" शब्द प्रदेश विशेष से सम्बन्धित है और ज्यो–का–त्यों यहाँ आया है। इसका अर्थ है हानि– नुक्सान। आज भी यह शब्द लहदा भाषा में इसी रुप में प्रयुक्त होता है।

अलंकार– 1) "जोग....जी" ....में वृत्यानुप्रयास।

2) धी को ....में उदाहरण

3) "प्यारे पी" तथा स्यामसुन्दर में छेकानुप्रास।

4) "खाटी महीं" मे लोकोक्ति

(3) आयो घोष बड़ो व्योपारी।
लादि खेप गुन ज्ञान–जोग की ब्रज में आप उतारी।
फाटक दे कर हाटक माँगत भोरै निपट सुधारी।
धुर ही ते खोटो खायो है लये फिरत सिर भारी।
इनके कहे कौन डहकावै ऐसी कौन अजानी?
अपनो दूध छाँड़ि को पीवै खाट कूप को पानी।
ऊधो जाहु सवार यहां ते बोगि गहरु जनि लावौ।
मूँह माग्यो पैहो सूरज प्रभु साहुहि आनि दिखावौ।।23।।

शब्दार्थः—घोष = अहीरो की बस्ती, गोकुल। खेद = गठरी। फाटक = फटकन, भूसा। भोरै = भोले–भाले, शरीफ। निपट = बिल्कुल। घारी = समझ कर। घुर = प्रारम्भ, भूल। डहकावै = ठगा जाप, धोखा खाप। अजानी = अज्ञानी। खारकूप = खारी जल का कुआँ। सवार = शीघ्र। बेगि = जल्दी। गहरु = विलम्ब, देर। जनि = मत। साहुहि = महाजन को, कृष्ण। आनि = लाकर।

प्रसंगः—उद्धव के योग–उपदेश देने के उपरांत गोपियों के मन पर पर्याप्त प्रतिक्रिया हुई, उद्धव के निर्गुण ब्रह्म से गोपियाँ सगुण कृष्ण को श्रेष्ठ घोषित करती है। वह स्पष्टतः कहती है कि योग–साधना से प्राणों की हानि है हमें तो श्रीकृष्ण ही प्रिय हैय इस समय वे उद्धव को सम्बोधित न करके परस्पुर वार्तालाप कर रही है।

व्याख्याः—आज हमारी इस अहीरों की बस्ती में एक अत्यन्त विचित्र व्यापारी आया हुआ है। उसने ज्ञान और योग के गुणों से युक्त सामान की गठरी यहाँ ब्रज में बेचने के लिए लाकर उतार दी है। इसने यहाँ के निवासियों के अत्यन्त भोला और अज्ञानी समझ लिया है जिससे फटकन के समान निस्सार वस्तु अर्थात ज्ञान–योग समर्थित ब्रह्म को देकर उसके प्रतिकार स्वरुप अर्थात स्वर्ण के समान बहुमूल्य एवं प्रिय कृष्ण माँगा है, इस व्यापारी का असनान बिल्कुल व्यर्थ है जिसके कारण वह बिक नहीं रहा इसे आरम्भ से ही हानि उठानी पड़ रही है अर्थात इसका सामान कोई बी नहीं खरीद रहा, अतः इसका भारी बोझ सिर पर लाद कर यह इधर–उधर भटकता फिर रहा है। यहाँ ब्रज में हम ही कौन–सी नासमझ और अज्ञानी है जो इसका माल खरीदकर धोखा खा जाए। हमने तो आज तक ऐसा कोई मूर्ख नहीं देखा जो अपने घर का मधुर दूध त्यागकर खारे जल के कुएं का पानी पीने जाए।

हे उद्धव। तुम यहाँ से अत्यन्त शीघ्र मथुरा चले जाओ और अपने महाजन अर्थात् ज्ञान हृयोग की गठरी भेजने वाले साहूकार रुपी कृष्ण की यहाँ लाकर हमें अनेक दर्शन करा दो तो तुम्हें मूँहमांगा पुरस्कार प्राप्त होगा अर्थात तुम जो माँगोगे हम देगी, तुम एक बार कृष्ण के हमें दर्शन करा दो।

विशेष–

1) "आयो घोष बड़ी व्यापारी" पंक्ति में उद्धव के प्रति गोपियों का व्यंग्य दर्शनीय है।
2) सम्पूर्ण पद में अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य–ध्वनि है। उद्धव के ज्ञान योग रुपी माल को निस्सार वस्तु घोषित करते हुए उसका तिरस्कार किया गया है।
3) "भतर्सना" संचारी के साथ–साथ स्मृति और आवेश भी है।
4) यहाँ कृष्ण–प्रेम अथवा कृष्ण को स्वर्ण के समान अमूल्य और स्पृहणीय तथा ज्ञान–योग से प्राप्त ब्रह्म को निस्सार वस्तु के समान उपेक्षणीय घोषित किया गेया है।

5) सम्पूर्ण पद में अभिव्यक्ति व्यंग्य निर्गुण सम्प्रदाय पर मार्मिक चोट करता है।

6) फाटक एवं हाटक में अत्यन्त सुन्दर शब्द मैत्री है।

7) धुरते ही खाटो खायो है, में अत्यन्त सुन्दर मुहावरें का प्रयोग हुआ है।

अलंकार– 1) सम्पूर्ण पद में रुपक और अन्योक्ति का संकट रुप है।

2) फाटक .... सुधारी में लोकोक्ति

3) खार कूप में पानी.... में दृष्टांत अलंकार है

(4) जोग ठगौरी ब्रज न निकैहै।
यह व्योपार तिहारो ऊथो। ऐसोई फिरि जेहै।
जापै लै आए हौ मधुकर ताके उर न समैहै।
दाख छाँड़ि कै कटुक निबौरी को अपने मुख खैहे।
मूरी के पातन के केना को मुक्ताहल दै है।
सूरदास प्रभू गुनहि छाँड़ि कै को निर्गुण निरबैहै।।24।।

शब्दार्थः–ठगौरी–ठग से भरा हुआ सौदा। फिरि जैहै =वापिस चले जाओगे। जापै = जिसकै पास से। कटुक =कड़वी। निबौरी = नीम का फल। केना = सौदा। मुक्ताफल = मोती। निरबैहे =निर्वाह करेगा, साधना करेगा।

प्रसंगः–यह पद पूर्व–पद का पूरक है। गोपियाँ उद्धव के योग–ज्ञान को निस्सार वस्तु बताकर उन पर व्यंग्य करती है। उद्धव का ज्ञान खारे जल के कुएं के समान है, इसी कारण मधुर दूध रुपी कृष्ण को छोड़कर उसका पान कौन करना चाहेगा।

व्याख्याः–गोपियाँ उद्धव के ज्ञान–योग पर व्यंग्य करती हुई कह रही है हे उद्धव। तुम्हारा यह ज्ञान योग रुपी ठगी और धूर्तता का माल ब्रज में नहीं बिक पायेगा। तुम्हारा यह सोदा यहाँ से इसी प्रकार लौटा दिया जायेगा। इसे यहाँ कोई नहीं खरीदेगा। तुम जिनके लिए यह सामान इतनी दूर तक लाए हो, उन्हे यह पसंद नहीं आएगा, और न ही यह उनके हृदय में समा सकेगा। ऐसा कौन मूर्ख है जो अपने मुख के अंगूट के दानों को त्याग कर नीम के कड़ुए फल को खाएगा और मूले के तीखे पत्तों के बदले में मोतियों के दाने देगा। कहने का तात्पर्य यह है कि तुम्हारा यह ब्रह्म नीम के फल के समान कड़वा और मूली के पत्तों के तीखा अर्थात तुच्छ, व्यर्थ और त्याज्य है और हमारे कृष्ण अंगूर के समान मधुर और मोतियों के समान बहुमूल्य है, इसलिए हम ऐसी मूर्ख नहीं कि कृष्ण को त्याग कर निर्गुण ब्रह्म की साधना करें। सूरदास जी कहते हैं कि ऐसा कोन है जो सम्पूर्म गुणों के भंडार दृसगुण रुप कृष्ण को छोड़कर तुम्हारे गुणहीन निर्गुण ब्रह्म के साथ निर्वाह करे अर्थात उनकी साधना करे।

विशेष– इस पद में प्रथम दो पंक्तियों में निहित व्यंग्य की छटा दर्शनीय है,

अलंकार– 1) "दाख ....निबौरी।" ––अन्योक्ति।

2) "मूरी .... मुक्ताफल" – तुल्योगिता।

3) "गुन निर्गुण" –––––– श्लेष।

4) "जोग .... निकैहै"........ रुपक।

(5) आए जोग सिखावन पाँड़े।
परमारथी पुराननि लादे ज्यो बनजारे टाँड़े।
हमरी गति पति कमलनयन की जोग सिखै ते राँड़े।
कहौ, मधुय, कैसे समायगे एक म्यान दो खाँड़े।
कहु षटपद कैसे खैपतु है हाथिन के संग गाँड़े।
काकी भूख गई बपारि भीख बिना दूध धृत माड़े।
काहे का भाला लै मिलवत, कौन चोर तुम डाँडे
सूरदास तीनों नहि उपजत धनिया धान कुम्हाँड़े।।25।।

शब्दार्थः—परमारथी = परमार्थ की शिक्षा देन वाले। बनजारे = खाना—बदोश। पुराननि = पुराणों की। पुरानी = बासी। टाँडे = सौदा, व्यापार का माल। खाँड़े = तलवार। षटपद = छः पैरों वाला भौंटा। गाँड़े = गन्ना। बपारि = हवा। भखि = खाकर। माँड़े = रोटी। भाला = बकवाद, भल्ल। डाँडे = दंड। कुम्हौड़े = कुम्हड़ा, काशीफल, कददू।

प्रसंगः—उद्धव के ज्ञान—योग के उपदेश की प्रतिक्रियास्वरुप गोपियां अत्यन्त खिन्न है, उनके मते में ज्ञान—योग रुपी व्यापार का सौदा अत्यन्त निस्सार वस्तु है, इसके बदले दाख के समान मीठे और स्वर्ण के समान बहुमूल्य श्रीकृष्ण को छोड़ना ठीक नहीं, वे योग की साधना न करके कृष्ण रुपी शाह से मिलकर अपना जीवन सफल करना चाहती है। इस पद में यही प्रसंग है और उसी प्रकार उद्धव पर गोपियों का व्यंग्य जारी है।

व्याख्याः—हे उद्धव। तुम पंड़ा के समान परमार्थ की शिक्षा देने वाले पुराणों में निहित ज्ञान के बोझ को उसी प्रकार अपने सिर पर माल लादे फिर रहे हो जिस प्रकार खानाबदोश लोग अपने सिर पर माल लादे। बेचने के लिए घूमते—फिरते है, अथवा तुम योग को सिखाने वाले पंडे के समान परमार्थ रुपी पुरानी, नासी, व्यर्थ की वस्तु को लिए फिरते हो और हमारे ऊपर मढ़ना चाहते हे। हमारी गति अपने पति के साथ है और हमारे पति कमलनयन श्रीकृष्ण है जो हमें शरण और प्रतिष्ठा देने वाले हैं। योग उन्ही के लिए उचित है जो विधवा और अनाथ है। हमारे पति कमलनयन श्रीकृष्ण जीवित है और हमें शरण एवं प्रतिष्ठा देने वाले हैं। अतः योग हमारे लिए व्यर्थ की वस्तु है।

हमारे लिए योग साधना उसी प्रकार है जिस प्रकार एक म्यान में दो तलारों का समा जाना। जैसे एक म्यान में दो तलवारो का समा जाना असम्भव है उसी प्रकार हमारे लिए योग—ज्ञान की साधना करना असम्भव है क्योंकि कृष्ण हमारे हृदय में समाए हुए हैं, वहाँ निर्गुण ब्रह्म की समाई नहीं हो सकती है, यह सम्भव नहीं। हे भ्रमर हमें बताओ कि किस प्रकार हाथी के साथ गन्ने को खाया जा सकता है? एक ही गन्ने को खाने में पर्याप्त समय लगा देता है, जिस प्रकार हाथी के साथ गन्ना खाने में मनुष्य स्पर्धा नहीं, कर सकता, उसी प्रकार हम अबला नारियों के लिए योग मार्ग की कठिन और पुरुह साधना करना भी कठिन है।

हे उद्धव। हमें यह बताओ कि बिना दूध, घी, रोटी खाए केवल वायु के भक्षण अर्थात प्राणायाम करने से किसकी भूख मिट सकती है? जिस प्रकार यह असंभव है, उसी प्रकार हमारे लिए योग की साधना करना भी असंभव है, तुम किस कारण बाते बना—बनाकर व्यर्थ की थोथी बकवास कर रहे हो— अर्थात तुम्हारा यह योग का उपदेश हमारे लिए विष के समान प्राणघातक होगा और कृष्ण का प्रेम हमारे लिए मधुर और जीवनदायक है।

विशेष—पुष्टिमार्गी भक्ति—सिद्धांत के अनुसार लोक—मर्यादा एवं कुल बंधन की सीमाओं को तोड़ना भक्त के लिए आवश्यक है।

अलंकार—जोग जहर की बेली—रुपक

....

3.3.1 स्व–मूल्यांकन (क)

प्रिय विद्यार्थियों! इस अध्याय में दिए गए प्रश्नों के सही और गलत के रूप में उत्तर दें और अभी तक प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

1. उद्धव जी के ज्ञान के उपदेश के सुनकर गोपियों में अनेक प्रकार की प्रतिक्रिया हुई। ( )
2. उद्धव जी के ज्ञान के उपदेश के सुनकर गोपियों में अनेक प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं हुई। ( )
3. गोपियों ने उद्धव से कहा था कि कृष्ण को यह अधिकार है कि वह हमें त्याग दे किन्तु हम अपना स्वभाव, धर्म नहीं छोडेंगी। ( )
4. गोपियाँ निर्गुणोपासना से प्राप्त मुक्ति को ही महत्व देती हैं। ( )
5. उद्धव का उपदेश सुनने के उपरांत गोपियाँ शांत नहीं रहती बल्कि अनेक युक्तियों द्वारा अपने प्रेम मार्ग की श्रेष्ठता प्रतिपादित करती है। ( )
6. गोपियाँ उद्धव के ज्ञान–योग के प्रति नतमस्तक हो जाती हैं। ( )
7. उद्धव के ज्ञान–योग के उपदेश की प्रतिक्रियास्वरुप गोपियां अत्यन्त खिन्न हो जाती है। ( )

3.4 तुलसीदासः कवितावली (अयोध्याकाण्ड)

(1) कीर के कागर ज्यौ नृपचीर, विभूषण उत्पम अंगनि पाई।
औध, तजी मगवास के रुख ज्यौं, पंध के साथ ज्यौं लोग लुगाई।
संग सुबंधु पनीत प्रिया मानो धर्म क्रिया धरि देह सुहाई।
राणिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई।।

शब्दार्थः– कीर = तोता, सुग्गा। कागर = पंख। उप्पम = उपमा। मगवास = मार्गवास। औध = अवध। रुख = वृक्ष। बटाऊ =बटोही। नाई = (न्याय) तरह।

सप्रसंग व्याख्या – (रामचन्द्र) की त्यागशीलता, निस्पृहता, शक्ति और विनयशीलता आदि के प्रति संकेत है।

श्री रामचन्द्र जी ने वन जाते समय वल्कल–वस्त्र धारण करके अति सुन्दर राजसी वस्त्राभूषणों को वैसे ही (निस्पृह भाव से) त्याग दिया जैसे वसंत ऋतु में सुग्गे अपना पंख छोड़ देते है। अयोध्या को रास्ते के वृक्ष की भान्ति त्याग दिया। अयोध्या के स्त्री–पुरुषों को रास्ते के साथियों की भांति छोड़ दिया, यह मानकर जैसे कि यही तक इनका साथ रहा हो। साथ चलने वाले और पत्नी इस प्रकार प्रतीत हो रहे हैं मानों धर्म और क्रिया (का) दोनों सुन्दर शरीर धारण करके चल रहे हो (शोभा पा रहे हैं)। इस प्रकार रामचन्द्र जी अपने पैतृक राज्य को बटोही की भाँति छोड़कर गन्तव्य की और चल दिये।

विशेष–इसमें काव्य की व्यंजना–शक्ति, राम की निस्पृहता, शक्ति, शील आदि के अलावा धर्म और क्रिया के समन्वय से राम की मर्यादा बद्धता और कर्मव्यता का भी संकेत किया गेया है।

अलंकर–उपमाओं की माला है।

(2) **कागर करि ज्यो भूषण दृचीर सरीर लस्यो तजि नीर ज्यों काई।**
मातृ पिता प्रिय लोक सवै सनमानि सुभाय सनेह सगाई।।
संग सुभामिनि भाई भलो, दिन द्वै जनु औध हुते पहनाई।
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई।।2

शब्दार्थः–कागर पूकरि ज्यों = सुग्गे के पंखो के समान। सगाई = सम्बन्ध। दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई = मानों दो दिन अयोध्या में चहुनाई करते थे।

सप्रसंग व्याख्या–तोते के पंखों के समान वस्त्राभूषण त्याग कर रामचन्द्र जी का शरीर इस प्रकार सुशोभित हो रहा था जैसे काई के हटने पर जल निर्मल प्रतीत होता है। माता–पिता और प्रिय लोगों को स्वभाव से ही उनके स्नेह और सम्बन्धानुसार सम्मानित कर कमलनयन भगवान राम साथ में सुन्दर स्त्री और भले भाई को ले अपने पिता का राज्य पथिक की भांति छोड़कर चल दिए जैसे अयोध्या में दो दिनों के लिए मेहमानी करने आये थे।

अलंकार–उपमा और उत्प्रेक्षा।

(3) **सिथिल सनेह कहै कौसिला सुमित्राजू सो**
मै न लखी सौति, सखी। भगिनी ज्यौं सेई है।
कहैं मोहिं मैया कहौ मै न मैया भरत की
बलैया लेहौ, भैया। तेरी मैया कैकेयी है।।
तुलसी सरल भाप रघुराय माय मानी,
काय मन बानी हूँ न जानी के मतेई है।
बाम बिधि मेरो सुख सिरिससुमन सम,
ताको छल–छुरी–कोह पुलिस लै रेई है।।

शब्दार्थः–सौति =सपत्नी। सेई है = पालन किया है। मतेई =विमाता। नाम बिधि =दुद्धैव। सिरिससुमन सम = अत्यन्त कोमल। टेई है = तीक्ष्ण की है।

सप्रसंग व्याख्या – रामचन्द्र के वनगमन के समय स्नेह से शिथिल होकर कौशल्या सुमित्रा से कहती है, हे सखि। मैने कैकेयी को कभी भी सौत नही समझा, सदा अपनी बहिन के समान नाता निभाया है। जम राम मुझे मैया कहते थे तो मै कहती थी कि मै तुम्हारी माता नहीं हूँ– मै भरत की माता हूँय तुम्हारी माता तो कैकेयी है। (तुलसीदास जी कहते है) और रामचन्द्र ने मन वचन, कर्म से सरल भाववेश कैकेयी को सदा माता ही माना, कभी भी विमाता नहीं माना। परन्तु दुद्धैव ने सिरिस के फूल के समान कोमल मेरे सुख को (काटने के लिए) कैकेयी की छल रुपी (उसी कैकेयी) छुरी को क्रोध रुपी वज्र पर तीक्ष्ण कर प्रहार किया। इसमें यह भी व्यंजन है कि कैकेयी का सारा प्रेम वस्तुतः छल था।

विशेष–मानव स्वभाव की विशेषताओं का सहज अंकन मानस में "कनक छुरी उर पहन टेई" का प्रयोग है।

अलंकार–स्वभावोक्ति, उपमा और रुपक।

(4) **कीजे कहा जीजी जू।"सुमित्रा परिपाय कहै,**
तुलसी सहावै बिधि सोई सहियतु है।
राबरो सुभाव राम – जन्म ही– ते जानियत,
भरत की मातु को कि ऐसी चाहियतु है।।

जाई राजघर, व्याहि आई राजघर माँह,
राजपुत पाएहूँ न सुख लहियतु है।
देह सुधागेह ताहि मृगहू मलीन कियो,
ताहू पर बाहू बिनु राहु गहियतु है।।8।।

शब्दार्थः–जीजी = दीदी। कि = क्या। जाई = पैदा हुई। सुधागेह = चन्द्रमा।

सप्रसंग व्याख्या–कौशल्या के पैर पकड़कर सुमित्रा कहती है कि हे बहन। क्या किया जाप ? जो भाग्य में होता है वही सहना पड़ता है। राम जैसे साधु, सुशील पुत्र की जननी होना ही तुम्हारी साधुता का प्रमाण है, परन्तु क्या "भरत" की माता को ऐसा करना उचित था? तुम राजकुल में उत्पन्न हुई, राजवंश में ही तुम्हारा विवाह हुआ और राज्य का अधिकारी पुत्र भी प्राप्त किया। परन्तु भाग्यवशात् इतने पर भी सुख संभव न हो सका। उदाहरण के लिए चन्द्रमा का शरीर अमृत का आश्रय है किन्तु उसे मृग ने कलंकित कर दिया और ऊपर से नाहुरहित राहु भी ग्रस लेता है।

अलंकार–दृष्टांत।

(5) नाम अजानिल से खल कोटि अपार नदी भाव बूड़त काढ़े।।
जो सुमिरे गिरि– मेरु सिला – कन, होत अजाखूर बारिधि बाढ़ै।।
तुलसी जेहि के पदपंकज ते प्रगरी तटिनी, जो हरै अथ गाढ़े।
सो प्रभु स्वै सरिता तरिबै कहँ माँगत नाव करारे है ठाढ़े।।

शब्दार्थः–नाम =राम नाम। खल कोटि = करोड़ो पापी। बूड़त =डूबत (डूब का वर्ण विपर्यय से बूड़)। काढ़े = निकाले। तट = नदी। स्वै =(सोई) वही। करारे = कगार (ऊँचा तट)

सप्रसंग व्याख्या–(केवट जो सहजा भक्ति का प्रतीक है उसकी नाँव माँग कर राम जैसे ईश्वर अवतारी किस प्रकार सहज मानव भाव से व्यवहार करते है।)

जिसके नाम से संसार रुपी नदी में डूबते हुए आजामिल जैसे अनेक पापी उबर गये, जिसके स्मरण मात्र से सुमेरु के समान पर्वत पत्थर के कणों के समान और बढ़ा हुआ समुन्द्र बकरी के खुर के समान हो जाता है, जिनके रंग कमलों से गंगा नदी प्रकट हुई जो बड़े–बड़े पापों को दूर कर देती है, वही स्वामी श्री रामचन्द्र जी उन्ही गंगा जी को पार करने के लिए कगार पर खड़े होकर नाव माँगते है, कैसे आश्चर्य की बात है जो स्वयं उस नदी के जन्म दाता है जिससे करोड़ों पापी तर गेय वही राम उसी नदी के किनारे नाव की याचना कर रहे है।

विशेष–इसमें नाम–माहात्मय और गुण दृकीर्तन है।

3.4.1 स्व–मूल्यांकन (ख)

प्रिय विद्यार्थियों ! इस अध्याय में दी गयी व्याख्याओं का आपने अध्ययन किया है इस अध्ययन से प्राप्त जानकारी के आधार पर आप निम्नलिखित शब्दों के अर्थ खोजें तथा उन्हें सुमेलित करें। यदि आप इसमें असमर्थ हैं तो निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

1. कीर = तोता
2. रुख = वृक्ष

3. सेई है = पालन किया है
4. मतेई =विमाता
5. सुधागेह = चन्द्रमा
6. खल कोटि = करोड़े पापी
7. काढ़े = निकाले
8. बटाऊ =बटोही।.

3.5 उत्तर कुंजी

- स्व–मूल्यांकन (क)
  1. सही 2.गलत 3. सही 4.गलत 5. सही 6.गलत 7. सही
- स्व–मूल्यांकन (ख)
  1. कीर = तोता
  2. रुख = वृक्ष
  3. सेई है = पालन किया है
  4. मतेई = विमाता
  5. सुधागेह = चन्द्रमा
  6. खल कोटि = करोड़े पापी
  7. काढ़े = निकाले
  8. बटाऊ = बटोही।

3.6 पठनीय पुस्तकें

1. सूरदास एक अध्ययन – अश्विनी पराशर
2. भ्रमरगीत का काव्य सौंदर्य – सत्येन्द्र पारीक
3. सूरदास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
4. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि – डॉ. द्वारिका प्रसाद
5. तुलसी – संपादक उदयभानु सिंह
6. तुलसी कृत विनयपत्रिका का काव्य शास्त्रीय अध्ययन –डॉ. राम अवतार पाण्डेय।

'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति एवं रासो काव्य परम्परा

रूपरेखा

4.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
4.2 प्रस्तावना
4.3 रासो शब्द की व्युत्पति
4.4 रासो काव्य की परम्परा
4.5 स्व–मूल्यांकन(क)
- बहुविकल्पीय प्रश्न

4.6 स्व–मूल्यांकन(ख)
- रिक्त स्थान

4.7 स्व–मूल्यांकन(ग)
- सही या गलत

4.8 सारांश
4.9 कठिन शब्द
4.10 अभ्यासार्थ प्रश्न
4.11 उत्तर कुंजी
4.12 पठनीय पुस्तकें

4.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

उद्देश्य –प्रिय विद्यार्थियो! इस अध्याय का उद्देश्य है आपकोः–

1. रासो शब्द की व्युत्पति से संबंधित विभिन्न विद्वानों के मतों से अवगत करवाना है।
2. रासो काव्य की परम्परा की जानकारी देना है।

अपेक्षित परिणाम–प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरान्त आपको इस आलेख से रासो शब्द की व्युत्पति से संबंधित विभिन्न विद्वानों के मतों व रासो काव्य की परम्परा की जानकारी प्राप्त होगी।

4.2 प्रस्तावना

रासो शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद है। इसका मूल कारण है कि विभिन्न सामाजिक क्रिया–कलापों के आयामों में रासो परम्परा विकसित हुई है और इसके जितने स्रोत हैं सभी स्रोतों ने किसी न किसी रूप में 'रासो' की व्युत्पत्ति को प्रभावित किया है।

4.3 रासो शब्द की व्युत्पति

गार्सा द तासी रासो शब्द की व्युत्पत्ति 'राजसूय' शब्द से मानते हैं। 'राजसूय' का तात्पर्य एक महान यज्ञ है जिसमें बलिदान किया जाता है। उनका कथन है –पृथ्वीराज के युद्धों, उनकी मैत्रियों, उनके अनेक शक्तिशाली सहायकों तथा उनके निवासों और वंशावलियों के कारण चंद की रचना इतिहास, भूगोल, पौराणिक गाथाओं तथा प्रथाओं आदि की दृष्टि से अमूल्य ठहरती है। इसीलिए उसका नाम 'प्रिथुराज–राजसू' अथवा 'पृथ्वीराज का विशाल बलिदान है।'

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'रासो' की व्युत्पत्ति –रसायन' से मानते हैं– 'बीसलदेव रासो' में काव्य के अर्थ में रसायन शब्द बार–बार आया है। अतः हमारी समझ में इस रसायन शब्द से होते–होते यह 'रासो हो गया।'

कविराज श्यामलदास तथा डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल 'रासो' की व्युत्पत्ति रहस्य शब्द से बताते हैं। हिन्दी शब्द सागर के सम्पादकों का भी यही मत है। वे रासो को 'किसी राजा का पद्यमय जीवन चरित्र विशेषतः वह जीवन चरित्र जिसमें युद्धों और वीरता का वर्णन हो' मानते हैं।

चन्द्रवली पाण्डेय, पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र तथा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी रासो शब्द की व्युत्पति 'रासक' से मानते हैं। रासक की गणना अठारह उपरूपकों में की गई है।

काशी–नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित रासो के सम्पादकों ने 'रास' नामक संस्कृत शब्द से 'रासो' की व्युत्पत्ति मानी है। 'रास' शब्द संस्कृत में शब्द, ध्वनि, क्रीड़ा, शृंखला–विलास, गर्जन–नृत्य एवं कोलाहल आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है। ब्रजभाषा सूर–कोश में 'रासो' के सम्बन्ध में लिखा है– 'राजा विशेष की युद्धवीरता आदि को लेकर लिखा गया पद्यमय।'

डॉ. दशरथ वर्मा के अनुसार 'रासो मूलतः गानयुक्त नृत्य विशेष से क्रमशः विकसित होते–होते उपरूपक और फिर उपरूपक से वीररस पद्यात्मक प्रबन्धों में परिणत हो गया। उक्त गान–युक्त नृत्य विशेष से तात्पर्य 'रास' से है। रास ब्रज प्रान्त का महत्त्वपूर्ण अभिनय है उत्तर भारत में सर्वत्र रास लीला का प्रचलन मिलता है। गीत–नृत्य के साथ 'रास' रचाने का उल्लेख हमारे ग्रंथ श्रीमद्भागवत में भी मिलता है। कृष्ण और राधा की 'रास–लीला' हमारे लिए अपरिचित नहीं है। अतः 'रास' शब्द से रासो का विकास हुआ होगा।''

अब अधिकांश विद्वानों ने सिद्धान्त रूप से स्वीकार कर लिया है कि गान–युक्त नृत्य विशेष से क्रमशः विकसित होते उपरूपक और फिर उपरूपक से वीर रस के पद्यात्मक प्रबन्धों के लिए 'रासक' शब्द ही रासो रूप में प्रयुक्त होने लगा है।

4.4 रासो काव्य की परम्परा

पृथ्वीराज रासो के पीछे काव्यों की विशाल परम्परा है। अपभ्रंश, गुजराती, डिंगल तथा पिंगल भाषाओं के अनेक रास और रासो काव्य उपलब्ध हैं।

1. सन्देश रासक

रासो परम्परा में प्रथम प्रामाणिक कृति 'संदेश रासक' है। इसके रचयिता अब्दुल रहमान है। इसकी रचना तिथि ज्ञात नहीं है। इसे मुनि जिनविजय ने सम्पादित किया है। इसका विषय विप्रलम्भ शृंगार है जिसका अन्त मिलन में होता है। इसके कुल 223 छन्द है परन्तु इतने में ही 22 प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है।

2. भरतेश्वर बाहुबली रास

इसके रचयिता शालिभद्र सूरि हैं, जिन्होंने इसकी रचना सं० 1241 में की। इसमें भगवान् ऋषभदेव के दो पुत्रों भरतेश्वर और बाहुबली के बीच राज्य के लिए हुए संघर्ष की कथा है। यह रचना 203 छन्दों में समाप्त हुई है। वीर रस का परिपाक इसमें अच्छा हुआ है।

3. बुद्धिरास

यह रचना भी शालिभद्र सूरि की है। इसमें रचना सम्वत् नहीं दिया हुआ है। इसका विषय धर्मोपदेश है। यह रचना 63 छन्दों में समाप्त हुई है।

4. उपदेश रसायन

इसके रचयिता जिनदत्त सूरि हैं। इसमें रचना–काल नहीं दिया हुआ है। इस का विषय धर्मोपदेश है। यह रचना 32 छन्दों में समाप्त हुई है। इस में जैन धर्माचारों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

5. बीसलदेव रासो

इसके रचयिता कवि नरपति नाल्ह हैं। यह ग्रन्थ केवल 100 पृष्ठों का है और गीत रूप में है। आचार्य शुक्ल के अनुसार 'यह ग्रन्थ वीर गीत के रूप में सबसे प्राचीन है। इसमें समयानुसार भाषा के परिवर्तन का आभास भी मिलता है।' इसका विषय बीसलदेव की प्रवास–कथा है। इसमें चार खण्ड हैं– प्रथम खण्ड में मालवा के भोज परमार की पुत्री राजमती से सांभर के बीसलदेव का विवाह होता है। द्वितीय खण्ड में बीसलदेव का राजमती से रूठ कर उड़ीसा की ओर प्रस्थान करना तथा वहाँ एक वर्ष तक रहना है। तृतीय खंड में राजमती का विरह वर्णन तथा बीसलदेव का उड़ीसा से लौटना और चतुर्थ खण्ड में भोज का अपनी पुत्री को अपने घर लिवा ले जाना तथा बीसलदेव का वहां जाकर राजमती को फिर चितौड़ लाना है। इस रचना में श्रृंगार के अतिरिक्त कोई अन्य रस नहीं है। आदि से अन्त तक एक ही छन्द का निर्वाह हुआ है।

6. खुमाण रासो

इसके रचयिता दलपत विजय हैं जो दौलत विजय भी कहे जाते हैं। इसका विषय मेवाड़ के सूर्य वंश का इतिवृत है। यह ग्रन्थ विविध छन्दों में प्रस्तुत किया गया है और कविता की दृष्टि से भी सरस है। इसके सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल का कहना है– 'यह नहीं कहा जा सकता कि इस समय जो खुमान रासो मिलता है। उसमें कितना अंश पुराना है। उसमें महाराज प्रतापसिंह तक का वर्णन मिलने से यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि जिस रूप में यह ग्रन्थ अब मिलता है, वह उसे वि. सं. की 17वीं शताब्दी में प्राप्त हुआ होगा।

7. विजयपाल रासो

इसका रचयिता नल्हसिंह भाट है। इसका विषय विजयपाल की दिग्विजय की कथा है। इसका मुख्य रस वीर है। रचना पूरी प्राप्त नहीं हुई है। इसके केवल 42 छन्द प्राप्त हुए हैं।

8. हम्मीर रासो

इस नाम की कोई रचना अभी तक नहीं मिली है, किन्तु 'प्राकृत–पैंगलम' के आठ छन्दों में हम्मीर का स्पष्ट नामोल्लेख होता है। ये छन्द आठ विभिन्न वृत्तों (छन्दों) के उदाहरण में आते हैं। इससे इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि विविध

छन्दों से विभूषित हम्मीर के जीवन से सम्बन्धित कोई समादृत कृति उस समय थी जब 'प्राकृत पैंगलम्' की रचना हुई। हमारे साहित्य के इतिहासों में शारंगधर द्वारा रचित एक 'हम्मीर रासो' माना जाता है किन्तु कोई निश्चित प्रमाण नहीं है।

9. राम रासो

इसके रचयिता माधवदास चारण हैं। इसका विषय राम का चरित्र तथा गुण वर्णन है। इसमें विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है। ग्रन्थ में कुल 1600 छन्द हैं।

10. रतन रासो

इसके रचयिता कुंभकर्ण हैं। इसमें रतलाम के महाराजा रतनसिंह का चरित्र वर्णित है। इसमें विविध प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है।

11. पृथ्वीराज रासो

पृथ्वीराज रासो रासक शैली में लिखा हुआ एक चरित काव्य है जिसका चरित–नायक भारत का अन्तिम हिन्दू सम्राट महाराज पृथ्वीराज चौहान है। इसकी प्राप्त प्रतियों की संख्या सौ से ऊपर है। विद्वानों ने आकार के अनुसार उनका वर्गीकरण वृहद्, मध्यम्, लघु एवं लघुत्तम चार प्रकार के रूपान्तरों में किया है।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' में ढाई हजार पृष्ठ हैं जो 69 समयों में विभाजित हैं। सबसे बड़ा कनवज्ज युद्ध है जो सम्भवतः रासो का मूल कथानक है। इस ग्रन्थ में पृथ्वीराज चौहान का वीरत्वपूर्ण आदर्श एवं दर्प प्रदर्शित किया गया है। उनमें जन्म से मृत्यु पर्यन्त के संघर्ष एवं युद्धों का सविस्तार वर्णन मिलता है। इसमें इतिहास और कल्पना का मणिकांचन सम्मिश्रण है। यद्यपि यह वीर रस प्रधान महाकाव्य है तथापि इसमें वीर रस के समानान्तर ही श्रृंगार रस का प्रतिपादन हुआ है। इसकी छन्द–योजना के आधार पर चन्द को छन्दों का राजा कहा जाता है। महाकाव्य के समस्त लक्षणों का निर्वाह इस में मिलता है। यह रासो काव्य–परम्परा का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। परवर्ती एवं पूर्ववर्ती रासो काव्य इसकी बराबरी नहीं कर सकते। मिश्रबन्धुओं के शब्दों में – ''चन्दबरदाई की कविता से प्रकट होता है कि वह प्रौढ़ रचना है और छन्द आदि की रीतियों पर उसमें ऐसा अनुगमन हुआ जान पड़ता है यह महाशय दृढ़ रीतियों पर चलते थे और स्वयं इन्हीं ने हिन्दी काव्य रचना की नींव डाली।''

4.5 स्व–मूल्यांकन (क)

प्रिय विद्यार्थियों ! इस अध्याय में आपने 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति एवं रासो काव्य परम्परा का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिह्न द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दें।

• **बहुविकल्पीय प्रश्न**

1) गार्सा द तासी रासो शब्द की व्युत्पत्ति किस शब्द से मानते हैं?

   क) रसायन   ख) राजसूय   ग) रासक   घ) रास

2) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'रासो' की व्युत्पत्ति किससे मानते हैं–

   क) रहस्य   ख) रास   ग) रसायन   घ) राजसूय

3) रसो परम्परा में प्रथम प्रामाणिक कृति कौन–सी है?

   क) सन्देश रासक   ख) भरतेश्वर बाहुवली रास   ग) बुद्धि रास   घ) उपदेश रसायन

4) बीसलदेव रासो किस कवि द्वारा लिखा गया है?

   क) जिनदत्त सूरि   ख) शालिभद्र सूरि   ग) अब्दुल रहमान घ) नरपति नाल्ह

5) राम रासो में कुल कितने छन्द हें?

   क) 1600 छन्द   ख) 1400 छन्द   ग) 1200 छन्द   घ) 1300 छन्द

4.6 स्व–मूल्यांकन (ख)

• **रिक्त स्थान**

प्रिय विद्यार्थियो! अभी तक प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन आप निम्नलिखित रिक्त स्थान भरकर करें।

1) रतन रासो के रचयिता ––––––––– है।
2) पृथ्वीराज रासो ––––––––––––– में लिखा हुआ एक चरित काव्य है।
3) काशीं नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित 'पृथ्वीराज शास्त्रों' के ––––––––– पृष्ठ हैं।
4) विजयपाल रासो ––––––– द्वारा रचित है।
5) –––––––––––––– शालिभद्र सूरि की रचना है।

4.7 स्व–मूल्यांकन (ग)

• **सही या गलत**

प्रिय विद्यार्थियो! निम्नलिखित के उत्तर सही या गलत चिह्न द्वारा देकर आप अभी तक प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें।

1) सन्देश रासक में कुल 224 छन्द हैं। ( )
2) शालिभद्र सूरि कृत भरतेश्वर बाहुवली रास की रचना सं. 1241 की है। ( )
3) उपदेश रसायल रास के रचयिता जिनदत सूरि है। ( )
4) बीसलदेव रासो केवल 200 प्रष्ठो का है। ( )

5) राम रासो के रचयिता माथवदास चाटव है। ( )

4.8 सारांश:

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि रासो काव्य एक ऐसा काव्य है जिसमें राजाओं की वीरता का गुणगान किया गया है चूंकि रासो साहित्य का उद्देश्य सामन्तों का मनोरंजन मात्र रहा इसलिए रासो साहित्य में हमें श्रृंगार एवं युद्धों का सजीव चित्रण देखने को मिलता है।

4.9 कठिन शब्द

प्रिय विद्यार्थियो! अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर देने से पहले निम्नलिखित कठिन शब्दों के अर्थ शब्दकोश से ढूंढे और अपने शब्द भंडार को विकसित करें।

1. विप्रलम्भ————————— 2. धर्माचारों————————— 3. परिपाक————————

4. इतिवृत————————— 5. समादृत————————— 6. मणिकांचन————————

7. व्युत्पति————————— 8. अनुगमन———————— 9. प्रस्थान—————————

10. क्रिया—कलापों——————————

4.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र01 'रासो' शब्द की व्युत्पति पर प्रकाश डालिए।

उ01 ——
——
——
——

प्र02 रासो काव्य की परम्परा का सविस्तार वर्णन कीजिए।

उ02 ———————————————————————————————————————
——
——
——

4.11 उत्तर कुंजी

• **स्व—मूल्यांकन(क)**

1.राजसूय 2.रसायन 3.सन्देश रासक 4. नरपति नाल्ह 5. 1600 छन्द

• **स्व—मूल्यांकन(ख)**

1. कुंभकर्ण 2. रासक शैली 3. ढाई हजार 4. नल्हसिंह 5. भरतेश्वर बाहुवली रास

• **स्व–मूल्यांकन (ग)**

1. गलत 2. सही 3. सही 4.गलत 5. सही

4.12 पठनीय पुस्तकें

1. रासो विमर्श – माताप्रसाद गुप्त – 1962 – प्रकाशन – साहित्य भवन।
2. रासो काव्य परम्परा – सुमन राजे – 1973 – ग्रन्धान कानपुर।
3. चन्दबरदाई और उनका काव्य – विपिन बिहारी – 1952 – प्रकाशक–हिन्दूस्तानी अकादमी।

पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता

रूपरेखा

5.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

5.2 प्रस्तावना

5.3 पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता

5.3.1 अप्रामाणिक मानने वाला वर्ग

5.3.2 अर्द्धप्रामाणिक मानने वाला वर्ग

5.4 विभिन्न रूपान्तर

- स्व–मूल्यांकन (क)
  विकल्पीय प्रश्न
- स्व–मूल्यांकन (ख)
  रिक्त स्थान
- स्व–मूल्यांकन (ग)
  सही गलत

5.5 सारांश

5.6 कठिन शब्द

5.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.8 उत्तर कुंजी

5.9 पठनीय पुस्तकें

5.1. उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

उद्देश्य –प्रिय विद्यार्थियो! इस अध्याय का उद्देश्य है आपको

– पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता से संबंधित जानकारी देना।

– पृथ्वीराज रासो को प्रामाणिक, अप्रमाणिक एवं अर्द्धप्रामाणिक मानने वाले वर्गों से अवगत करवाना।

– रासो के विभिन्न रूपान्तरों की जानकारी देना।

अपेक्षित परिणाम–प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरान्त आपको इस अध्याय से पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता, पृथ्वीराज रासो को प्रामाणिक, अप्रमाणिक एवं अर्द्धप्रामाणिक मानने वाले वर्गों व रासो के विभिन्न रूपान्तरों की जानकारी प्राप्त होगी

5.2 प्रस्तावना

'पृथ्वीराज रासो' सामान्यतः आदिकाल के वीरगाथात्मक काव्यों की प्रतिनिधि सर्जना मानी जाती है। इसमें एक युग की समूची प्रवृत्तियों के सम्पूर्ण दर्शन होते हैं। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पृथ्वीराज रासो में ढाई हजार पृष्ठ हैं जो 69 सर्गों में विभाजित हैं। सबसे बड़ा समय कनवण्ण युद्ध है जो सम्भवतः रासो का मूल कथानक है।

5.3 पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता

प्रामाणिकता की दृष्टि से केवल अपने युग का ही नहीं बल्कि आज तक के समूचे हिन्दी साहित्य का यह सर्वाधिक विवादास्पद ग्रन्थ है। इस विवादपूर्ण स्थिति में आज पृथ्वीराज रासो को हिन्दी–साहित्य का प्रथम विकसनशील महाकाव्य कहा जा सकता है।

पहले यह प्रमाणिक और ऐतिहासिक काव्य समझा जाता था, इसी कारण प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान बूलर ने इसकी सर्वांगपूर्ण सुन्दरता पर मुग्ध होकर इसका अंग्रेजी अनुवाद भी प्रारम्भ कर दिया था और कलकत्ता की एशियाटिक सोसाइटी इसे प्रकाशित भी करने लगी थी। किन्तु सन् 1883 ई. के पश्चात् डाक्टर बूलर को कश्मीरी पण्डित जयानक–रचित 'पृथ्वीराज–विजय' नामक ग्रन्थ मिला तो उसके आधार पर इन्होंने पृथ्वीराज रासो को अनैतिहासिक ही घोषित नहीं किया, बल्कि इसका अनुवाद और प्रकाशन बीच में ही रुकवा दिया। तब से लेकर आज तक इसकी प्रामाणिकता विवाद और दुराग्रह का विषय बनी हुई है। यहां तक कि विवाद को लेकर विद्वानों के तीन वर्ग किये गये हैं। पहला वर्ग इसे अप्रामाणिक तथा अनैतिहासिक मानता है, यह वर्ग कवि चन्दबरदाई के अस्तित्व को भी स्वीकार नहीं करता। दूसरा इसे और चन्दबरदाई को प्रमाणिक और तीसरा अर्द्ध–प्रमाणिक मानने के साथ–साथ चन्द के अस्तित्व को भी स्वीकारता है। इन तीनों वर्गों के तर्क इस प्रकार हैंः–

5.3.1 अप्रामाणिक मानने वाला वर्ग

इस वर्ग के समर्थक हैंः– कवि श्यामलदास, कविराज मुरारिदान, पण्डित गौरीशंकर हीराचंद ओझा, डॉ. बूलर, आचार्य रामचंद्र शुक्ल और डॉ. रामकुमार वर्मा आदि।

इस वर्ग के प्रबल आक्षेप ये हैं कि रासो में दी गई न तो घटनाएं ही सही हैं न उनके पात्रों के नाम और काल ही। भाषा भी इसकी अव्यवस्थित है। अर्थात् रासो की अप्रामाणिकता तथा अनैतिहासिकता के तीन मुख्य आधार हैं–

1. घटना और नाम वैषम्य
2. काल–वैषम्य
3. अव्यवस्थित भाषा

घटना और नाम–वैषम्य के अन्तर्गत प्रमुख बातें ये हैं–

1. रासो में परमार, चालुक्य और चौहान अग्निवंशी राजपूत माने गये हैं जबकि प्राचीन ग्रन्थों और शिलालेखों के आधार पर वे सूर्यवंशी सिद्ध होते हैं।
2. चौहानों की वंशावली, पृथ्वीराज की माता का नाम, माता का वंश, पुत्र का नाम, सामन्तों आदि के नाम उपलब्ध शिलालेखों और इतिहास–विवरणों से मेल नहीं खाते।
3. संयोगिता–स्वयंवर की घटना भी काल्पनिक और अनैतिहासिक है।

4. इतिहास के अनुसार अनंगपाल उस समय न तो दिल्ली का शासक ही था, और न उसने पृथ्वीराज को गोद ही लिया था। हां, पृथ्वीराज के चाचा विग्रहराज ने दिल्ली को सैन्य–बल से जीत अवश्य लिया था। पृथ्वीराज भी तब तक दिल्ली का न होकर अजमेर का राजा था, बाद में दिल्ली भी अजमेर राज्य का अंग बन गई थी।
5. पृथ्वीराज की बहन पृथा का विवाह मेवाड़ के राजा समरसिंह से नहीं हुआ था क्योंकि शिलालेखों से यह प्रमाणित नहीं होता कि समरसिंह पृथ्वीराज के समसामयिक थे। साथ ही यह गौरी से लड़ते हुए मरे भी नहीं थे, बल्कि पृथ्वीराज के 50 वर्ष बाद तक समरसिंह के रहने के प्रमाण मिलते हैं।
6. गुजरात के राजा भीमसिंह का पृथ्वीराज के द्वारा वध करवाया जाना भी इतिहास–सम्मत नहीं है, क्योंकि भीमसिंह, पृथ्वीराज के 106 वर्ष बाद तक जीवित रहे। इससे यह सिद्ध होता है कि पृथ्वीराज के समय भीमसिंह यदि होगा भी तो निरा बालक ही रहा होगा।
7. पृथ्वीराज और मुहम्मद गौरी की मृत्यु का विवरण भी ऐतिहासिक नहीं है। गौरी की मृत्यु मुलतान के गक्खरों के हाथों से हुई थी, गजनी में जाकर पृथ्वीराज के शब्द–बेधी बाण से नहीं।
8. रासो में पृथ्वीराज के छत्तीस वर्ष तक की आयु में ग्यारह विवाहों का वर्णन है, जबकि इतिहास के अनुसार पृथ्वीराज केवल तीस वर्ष तक ही जीवित रहे। इतनी अल्पायु में इतने विवाहों का होना असम्भव है।
9. पृथ्वीराज के द्वारा सोमेश्वेर का वध भी इतिहास–विरुद्ध है।

इस घटना–वैषम्य के अतिरिक्त पृथ्वीराज रासो में काल–विषयक त्रुटियां भी मिलती हैं जो इतिहास से बिल्कुल मेल नहीं खाती। यथा–

1. रासो में पृथ्वीराज की मृत्यु संवत् 1158 में बताई गई है और जन्म 1115 में, जबकि इतिहास में ये सम्वत् क्रमशः 1249 और 1220 है।
2. आबू पर भीम चालुक्य का आक्रमण, शाहबुद्दीन गौरी से राय पुंडीर के युद्ध की तिथियां भी इतिहास–सम्मत नहीं हैं।
3. पृथ्वीराज से सम्बन्धित अनेक घटनाओं का जैसे– उसका गोद लिया जाना, मेवाती –मुगल युद्ध, संयोगिता स्वयंवर आदि इतिहास विरुद्ध उल्लेख हैं, क्योंकि सम्वत् 1460 के लगभग रचित हमीर महाकाव्य में इन घटनाओं का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

भाषा की विविध–रूपता भी रासो की अनैतिहासिकता का एक प्रमुख कारण है। इसमें अरबी फारसी के बहुत से ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है जो चंद के समय किसी भी प्रकार सम्भव नहीं थे। इसी आधार पर डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने इसे 16वीं शती की रचना माना है। रासो की अनैतिहासिकता और अप्रमाणिकता का उद्घोष आचार्य शुक्ल ने इन शब्दों में किया है–

इस सम्बन्ध में इसके अतिरिक्त और कुछ कहने की जगह नहीं कि यह ग्रंथ पूरा जाली है। यह हो सकता है कि इसमें इधर–उधर चंद के कुछ पद्य भी बिखरे हों, पर उनका पता लगाना असम्भव है। यदि यह किसी समसामयिक कवि का रचा होता और इसमें कुछ थोड़े अंश भी पीछे मिले होते तो कुछ घटनाएँ और इसके संवत् तो ठीक होते।''

इस प्रकार ये विद्वान 'पृथ्वीराज रासो' को तो जाली मानते ही हैं, इस काव्य के सर्जक कवि चन्दबरदाई का अस्तित्व भी स्वीकार नहीं करते।

5.3.2 प्रामाणिक मानने वाला वर्ग

इस वर्ग में प्रमुख विद्वान – डा० श्यामसुन्दरदास, मथुराप्रसाद दीक्षित, मोहनलाल विष्णुलाल पण्डया, मिश्रबंधु और मोतीलाल मेनारिया आदि हैं। इन विद्वानों ने रासो को अप्रामाणिक मानने वाले वर्ग के प्रत्येक आक्षेप का उत्तर देने का प्रयास किया है। रासो को प्रामाणिक मानने में इन विद्वानों के तर्क ये हैं–

1. मूल रासो न तो जाली ग्रंथ है और न उसकी रचना संवत् 1600 के लगभग हुई है। रासो की लघुत्तम प्रतियों के आधार पर घटना वैषम्य, काल वैषम्य और भाषा–विषयक अव्यवस्था सभी का स्वतः निराकरण हो जाता है, क्योंकि उनमें इतिहास–विरुद्ध घटना और काल का कहीं उल्लेख नहीं है।

2. डॉ. दशरथ शर्मा के अनुसार रासो की अशुद्ध वंशावली का यह विस्तार बीकानेर की लघुत्तम प्रति में नहीं है। अपने मन्तव्य का निष्कर्ष देते हुए वे लिखते हैं–

   ''सारांश यह है कि अपने मूल रूप में रासो की ऐतिहासिकता अक्षुण्ण है। इस समय आवश्यकता इस बात की है कि बीकानेर की प्रति से भी रासो की पुरानी प्रति को खोज निकाला जाये। यदि रासो की प्राचीनतम प्रति मिल जाए, तो उसमें निश्चित रूप से सुर्जन चरित में उद्धृत बातें मिलेंगी, क्योंकि यह संस्कृत में रासो का सारांश है।''

3. काल–वैषम्य का निराकरण करने के लिए मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने 'आनन्द संवत्' की कल्पना की है। इस संवत् के अनुसार रासो में दी गई तिथियों और ऐतिहासिक तिथियों में नब्बे वर्ष का अन्तर बैठता है पर इस अंतर का कोई विशेष कारण अब तक नहीं बताया जा सका है और न यह अंतर सर्वत्र सही उतरता है।

4. रासो की भाषा–सम्बन्धी अव्यवस्था का समाधान करते हुए इस वर्ग के विद्वानों का कहना है कि उस समय से भी पहले से–अर्थात् सातवीं शताब्दी के आस–पास से सिन्ध और उसके बाद पंजाब पर मुसलमानों के आक्रमण होने आरम्भ हो गये थे और स्वयं चंद भी लाहौर के निवासी थे। अतः उनकी भाषा में अरबी–फारसी के शब्दों का आ जाना स्वाभाविक ही है।

   घटना–वैषम्य के बारे में इनका कथन है कि भारत का इतिहास अनेक बार विदेशियों द्वारा अपने –अपने दृष्टिकोण से लिखा गया है। इन्होंने भारतीयों को हीन बताने के प्रयत्न किए हैं। अतः इन परवर्ती इतिहासकारों की घटनाओं को प्रामाणिक न मान प्रत्यक्षदर्शी कवियों द्वारा वर्णित को ही प्रामाणिक मानना उचित है।

5.3.3 अर्द्धप्रामाणिक मानने वाला वर्ग

इस वर्ग के प्रमुख विद्वान हैं डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी, मुनि जिन विजय, नगरचंद नाहटा, डॉ. दशरथ शर्मा और डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि। रासो में दिए नामों के हेर–फेर के सम्बन्ध में इनका कहना है कि कई बार प्रसिद्ध और घरेलू नामों में अन्तर रहता है। बहुत सम्भव है कि पृथ्वीराज के बाल्य सखा कवि चन्द ने स्नेहवश घरेलू नाम दे दिये हों यह तर्क वजनदार है। इस वर्ग की मान्यता है कि पृथ्वीराज के दरबार में चंद नामक कवि अवश्य था और उसने पृथ्वीराज रासो की रचना भी की थी, किन्तु आज वह अपने मूलरूप में प्राप्त नहीं है। डॉ. द्विवेदी का मत है कि ''रासो का काव्यरूप दसवीं शताब्दी के साहित्य के रूप में समानता रखता है। इसकी संवाद प्रवृत्ति कीर्तिपताका और संदेश–रासक से साम्य रखती है। इसमें सभी प्राचीन कथानक रूढ़ियों का सुन्दर निर्वाह हुआ है। रासो में संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश–साहित्य की प्रवृत्तियां भी दृष्टिगोचर होती हैं। 12वीं शती की भाषा की संयुक्ताक्षरमय अनुस्वारान्त

प्रवृत्ति इसमें उपलब्ध होती है। रासो विशुद्ध रूप से इतिहास ग्रंथ नहीं है, प्रत्युत काव्य ग्रंथ है। हर्ष चरित के समान रासो में भी यत्र–तत्र दैवी शक्ति का आरोप है। वस्तु स्थिति यह है कि प्राचीन भारतीय वाङ्मय में इतिहास को सीमित भौतिक अर्थ में ग्रहण न करके उसे व्यापक साँस्कृतिक रूप में ग्रहण किया गया है। उसमें तथ्यों facts और कल्पना fiction का अद्भुत–सम्मिश्रण है तथा उसमें ऐतिहासिकता तथा निजंधरी कथाएं साथ–साथ चलती हैं।''

आचार्य द्विवेदी ने अनेक ऐसे प्रसंग भी गिनाए हैं कि जो भाषा, प्रवृत्ति आदि सभी दृष्टियों से युग का प्रतिनिधित्व करते हैं, अतः कहा जा सकता है कि मूल रासो में बाद में बहुत कुछ मिला दिया गया है।

5.4 विभिन्न रूपान्तर

पिछले कुछ वर्षों में रासो के विभिन्न रूपान्तर प्राप्त हुए हैं। इन प्रतियों को चार रूपों में विभाजित किया गया है–बृहद् रूपान्तर, मध्यम रूपान्तर, लघु रूपान्तर। इनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है–

1. बृहद रूपान्तर– इनमें 69 समय और 16306 छंद हैं। इसकी अब तक 33 प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं।
2. मध्यम रूपान्तर– इसकी ग्यारह प्रतियाँ प्राप्त हो चुकी हैं। दीक्षित जी के अनुसार इस रूपान्तर का अध्याय आर्या छंद के हिसाब से लगभग 7000 छंदों में है। इसमें 36 समय हैं।
3. लघु रूपान्तर– इसकी पांच प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं। इसमें कुल 15 समय (सर्ग) हैं। इसका छंद अध्याय 3500 के लगभग है।

4. लघुत्तम रूपान्तर–इसकी अभी तक दो प्रतियां उपलब्ध हो सकी हैं। इसमें कुल दस समय हैं और इसकी अध्याय संख्या स्वयं लिपिकर के अनुसार 1400 है।

अध्याय संख्या के अतिरिक्त इन चारों रूपान्तरों में अध्याय भेद भी इतना अधिक है कि चारों रूपान्तर किसी एक पुस्तक के अध्याय भेद न होकर स्वतंत्र रचनाओं जैसे प्रतीत होते हैं। कुछ विद्वानों की धारणा है कि लघु, लघुत्तम और मध्यम ये तीनों रूपान्तर बृहद रूपान्तर के ही संक्षिप्तीकरण हैं। इसके विपरीत कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि मध्यम और बृहद रूपान्तर लघु या लघुत्तम के ही परिवर्तित एवं परिवर्द्धित रूप हैं।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी की धारणा है कि रासो की रचना शुक–शुकी के संवाद रूप में हुई थी, अतः जिन सर्गों का आरम्भ इस संवाद से होता है, उन्हीं को प्रामाणिक माना जाना चाहिए। इस आधार पर द्विवेदी जी निम्नलिखित समयों को प्रामाणिक मानते हैं:–

1. आदि पर्व, 2. इच्छिनी–विवाह–प्रसंग, 3. इच्छिनी–विवाह कथा, 4. शशिव्रता–विवाह–प्रस्ताव, 5. कैमास–करनाटी–प्रसंग, 6. कनवज्ज समय, 7. बड़ी लड़ाई– समय, 8. वानवेध–समय।

प्रिय विद्यार्थियों ! इस अध्याय में आपने पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता,अप्रामाणिक मानने वाला वर्ग,अर्द्धप्रामाणिक मानने वाला वर्ग, विभिन्न रूपान्तर का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिह्न द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

निम्नलिखित बहु विकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दें।

• **बहुविकल्पीय प्रश्नः–**

1) 'पृथ्वीरास रासो' किस कवि द्वारा लिखा गया है?

क) चंदवरदाई ख) विद्यापति ग) केशव घ) सुन्दररदास

2) 'पृथ्वीराज रासो' को अप्रामाणिक मानने वाले वर्ग के समर्पक नहीं है

क) डॉ. बूलर ख) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

ग) श्याम सुन्दर दास घ) रामकर्मा वर्मा

3) 'पृथ्वीराज रासो' को प्रमाणिक मानने वाले वर्ग के विद्वान नहीं है

क) मोतीलाल ख) मेनाटिया ग) डॉ श्यामसुन्दरदास घ) मिश्रबंधु

4) 'पृथ्वीराज रासो' को अर्द्धप्रामाणिक मानने वाले वर्ग के विद्वान नहीं है।

क) डॉ हजारीप्रसाद द्विवेदी ख) सुनीतिकुमार चटर्जी

ग) मथुराप्रसाद दीक्षित घ) मुनि जिन विजय

5) 'पृथ्वीराज रासो' के बृहद रूपातन्त्र में अब तक कितनी प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं?

क) 32 प्रतियाँ ख) 33 प्रतियाँ ग) 34 प्रतियाँ घ) 35 प्रतियाँ

प्रिय विद्यार्थियो! अभी तक प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन आप निम्नलिखित रिक्त स्थान भरकर करें।

• **रिक्त स्थान भरोः–**

1) 'पृथ्वीराज रासो' के बृहद रूपान्तर में ––––––– समय है।
2) 'पृथ्वीराज रासो' के मध्यम रूपान्तर में ––––––––– प्रतियाँ प्राप्त हो चुकी हैं।
3) पृथ्वीराज रासो ––––––––– संगों में विभाजित है
4) पृथ्वीराज रासो में सबसे बड़ा समय ––––––––– युद्ध है।
5) डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी की धारणा है कि रासो की रचना –––––––––– के संवाद के रूप में हुई थी।

• **सही या गलतः–**

प्रिय विद्यार्थियो! निम्नलिखित के उत्तर सही या गलत चिह्न द्वारा देकर आप अभी तक प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें।

1) 'पृथ्वीराज रासो' के लघु रूपान्तर में पाँच प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं। ( )
2) 'पृथ्वीराज रासो' के लघुत्तम रूपान्तर में अभी तक तीन प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं। ( )
3) पृथ्वीराज रासो के हिन्दी साहित्य का प्रथम विकसनशील महाकाव्य कहा जा सकता है। ( )
4) पृथ्वीराज रासो के मध्यम रूपान्तर में 37 समय है। ( )

5.5 सारांशः–

इस प्रकार रासो की प्रामाणिकता का जो द्वंद्व प्रारम्भ हुआ था, वह एक महत्त्वपूर्ण दिशा में परिवर्तित होने के पश्चात् भी ज्यों का त्यों बना हुआ है और भविष्य में इसके समाधान की कोई आशा दृष्टिगोचर नहीं होती। अतः आवश्यकता इस बात की है कि इस विषाद को यहीं समाप्त कर दिया जाये, क्योंकि पृथ्वीराज रासो इतिहास नहीं, काव्य है। आचार्य हजारी प्रसाद के शब्दों में–

''निरर्थक मंथन से जो दुस्तर फेन राशि तैयार हुई है, उसे पार करके ग्रंथ के सात्विक रस तक पहुंचना हिंदी–साहित्य के विद्यार्थी के लिए असम्भव–सा व्यपार हो गया है। अतः इस निरर्थक मंथन को त्याग देना ही साहित्य और काव्य दोनों के हित में है।''

5.6 कठिन शब्द

1) वैषम्य – विषमता
2) आक्षेप – आरोप, निंध
3) अक्षुण्ण – अखंडित
4) मन्तव्य – मत
5) निजंधरी – पौराणिक

5.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र01 पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता पर सारगर्भित लेख लिखिए।

उ01 ————————————————————————————

____

____

____

____

____

प्र02 पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता – अप्रामाणिकता से जुड़े मुद्दे का विश्लेषण कीजिए।

उ02 ——————————————————————————————————————

——

——

——

प्र03 रासो के विभिन्न रूपान्तरों पर प्रकाश डालिए।

उ03 ——————————————————————————————————————

——

——

——

5.8 उत्तर कुंजी

- **स्व–मूल्यांकन (क)**
  1. चंदबरदाई
  2. श्याम सुंदर दास
  3. डॉ. दशरथ शर्मा
  4. मथुरा प्रसाद
  5. मथुराप्रसाद दीक्षित

- **स्व–मूल्यांकन (ख)**
  1. 69
  2. ग्यारह
  3. 69
  4. कनवण्ण
  5. शुक– शुकी

- **स्व–मूल्यांकन (ग)**
  1. सही
  2. गलत
  3. सही
  4. गलत

5.9 पठनीय पुस्तकें

1. रासो विमर्श–माताप्रसाद गुप्त 1962 – साहित्य भवन।
2. रासो काव्य परम्परा – सुमन राजे 1973 – प्रकाशन – ग्रन्थम कानपुर।
3. चन्दबरदाई और उनका काव्य – विपिन बिहारी प्रकाशक – हिन्दुस्तानी अकादमी 1952 ई.।

पद्मावती समय का काव्य सौष्ठव

रूपरेखा

6.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

6.2 प्रस्तावना

6.3 पद्मावती समय का काव्य–सौष्ठव

6.3.1 स्व–मूल्यांकन (क)

- बहु–विकल्पीय प्रश्न

6.3.2 स्व–मूल्यांकन (ख)

- रिक्त स्थान

6.3.3 स्व–मूल्यांकन (ग)

- सही गलत

6.4 सारांश

6.5 कठिन शब्द

6.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.7 पठनीय पुस्तकें

6.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

उद्देश्यः– प्रिय विद्यार्थियो! इस अध्याय का उद्देश्य आपकोः–

– 'पद्मावती समय' के काव्य सौष्ठव के महत्वपूर्ण पक्षों की विस्तृत जानकारी देना है।

– 'पद्मावती समय' की भाषा से अवगत करवाना है।

– 'पद्मावती समय' के शिल्प पक्ष को समझाना है।

अपेक्षित परिणाम–प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरान्त 'पद्मावती समय' के काव्य सौष्ठव के महत्वपूर्ण पक्षों की विस्तृत जानकारी, 'पद्मावती समय' की भाषा तथा पद्मावती समय' के शिल्प पक्ष को जानेगे।

6.2 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्येतिहास के प्रथम चरण आदि या वीरगाथा काल के प्रसिद्ध कवि चन्दबरदाई जाति के भाट या चारण थे। अनुश्रुति के अनुसार आप के पिता का नाम वेण व गुरु का नाम गुरु प्रसाद था। आपका जन्म 1148 ई. के लगभग लाहौर (अब पाकिस्तान) में हुआ था। अन्तः साक्ष्य के आधार परः

"बालिभद्र सु नागौर, चन्द उपजि लाहौरह।" (आदि समय) विद्वानों ने यह माना है कि चन्दबरदाई अपने समसामयिक दिल्ली नरेश पृथ्वीराज के सभासद, सखा तथा मन्त्री थे।

चन्दबरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो' आदिकालीन हिन्दी साहित्य का एक महत्वपूर्ण वीर गाथात्मक काव्य है। उपलब्ध रूप में इसकी कथा 69 समयों (सर्गों) में विभाजित है। इसके सम्बन्ध में डॉ. द्विजराम यादव का कहना है: "पृथ्वीराज रासो अपने युग की एक महत्त्वपूर्ण रचना है। जिसमें भारतीय समाज विशेषकर सामन्ती जीवन का चित्रण मिलता है। इस रचना के पठन–पाठन से तत्कालीन सामन्ती परिवार की मनोभावनाओं का परिचय आसानी से हो जाता है। सामाजिक राजनैतिक समस्याओं के चित्रण के साथ–साथ इस रचना की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि इसका साहित्यिक महत्व है।"

6.3 पदमावती समय का काव्य–सौष्ठव

हिन्दी साहित्य की आदिकालीन इस महत्वपूर्ण रचना का 'पद्मावती समय' महत्वपूर्ण सर्ग है। इसमें कवि चन्दबरदाई ने समुद्र शिखर के राजा विजयपाल की अपूर्व सुन्दर पुत्री पद्मावती के पृथ्वीराज के साथ विवाह का वर्णन किया है। 'पृथ्वीराज रासो' का यह 'समय' एक निजन्धरी काव्य रूढ़ि कथा के रूप में प्रस्तुत हुआ है। निजन्धरी काव्य रूढ़ि होते हुए भी कवि ने इस कुशलता से इसे कथा–क्रम के साथ जोड़ा है कि यह कथा ऐतिहासिक सी ही प्रतीत होती है। लोक–प्रचलित इस कथा–प्रसंग को चन्द ने काव्यात्मकता की दृष्टि से अद्भुत काव्य कौशल के साथ प्रस्तुत किया है। 'पद्मावती समय' वस्तुवर्णन, भावाभिव्यंजना, अलंकार योजना, भाषा तथा भावानुरूप छन्द योजना आदि सभी पक्षों से कवि के काव्य–प्रस्तुति सौष्ठव को प्रमाणित करने में समर्थ है।

काव्य सौष्ठव की दृष्टि से भावाभिव्यंजना की गणना प्रथमतः की जाती है। 'भाव' से अभिप्राय काव्य के अन्तरंग से है। क्योंकि कोई भी रचनाकार अपने मन की भावना अथवा कल्पना से भावक समाज को जो कुछ देना चाहता है उसके मूल में 'भाव' ही प्रधान होता है। इसी दृष्टि से काव्य के प्रमुख तत्त्व के रूप में भाव की गणना की जाती है। 'भाव' ही रस कोटि में पहुंच कर सहृदय सामाजिक को आह्लादित करने में समर्थ होते हैं। क्योंकि काव्य में कवि का भाव 'रस' रूप में उनके अकेले का निजी न रहकर सर्वसाधारण का हो जाता है। इस दृष्टि से पद्मावती समय में वीर रस की प्रधानता है साथ ही स्निग्ध धारा के रूप में श्रृंगार रस का प्रवाह भी मानक समाज को प्रभावित करने में समर्थ सिद्ध हुआ है।

'उत्साह' भाव की पूर्णता उत्तम प्रकृति वालों से सम्बद्ध वीर रस में होती है। युद्धवीर, दयावीर, धर्मवीर तथा दानवीर इसके चार रूप माने जाते हैं पर ''वीर शब्द का जैसा प्रयोग प्रचलित है उसके अनुसार केवल युद्धवीर में ही वीर रस का प्रयोग सार्थक माना जाता है।'' पद्मावती समय के पृथ्वीराज के विजयपाल, कुमोदमणि तथा शहाबुद्दीन से युद्धों का वर्णन करते समय युद्धवीर रस का पूर्णतया परिपाक होता है। युद्ध करते समय योद्धाओं का साहस शौर्य युद्ध के प्रति उत्साह देखते ही बनता है। शहाबुद्दीन के पृथ्वीराज से युद्ध प्रसंग द्रष्टव्य है:

बज्जिय घोर निसांन रान चौहान चहुं दिस।
सकल सूर सामंत, समरि बल जंत्र मंत्र तस।।
उट्ठि राज प्रथिराज, बाग मनौ लग्ग बीर नट।
कढ़त तेग मन बेग लगत मनौ बीजु झट्ट घट।
थकि रहे सूर कौतिग गगन, रगन मगन भइ स्रोन धर।
हदि हरीष वीर जग्गे हुलसि, हुरेउ रग नव रत्त बर।।

यहां पृथ्वीराज की अद्भुत वीरता का वर्णन बड़ा सटीक हुआ है।

योद्धा वेश में पृथ्वीराज का रूप भी दर्शनीय हैः

''गही तेग चहुवान हिंदवाँन रानं,
गज जूथ परि कोपि केहरि समानं।
करे रूंड मुंढ करी कुंभ फारे,
वरं सुर सामतं हुंकि गर्ज मारे।।"

युद्ध करते समय योद्धाओं का साहस, शौर्य, युद्ध के प्रति, उत्साह भी वीर रस परिपाक का सुन्दर दृश्य प्रस्तुत करता हैः

"अग्गे जु राज पृथिराज भूप,
पच्छे सु भयो सब सेन रूप।
पहुंचे सु जाय तत्ते तुरंग,
भुअ भिरन भूप जुरि जोध जंग।।
उलटी जु राज प्रथिराज बाग
धकि सूर गगन धर धसत नाग
सामंत सूर सब काल रूप,
गहि लोह छोह बाहै सु भूप।।"

वीर रस के साथ–साथ ही युद्ध भूमि के दृश्यों में रौद्र, भयानक और वीभत्स रसों का रूप भी पद्मावती समय में दिखाई देता है। युद्ध भूमि में वीर योद्धा का रूप तो रौद्र पूर्ण ही होता है। इसी प्रकार–युद्ध क्षेत्र में क्षतविक्षत योद्धाओं के शरीर व चारों ओर फैले खून का दृश्य वीभत्स रस का रूप प्रस्तुत करते हैंः

कहौं कमध, कहौ मध्य कहौकर, चरन अत्तरूरि।
कहौं कंध बह तेग, कहौ सिर जुद्धि फुद्धि उर।।
कहौं दन्त मन्त हय षुर षुपरि, कुंभ भ्रसुंडह रूंड सब।
हिन्दवाँन रान भय भाँन मुख, गहिय तेग चहुवान जब।।

इसी प्रकार युद्ध भूमि में भयंकर स्थिति का चित्रण जब 'भय' भाव को उद्दीप्त करता है तो भयानक रस के दर्शन होते हैंः

गिरद्दं उड़ी भांन अँधार रैनं।
गई सूधि सुज्ज नहीं मज्झि नैनं
सिरं नाय कम्मान प्रथिराज राज।
पकरियै साह जिमि कुल्लिंग बाजं।।

वीर रस के साथ–साथ गौण रूप में इन–भयानक, वीभत्स तथा रौद्र रस की योजना कवि ने अपने चरित नायक की वीरता का पूर्ण रूप से साक्षात् करने के अन्तर्गत की है और अपने इस प्रतिपाद्य में उसे पूरी तरह सफलता मिली है।

युद्ध भूमि के वीरत्व प्रस्तुत करते समय जहां पृथ्वीराज एक वीर योद्धा के रूप में युद्ध वीर की साक्षात् प्रतिमा हैं वही दान देने में भी उनका दानवीर रूप भी प्रस्तुत हुआ हैः

"दै दांन मांन षट भेष को,
चढ़ें साज द्रुग्गा हुजर।।"

वीर रस के साथ–साथ चन्दबरदाई ने 'पद्मावती समय' में श्रृंगार रस की स्निग्ध धारा की विविध उर्मियों से भी सहृदय सामाजिक को प्रभावित करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। श्रृंगार रस का मूल भाव 'रति' है जो मानव–हृदय की मधुरतम् भूख 'काम' की तृप्ति का साधन होता है। श्रृंगार रस उत्तम प्रकृति से युक्त भावाभिव्यंजन का रूप होता है। श्रृंगार रस के अन्तर्गत नायक नायिका के सौन्दर्य का चित्रण, पारस्परिक भाव मुग्धता व मिलन का रूप प्रमुख होता है। श्रृंगार का वियोग पक्ष भी मानसी–भावों को व्यथित करने में समर्थ सिद्ध होता है। पद्मावती समय में कवि चंद ने सर्वप्रथम पद्मावती का नख–शिख सौन्दर्य वर्णन कर चरित–नायिका के रूप सौन्दर्य का वस्तु वर्णन किया हैः

मनहुं कला ससभान कला सोलह सो बन्निय।
बाल बेस ससि ता समीप अम्रित रस पिन्निय।।
बिगसि कमल म्रिग भ्रमर, बेनु षंजन मृग लुट्टिय।
हीर कीर अरु बिंब, मोति नष सिष अहि घुट्टिय।।
छप्पति गयंद हरि हंस गति बिह बनाय संचौ सचिय।
पदमिनिय रूप पद्मावतिय, मनहुं काम कामिनि रचिय।।

नायिका के साथ नायक का शौर्य व रूप वर्णन भी किया हैः

कामदेव अवतार हुअ सुअ सोमेश्वर नन्द।
सहस किस झलहल काल रति समीव वर बिंद।

इसके साथ पूर्वराग के अन्तर्गत पद्मावती को श्रवण दर्शन से पृथ्वीराज के प्रति प्रेम–जाग्रत होना भी श्रृंगार रस का ही एक अंग हैः

''सुनत स्रवन प्रथिराज जस उमंग बाल विधि अंग।
तन मन चित चहुवांन पर बस्यो सुरत्तह रंग।

यहां नायिका की पूर्वराग जनित विह्वलता का मार्मिक चित्रण कवि ने किया है। साथ ही उसके यौवनावस्था आगमन परः

बैस बिती सिसुता सकल आगम कियो बसंत।

– से माता–पिता के मन में उसके विवाह की चिन्ता होती है और वे उसके लिए उपयुक्त वर की तलाश में कुल–गुरु की आज्ञा से ब्राह्मण को विवाह लग्न के साथ भेजते हैं जिसे कुमाऊँगढ़ नरेश कुमोदमणि स्वीकार कर लेता है। इसका संज्ञान होते ही पृथ्वीराज के प्रति अनुराग–पगी पद्मावती बिलख उठती हैः

पद्मावती बिलषि बर बाल बेली
कही कीर सों बात तब हो इकेली।
झट जाहु तुम्ह कीर दिल्ली सुदेसं,
बरं चाहुआन जु आवौ नरेसं।।

शुक पद्मावती का सन्देश पृथ्वीराज तक पहुँचा देता है और वे

उहै घारी उहि पलन, उहै दिन बेर उहै सजि।
सकल सूर सामन्त लिए सब बोलि बंब बजि।।

पद्मावती को प्राप्त करने के लिए चल पड़ते हैं, और

''दिष्षंत पंथ दिल्ली दिसानं,
सुष भयो सूक जब मिल्यो आन।

राह देखती नायिका को गौरी पूजन करते हुए उसकी मांगी मन्नत को पूर्ण कर देते हैंः

पूजियइ गउरि संकर मनाय,
दच्छिनइ अंग करि लगिय पाय।
फिर देषि देषि पृथिराज राज,
हंस मुद्ध मुद्ध कर पट्ट लाज।।
कर पकरि पीठ हय पर चढ़ाय,
लै चल्यौ निशपति दिल्ली सुराय।।''

इसके पश्चात् विरह की परिणति संयोग में हो जाती है।

''बोलि विप्र सोधे लगन्न सुभ घरी परद्विय।
हर बांसह मण्डप बनाय करि भांवरि गंठिय।।
ब्रह्म वेद उच्चरहि होम चौरी जु प्रत्ति वर।
पद्मावति दुलहिन अनूप दुलह प्रथिराज नर।।

भावाभिव्यंजन पक्ष के अन्तर्गत काव्य सौष्ठव की दृष्टि से वस्तु वर्णन का भी समावेश होता है। इस दृष्टि से जहां कवि ने पद्मावती का सौन्दर्य वर्णन किया है वहीं नायिका के श्रृंगार–प्रसाधनों, उसकी व्यवस्था का भी वर्णन बड़ी कुशलता से किया हैः

''कुट्टिल केस सुदेस पौहप रचियत पिक्कसद।
कमल गन्ध वय संध हंस गति चलत मंद मंद।।

इसी प्रकार बारात तथा सेना का वर्णन भी चित्ताकर्षक है। राज परिवार की मर्यादा के अनुरूप बारात तथा वाद्यों का वर्णन दर्शनीय हैः

''चले दस सहस्सं असवार जानं,
पूरियं पैदलं तैतीसु थानं।
मत्त मद गलित सै पंच दंती।
मनो सांम पाहार दुगपंत पंती।।

पद्मावती समय में जहां बारात आदि का वर्णन श्रृंगार रस की परिणति में सहायक हुआ है वहीं सेना और युद्ध का वर्णन वीर रस प्रवणता का परिचायक है।

शहाबुद्दीन की सेना का वर्णन करते हुए कवि ने शत्रु पक्ष के शौर्य का भी सराहनीय वर्णन किया हैः

क्रोध जोध जोधा अनंत पंती अनि गज्जिय।
बांन, नालि, हथनालि, तुपक, तीरह स्रब सज्जिय।।
पब्बै पहार मनो सार के, भरि भुजान गजनेश बल।
आए हंकारि हंकार करि षुरासान सुलतान दल।।

कवि युद्ध वर्णन में तो सहृदय सामाजिक की आंखों के सामने युद्ध भूमि का चित्र सा उकेरने में सफल हुआ हैः

न को हार नह जित्त, रहेइ न रहहिं सूर वर।
घर उप्पर भर परत करत अति शुद्ध महाभर।।

इस प्रकार वस्तु वर्णन से कवि चन्द का पद्मावती समय के काव्य सौष्ठव की दृष्टि से भावाभिव्यंजन बड़ी कुशलता से हुआ है।

काव्य–सौष्ठव में कवि–कुशलता का परिचय उसके भावों की अभिव्यक्ति में भी देखा जाता है क्योंकि भावों की अभिव्यक्ति यदि कुशलता पूर्वक न हो तो काव्य की भावयत्री प्रतिभा का औचित्य नहीं ठहरता। इस दृष्टि से कवि कारयत्री प्रतिभा का रूप भी देखना अनिवार्य होता है। इस रूप में सर्वप्रथम भावाभिव्यक्ति के माध्यम में भाषा को देखा जाता है।

भाषा मानव–जीवन का वह बहुमूल्य अवदान है, जिसने भावों एवं विचारों को विनिमय शक्ति प्रदान कर समस्त मानव जाति को मानवीय समाज के रूप में संगठित करने के साथ ही चिन्तन एवं अभिव्यक्ति की क्षमता प्रदान की है। इस विषय में आचार्य दण्डी की उक्ति दर्शनीय हैः

''इदमन्धन्तमः कृत्सनं जायेत भुवनत्रयम।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसार न दीप्यते।।''

इससे स्पष्ट है कि भाषा ही विश्व की सर्वोत्कृष्ट ज्योति है जो मानव–हृदय के अन्धकार को दूर करती है।

भाषा की दृष्टि से चन्दबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो की भाषा युगीन सन्दर्भों में प्रयुक्ति की दृष्टि से 'चारणी' भाषा है जिसमें भाव तथा परिस्थिति का परिवेश के अनुरूप संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, ब्रज, डिंगल तथा पंजाबी की विशेषताओं की छाप दिखाई देती है। भाषा की प्रकृति के अनुरूप पद्मावती समय की भाषा हिन्दी साहित्येतिहास के प्रथम सन्धि युग (अपभ्रंश+हिन्दी) की भाषा है। जहां कवि ने 'प्रेम' पक्ष को लिया है वहां भाषा का माधुर्य गुण ध्वनित होता है और जहां युद्धों का वर्णन है वहां भाषा में ओजगुण प्रधान है। ''पसु पंछी सब मोहिनी, सुरः नर, मुनियर पास'' –जहां माधुर्य गुण युक्त है वहीं ''करी चीह चिक्कार कर–कल्प भग्गे, मंद तंजिय लाज उमंग भग्गे।'' ओज गुण युक्त भाषा का उदाहरण है।

इस प्रकार पद्मावती समय में चन्दबरदाई की भाषा समृद्ध कल्पना और सशक्त अभिव्यक्ति से युक्त है। वर्ण्य विषय को जिस ढंग से कवि ने सशक्त शब्दावली में प्रस्तुत किया है वह उसके भाषा अधिकार व प्रयुक्ति की कुशलता का परिचायक है।

'पद्मावती समय' की भाषा में भाव–प्रस्तुति को अलंकरण के माध्यम से कवि ने आकर्षक बनाया है। काव्य में अलंकारों का उपयोग भावों को रमणीयता प्रदान करने में सार्थक होता है। पं. रामदहिन मिश्र की मान्यता हैः ''अलंकार भाव–भाषा के आभूषण हैं।'' इनसे युक्त भाषा माधुर्य भाव से युक्त होकर सहृदय की भावनाओं को जागृत करने में

सक्षम होती है। इस दृष्टि से पद्मावती समय में भाव–भाषा की प्रभावोत्पादिकता और प्रेषणीयता में कवि को पूर्ण सफलता मिली है। 'पद्मावती समय' में अलंकारों के दोनों भेदों–शब्दालंकार व अर्थालंकार – का भावानुरूप सुन्दर प्रयोग हुआ है। शब्दालंकारों में कवि ने अनुप्रास के विभिन्न भेदों का प्रयोग पद्मावती समय में किया है। अनुप्रास में वर्णों की आवृत्ति होती हैः 'जंग, जुरन, जालिम, जुझार' में 'ज' की आवृति की गई है। 'बिलखि बर बाल बेली में 'ब' की आवृत्ति है। इसी प्रकार अन्य कई स्थानों पर ऐसे प्रयोग मिलते हैं।

शब्दों की आवृत्ति भिन्नार्थ रूप में होने पर यमक अलंकार होता हैः 'भंडार लछिय अगनित पदम, सो पदम सेन कुंवर में 'पदम'की आवृत्ति है पर दोनों शब्दों का अर्थ भिन्न, पहले 'पदम' का अर्थ संख्यावाचक है जबकि दूसरा नामवाचक।

इसी प्रकार अर्थालंकारों का भावानुरूप प्रयोग भी कवि ने विशेष रूप से किया है। उत्प्रेक्षा, उपमा, भ्रान्तिमान, रूपकातिशयोक्ति, रूपक, प्रतीप आदि अलंकारों का प्रयोग 'पद्मावती समय' में हुआ है। यहां 'उत्प्रेक्षा' अलंकार का विशेष रूप में प्रयोग दिखाई देता हैः 'मनहुं कला समभान', 'मनहुं काम–कामिनी रचिय', 'मनै राहु छाया सुरत' आदि उदाहरण इसकी पुष्टि करते हैं।

छंद की यति–गति आदि के नियमों से भाव–भाषा की अभिव्यक्ति को एक निश्चित गति मिल जाती है और इससे भाव सम्प्रेषण में लय बद्धता के कारण अधिक आकर्षण आ जाता है। ''छंद–ज्ञान से अध्याय का शुद्ध ढंगों से विवेचन हो सकता है।'' डॉ. विजेन्द्र का यह कथन पृथ्वीराज रासो के सन्दर्भ में और भी सटीक बैठता है क्योंकि चन्दबरदाई ने अपनी इस रचना में पूर्ववर्ती परम्परित छन्दों के साथ ही अपभ्रंश में प्रचलित सभी छन्दों को भी युगीन सामयिक छन्दों की भावानुकूल प्रयुक्ति से अपनी इस काव्य रचना के कथ्य को एक विशेष गतिशीलता प्रदान की है।

पृथ्वीराज रासो के सम्यक् अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि चन्दबरदाई मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग करने में सिद्ध हस्त थे। 'पद्मावती समय' में भी कवि का यह कौशल दिखाई देता है। कवि ने जहां इस समय में अपभ्रंश में प्रचलित 'दूहा' तथा 'गाथा' छन्द का इसमें प्रयोग किया है। वहीं पुरानी परम्परा के 'कवित्त' तथा 'भुजंगी' छन्द को भी भावानुकूल प्रयुक्ति के लिए उचित माना है। इनके अतिरिक्त अपभ्रंश का पद्धरि छन्द भी प्रयुक्त हुआ है।

दूहा व पद्धरि छन्द का प्रयोग पद्मावती समय में बहुतायत हुआ है। इस दूहा (दोहा) की प्रत्येक पंक्ति की 24 मात्राएं होती हैं व 13–11 पर यति होती है–

> **''सुक समीप मन कुंवरि को, लग्यौ बचन के हेत।**
> **अति विचित्र पंडित सुआ, कथत जु कथा अमेत।।**

पद्मावती समय में यह छन्द 25 बार प्रयुक्त हुआ है। इसके साथ ही पद्धरि छन्द भी अपभ्रंश का बहु श्रुत छन्द है। 16 मात्रा वाले इस छन्द में चार चतुष्कल होते हैं। इसके अन्त में लघु रखने की छूट है, कहीं कहीं अन्त में जगण शैद्ध का भी विधान होता हैः

> **''अग्गे जु राज प्रथिराज भूप,**
> **पच्छे सु भयो सब सेन रूप।**
> **पहुंचे सु जाय तत्ते तुरंग,**
> **भुअ भिरन भूप जुरि जोध जंग।।''**

पद्मावती समय में प्रयुक्त 'गाहा'–गाथा छन्द प्राकृत भाषा का प्रमुख छन्द रहा है। संस्कृत में इस छन्द को आर्या छन्द के रूप में मान्यता प्राप्त थी। पद्मावती समय में इस छन्द के दो उदाहरण मिलते हैंः–

''उच्चरिय कीर सुनि बयनं,
हिन्दुवान दिल्ली गढ़ अयनं।
जहाँ इन्द अवतार चहुआनं,
तहं पृथिराजह सूर सुभानं।।'

पद्मावती समय में कवित्त भुजंगी छन्दों का भी प्रयोग मिलता है। कवित्त रूप में वास्तव में चन्द ने रोला+ उल्लाला के मिश्रित रूप छप्पय छन्द का प्रयोग किया है। चार यगन शैद्ध वाले भुजंगी (भुजंगप्रयात) छंद का प्रयोग भी कवि ने प्रसंगानुरूप भाषा सौन्दर्यवर्द्धन हेतु किया है। जहां कवित्त का प्रयोग 14 बार किया गया है वहीं भुजंगी छन्द का प्रयोग नौ बार हुआ है। कवित्त का प्रयोग कथा प्रवाह के लिए किया गया है। जबकि भुजंगी छन्द का प्रयोग उछाह और वियोग दोनों ही स्थितियों के लिए किया है।

पद्मावती समय में प्रयुक्त छन्द वैविध्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने भावाभिव्यंजना को सार्थक रूप देने के लिए जिस लयबद्धता को स्वीकार किया है उससे उसके भावों का प्रभाव पाठक वर्ग पर बहुत गहरा पड़ता है।

प्रिय विद्यार्थियों !

इस अध्याय में आपने पद्मावती समय' के काव्य सौष्ठव के महत्वपूर्ण पक्षों की विस्तृत जानकारी प्राप्त की।

अब आप निम्नलिखित अब बहुविकल्पीय प्रश्नों द्वारा, उत्तर सही या गलत चिह्न द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

6.3.1 स्व–मूल्यांकन (क)

- निम्नलिखित बहु विकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दें।

1) वीरागाथा काल के प्रसिद्ध चन्दवरदाई का जन्म कब हुआ था?

   क) 1148 ई. ख) 1248 ई. ग) 1575 ई. घ) 1345 ई.

2) कवि चन्दबरदाई ने 'पद्मावती समय' में वीर रस के साथ ही ओर किस रस का वर्णन किया है?

   क) अद्भुत ख) श्रृंगार ग) करुण घ) शांत

3) चन्दबरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो' की नायिका पद्मावती के पिता का क्या नाम था?

   क) राजा जयचन्द ख) राजा सोमेश्वेर ग) राजा समुद्रगुप्त घ) राजा विजयपाल

4) श्रृंगार रस का मूल भाव क्या है?

   क) विस्मय ख) शोक ग) निर्वेद घ) रति

5) पद्मावती समय में कौन सा छन्द 25 बार प्रयुक्त हुआ है?

   क) 2 चौपाई ख) सवैया ग) दूहा (दोहा) घ) सोरठा

6.3.2 स्व–मूल्यांकन(ख)

आप निम्नलिखित रिक्त स्थान भरें।

क) चन्दबरदाई जति के भाट या ––––––––– थे।

ख) चन्दबरदाई के पिता का नाम –––––––– था।

ग) चन्दबरदाई के गुरु का नाम ––––––––– था।

घ) चन्दबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो आदिकालीन हिन्दी साहित्य का एक महत्वपूर्ण ––––––––– काव्य है।

ङ) –––––––– पद्मावती का सन्देश पृथ्वीराज तक पहुंचा देता है।

6.3.3 स्व–मूल्यांकन (ग)

- सही या गलत

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर सही या गलत चिह्न द्वारा देकर आप अभी तक प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें।

क) वीर रस के साथ–साथ ही युद्ध भूमि के दृष्यों में रौद्र, भयानक और विभत्स रसों का रूप भी पद्मावती समय में दिखाई देता है। ( )

ख) पद्मावती समय में प्रयुक्त 'गाह्य' – गाथा छन्द प्राकृत भाषा का प्रमुख छन्द रहा है। ( )

ग) दोहा की प्रत्येक पंक्ति में 25 मात्राएं होती हैं। ( )

घ) पद्मावती समय में भुजंगी छन्द का प्रयोग उछाह और वियोग दोनों ही स्थितियों के लिए किया है। ( )

6.4 सारांशः

इस प्रकार 'पद्मावती समय' में कवि चन्दबरदाई ने अपने वर्ण–विषय को जिस ढंग से सुसज्जित कर प्रस्तुत किया है वो उनकी काव्य कुशलता का परिचायक है। काव्य रूढ़ियों का निजन्धारी कथा के रूप में प्रयोग जिस प्रकार से कवि ने किया है उससे कल्पना में भी साकारता के रूप की झलक मिलती है अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'पद्मावती समय' के भाव और अभिव्यक्ति गत शिल्प पक्ष दोनों ही दृष्टियों से काव्य–प्रतिभा का प्रभावी रूप दिखाई देता है। यह प्रसंग चन्दबरदाई के अपने युग के अग्रिम पंक्ति के कवियों में प्रतिष्ठित करने में समर्थ है।

6.5 कठिन शब्द

क) सहृदय – दयालु

ख) वीभत्स – घृणित

ग) उद्दीप्त – चमकता हुआ

घ) प्रवणता – नम्रता

ङ) सौष्ठव – सुंदरता

6.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र01 काव्य सौष्ठव की दृष्टि से 'पद्मावती समय' सर्ग में भावाभिव्यंजना के महत्व को स्पष्ट करें।

उ01 ———————————————————————————————————————

प्र02 पद्मावती समय के काव्य–सौष्ठव पर विस्तार–पूर्वक चर्चा करें।

उ02 ———————————————————————————————————————

6.7 उत्तर कुंजी

- **स्व–मूल्यांकन (क)**

(1) 1148 ई. (2) श्रृंगार (3) राजा विजयपाल (4) रति (5) दूहा (दोहा)

- **स्व–मूल्यांकन (ख)**

(1) चारण (2) वेण (3) गुरू प्रसाद (4) वीर गाथात्मक (5) शुक

- **स्व–मूल्यांकन (ग)**

(1) सही (2) सही (3) गलत (4) सही

6.8 पठनीय पुस्तकें

1. रासो विमर्श–माताप्रसाद गुप्त प्रकाशन – 1962 – प्रकाशन – साहित्य भवन।
2. रासो काव्य परम्परा – सुमन राजे प्रकाशन – 1973 – प्रकाशन – ग्रन्थाम कानपुर।
3. चन्दबरदाई और उनका काव्य–विपिन बिहारी 1952 – प्रकाशन – हिन्दुस्तानी अकादमी।

विद्यापति की लोक–चेतना

रूपरेखा

7.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

7.2 प्रस्तावना

7.3 विद्यापति व्यक्तित्व कृतित्व

7.3.1 व्यक्तित्व

7.3.2 विद्यापति की रचनाएं

7.4 विद्यापति की लोक–चेतना

7.5 स्व–मूल्यांकन

- विकल्पीय प्रश्न
- रिक्त स्थान
- सही गलत

7.6 सारांश

7.7 कठिन शब्द

7.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.9 उत्तर कुंजी

7.10 पठनीय पुस्तकें

7.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

उद्देश्य– प्रिय विद्यार्थियो! इस अध्याय का उद्देश्य है आपकोः–

– विद्यापति के व्यक्तित्व की जानकारी देना।

– विद्यापति की रचनाओं से अवगत करवाना।

– विद्यापति की लोक–चेतना का परिचय समझाना।

अपेक्षित परिणाम– प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरान्त आप इस अध्याय के माध्यम से विद्यापति के व्यक्तित्व, रचनाओं तथा विद्यापति की लोक–चेतना अवगत होंगे।

7.2 प्रस्तावनाः–

विद्यापति एक प्रतिभा सम्पन्न कवि थे। शृंगारी कवि होने के साथ–साथ वह परम भक्त भी थे। विद्यापति पदावली में महाकाली, शिव–पार्वती, राधा–कृष्ण आदि प्रसंगों का चित्रण देखने को मिलता है। इसके अतिरिक्त विद्यापति एक दरबारी कवि थे। अपने जीवन का अधिकांश समय उन्होंने विभिन्न राजाओं के दरबार में बिताया इसके बावजूद वह अपने समय के सामाजिक जीवन के प्रति जागरूक रहे। न केवल उन्होंने अपने आश्रयदाताओं के विलास एवं पराक्रम का वर्णन किया अपितु तत्कालीन समाज की रूढियों, मान्यताओं एवं आचार–व्यवहार का भी चित्रण किया। इस प्रकार विद्यापति के काव्य में लोक–चेतना की अभिव्यक्ति सुन्दर ढंग से प्रस्तुत हुई है।

7.3 विद्यापति व्यक्तित्व – कृतित्व

7.3.1 (क) व्यक्तित्वः

चाहे कवि हो, चाहे शास्त्र रचयिता, भारतीय व्यक्तित्व की प्रवृत्ति आत्माभिव्यक्ति की ओर तो रही किन्तु आत्म–प्रकाशन की ओर नहीं। 'पर' और 'परोक्ष' का प्रकाशन और उद्‌घाटन तो इन्होंने किया, किन्तु 'स्व' अथवा 'निज' को छिपाये ही रखा। सौभाग्य से विद्यापति की कृतियां उनके जीवन–वृत्त पर पर्याप्त प्रकाश डालती हैं, भले ही उन्होंने आत्म–कथा न लिखी हो। उनकी 'पदावली' तथा अन्य रचनाओं में जिन व्यक्तियों के नामों का उल्लेख है, जिन तथ्यों का उद्‌घाटन है, उन्हें ही अन्तर्साक्ष्य स्वीकार किया जाना चाहिए, बहिर्साक्ष्य में वह अटपटा इतिहास है, जो सही तौर पर लिखा ही नहीं जा सकता।

1. जन्म स्थानः–

विद्यापति का जन्म स्थान है –'बिसपी' ग्राम। इसे 'गढ़ बिसपी' भी कहते हैं। यह स्थान बिहार के दरभंगा जिला के अन्तर्गत जरैल परगना में है और उत्तर–पूर्व रेलवे के कमतोल स्टेशन के अत्यन्त निकट है। प्रसिद्ध है कि यह ग्राम मिथिला के महाराज शिवसिंह ने अपने राज्याभिषेक के अवसर पर विद्यापति को 'अभिनव जयदेव' की उपाधि सहित उपहार–स्वरूप दिया था।

जन्मः विद्यापति के जन्म के सम्बन्ध में डॉ. उमेश मिश्र का कथन है– इनके पिता गणपति ठाकुर महाराज गणेश्वरसिंह के राज–सभासद थे और महासभा में अपने पुत्र विद्यापति को ले जाया करते थे। महाराज गणेश्वर की मृत्यु 252 लक्ष्मण संवत् में हुई थी, अतः विद्यापति उस समय 10 या 11 की अवस्था के अवश्य रहे होंगे, जिसमें उनका राज दरबार में आना–जाना हो सकता था। दूसरी बात यह है कि विद्यापति के प्रधान आश्रयदाता शिवसिंह का जन्म 243 लक्ष्मण संवत् में हुआ और 50 वर्ष की अवस्था में राजगद्दी पर बैठे। यह माना जाता है और यह भी लोगों की धारणा है कि विद्यापति उनसे दो वर्ष मात्र बडेघ थे। तीसरी बात यह है कि विद्यापति ने 'कीर्तिलता' में अपने को 'खेलन कवि' कहा है, इसलिए यह अवश्य कीर्तिसिंह या वीरसिंह की दृष्टि में अल्पवयस्व के साथ खेलने के लायक रहे होंगे। इन सभी बातों से अनुमान होता है कि विद्यापति 252 लक्ष्मण संवत् में लगभग 10 या 11 वर्ष के थे। इस प्रकार डॉ. उमेश मिश्र के अनुसार विद्यापति का जन्म 1351 ई० ठहरता है। परन्तु श्री नगेन्द्र नाथ गुप्त उनका जन्म 1358 ई० बताते हैं और महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री 1357 ई०। श्री रामवृक्षबेनीपुरी 1350 ई० और

डॉ. बाबूराम सक्सेना 1357 ई० से 1359 ई० के बीच किसी भी समय। श्री रमानाथ झा के स्वर में स्वर मिलाते हुए श्री शिवनंदन ठाकुर, डॉ. जयकांत मिश्र आदि 1360 ई० में विद्यापति का जन्म मानते हैं।

मृत्यु–काल–जन्म काल की भांति विद्यापति का मृत्यु–काल भी अनुमान का विषय बना हुआ है। जन्म–काल का अनुमान राजा शिवसिंह के माध्यम से हुआ, इसी प्रकार मृत्यु–काल का अनुमान भी राजा शिवसिंह की मृत्यु से लगाया जाता है।

कवि ने स्वयं कहा भी है–

"सपन देखल हम शिवसिंघ भूप।
बतिस बरस पर सामर रूप।"

इससे स्पष्ट हो जाता है कि विद्यापति राजा के 32 वर्ष बाद तक अवश्य जीवित रहे। इस समय तक कवि 87–88 वर्ष के हो चुके थे। इस समय उन्हें अपने पूर्वज, गुरूजन आदि भी स्वप्न में दिखाई देने लगे थे और उन्हें अपना अन्त निकट जान पड़ने लगा था, जैसा कि लिखा भी है–

"बहुत देखल गुरूजन प्राचीन।
आब भेलहुँ हम आयु विहीन।"

सम्भवतः इसी के आस–पास कवि का शरीरांत हो गया हो। उनकी मृत्यु के सम्बन्ध में एक पद्यांश प्रचलित है–

"कातिक धवल त्रयोदसि जान।
विद्यापतिक आयु अवसानि।"

इस प्रकार विद्यापति का देहावसानकाल कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी सन् 1448–1449 ई० के आस–पास ठहरता है।

2. दन्तकथाएं–

विद्यापति एक ओर बडे प्रतिभा–सम्पन्न कवि थे तो दूसरी ओर परम भक्त भी थे। उन्होंने भगवान् शिव, श्रीकृष्ण, दुर्गा देवी तथा गंगा माता की स्तुति में अनेक पदों की रचना की है। कवि विद्यापति की कविता–शक्ति के सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। उनमें से एक यह है कि राजा शिवसिंह ने दिल्ली के बादशाह को जब 'कर' देना बन्द कर दिया तो दिल्ली के बादशाह ने उन्हें बन्दी बना लिया। कवि विद्यापति जब अपने आश्रयदाता तथा मित्र को छुड़ाने बादशाह के पास गये तो उन्होंने अपनी कवित्व–शक्ति का भी बखान किया। उन्होंने बादशाह से यह भी कहा कि मैं अदृश्य–काव्य की रचना भी करता हूँ। न देखी हुई चीज का वर्णन करने की प्रतिभा से बादशाह को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कवि से वादा किया कि यदि तुमने ऐसी कविता की रचना की तो तुम्हारे मित्र को कैद से मुक्त कर दिया जायेगा। बादशाह ने आज्ञा दी कि इसी समय स्नान करके आई हुई नारी का वर्णन करो। कवि ने तत्काल ही सद्यःस्नाता का वर्णन करते हुए गाया–

"कामिनि करए सनाने।
हेरितहि हृदय हने पंचबाने।।
चिकुर गरए जलधारा।
जनि मुख–ससि डर रोअए अँधारा।"

किन्तु बादशाह इससें संतुष्ट नहीं हुआ। उसे संदेह बना रहा कि सम्भव है सद्यः स्नाता सुन्दरी कवि ने पहले कभी देखी हो, अतः उसने विद्यापति को काठ के सन्दूक में बन्द करवाकर कुएँ में उल्टा लटकवा दिया और एक दासी को आज्ञा दी कि तुम कुएँ की मुंडेर से नीचे झाँकते हुए, अग्नि जलाओ। सुन्दरी के ऐसा करने पर विद्यापति को आदेश दिया गया कि वह अपनी काव्य–प्रतिभा से बताए कि अब क्या हो रहा है? विद्यापति ने गाया–

"सुन्दरि निहुरि फूँकल आगि।
तोहर कमल भ्रमर मोर देखल मदन उठल जागि।"

इस पर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने शिवसिंह को कैद से छोड़ दिया।

इसी प्रकार उनके भक्त–जीवन के सम्बन्ध में भी अनेक दन्तकथायें प्रचलित हैं। कहते हैं कि इनकी प्रगाढ़ भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान शिव नौकर के रूप में इनकी सेवा में तत्पर रहते थे। विद्यापति को बहुत समय बाद इस रहस्य का पता चला। कहते हैं, किसी समय विद्यापति यात्रा पर निकले थे। मार्ग में बड़ी प्यास लगी, किन्तु कहीं पानी नहीं मिला। अपने नौकर 'उगना' से विद्यापति ने आग्रह किया कि जैसे भी हो, पानी लाकर दो अन्यथा प्राण निकल जायेंगे। उगना गया और लौटे में जल लेकर लौटा। निर्मल शीतल जल को पीकर विद्यापति को आश्चर्य हुआ उन्होंने उगना से बार–बार प्रश्न किया कि जहाँ दूर–दूर तक पानी का ठिकाना नहीं वहाँ यह गंगा–जल कैसा? इस पर उगना ने अपना वास्तविक रूप प्रकट कर दिया और विद्यापति से वचन लिया कि वे इस रहस्य को किसी पर प्रकट नहीं करेंगे अन्यथा भेद प्रकट होते ही वे अन्तर्धान हो जायेंगे। दुर्भाग्यवश ऐसा ही हुआ भी। विद्यापति की कठिन रोग–दशा में उगना से कोई अपराध हो गया। रोष के आवेश में कवि की धर्मपत्नी ने लकड़ी से उगना को मारा। इस पर विद्यापति के मुँह से निकल पड़ा 'हरे, हरे तुम तो साक्षात शंकर का अपमान करती हो'। बस, इतना सुनना था कि 'उगना' रूपधारी शिव अन्तर्धान हो गये। विद्यापति ने 'उगना' के विरह में एक पद की रचना भी की है–

"उगना हे मोर कतए गेलाह।
भाँग नहिं बटुआ रूसि बैसलाह।"
जोहि हेरि आनि देल हैसि उठलाइ।
जे मोर कहता उगना उदेस।।
ताहि देबओ कर कंगना वेस।
नंदन वन में भेंटल महेस।।
गौरि मन हरखित मेंटल कलेस।
विद्यापति भन उगना सों काज।।
नहिं हितकर मोरा त्रिभुवन राज।

विद्यापति की गंगा–भक्ति के सम्बन्ध में भी किंवदन्ती है। विद्यापति अपने अन्तिम समय में गंगा में प्रवाहित होना चाहते थे, किन्तु वे इतने रोगी और दुर्बल थे कि गंगा तक जा नहीं सकते थे, अन्ततः उन्होंने गंगा माता से विनती की–

'भनहि विद्यापति समदओं तोही,
अंतकाल जनु बिसरह मोही।।'

और उपालम्भ भी दिया कि मैं तेरे निकट सदा ही आता रहा, अब तू दो मील चल कर क्या मेरे लिए आ नहीं सकती। कहते हैं गंगा माता ने कवि की विनती सुनी और उन्हें बहा कर ले गईं। कवि पद्माकर के सम्बन्ध में भी लगभग ऐसी ही किंवदन्ती प्रचलित है।

इन दन्तकथाओं और किंवदन्तियों में सत्यासत्य कितना है और कितना नहीं इसका विश्लेषण करना व्यर्थ है। इनकी पृष्ठभूमि से इतना निष्कर्ष तो निकलता ही है कि विद्यापति एक प्रतिभाशाली आशुकवि भी थे और आस्थावान् भक्त भी।

विद्यापति निस्सन्देह प्रतिभा के धनी थे। यदि वे उच्चकोटि के कवि न होते तो न तो उन्हें अनेक राजाओं का आश्रय ही मिलता, न उनकी प्रशंसा में इतनी और इस प्रकार की दन्तकथायें ही प्रचलित होतीं न उनके पदों को मिथिला की जनता गाती फिरती और न ही वे अनेकानेक उपाधियों से विभूषित होते। साहित्य में इतनी अधिक उपाधियाँ प्राप्त करने वाला सम्भवतः एक भी कवि नहीं मिलेगा। अभिनव जयदेव, दशावधान, कवि–शेखर, कवि–कंठहार, कवि–रंजन, राज–पंडित, खेलन कवि, सरस कवि, कवि–रत्न, नव कवि आदि उपाधियों से विभूषित कवि विद्यापति निस्सन्देह कवि शिरोमणि थे।

7.3.2 विद्यापति की रचनाएँ

विद्यापति ने संस्कृत, अपभ्रंश और मैथिली तीनों भाषाओं में अपनी रचनाएँ लिखी हैं। वे संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। उनके परिवार में संस्कृत के अनेक विद्वान जन्म ले चुके थे। विद्यापति के समय में संस्कृत केवल शिष्ट एवं विद्वान लोगों की भाषा रह चुकी थी, जनसाधारण में उसका प्रचार न था। हाँ, अपभ्रंश और मैथिली को लोक–भाषा के रूप में लोकप्रियता प्राप्त हो चुकी थी। संस्कृत के विद्वानों की परम्परा का अनुसरण करते हुए विद्यापति ने अपनी अधिकांश रचनाएं संस्कृत में ही लिखी हैं किन्तु देशभाषा अथवा लोकभाषा की महत्ता एवं उपादेयता को स्वीकार करते हुए उन्होंने अपभ्रंश (अवहटठ) और मैथिली में भी काव्य प्रयास किया है। अपभ्रंश एवं मैथिली जैसी देशभाषाओं की महत्ता की ओर कवि ने इन शब्दों में संकेत किया है–

''सक्कय वाणी कुह जन भावइ
पाउअ रस को मम्म न पावइ।
देसिल वयना सब जन मिट्ठा
तं तैसन जम्पओं अवहट्ठा''।।

संस्कृत में विद्यापति की निम्नलिखित रचनाएं प्राप्त होती हैं–

(1) भूपरिक्रमा, (2) पुरूषपरीक्षा, (3) लिखनावली, (4) शैवसर्वस्व–सार (5) शैवसर्वस्वसार–प्रमाणभूत–पुराणसंग्रह, (6) गंगावाक्यावली, (7) विभागासार, (8) दानवाक्यावली, (9) दुर्गाभक्तितंरगिणी, (10) गयापत्तलक और (11) वर्षकृत्य।

अपभ्रंश में उनकी दो रचनाएं पाई जाती हैं–

(1) कीर्त्तिलता और (2) कीर्त्तिपताका।

इसी प्रकार मैथिली में उन्होंने अनेक पदों की रचना की जिनका संग्रह 'पदावली' के नाम से प्रसिद्ध है। विद्यावती की इन समस्त कृतियों का संक्षिप्त परिचय यहां दिया जाता है–

(1) भूपरिक्रमा–विद्यापति ने इस ग्रंथ की रचना महाराज देवसिंह के आदेश से की थी। इसमें उन कथाओं का वर्णन है जो शापग्रस्त होने पर बलराम को मिथिला में सुनाई गई थीं। बलराम ने शापग्रस्त होकर प्रायश्चित के लिए मिथिला से नैमिषारण्य तक विविध तीर्थों की यात्रा की। भूपरिक्रमा में रोचक कहानियों के साथ–साथ इन तीर्थों के हृदयग्राही वर्णन भी पाए जाते हैं। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित ही हैं। इसकी एक हस्तलिखित प्रति एशियाटिक सोसायटी, बंगाल के कलकत्ता स्थित पुस्तकालय में पाई जाती है।

(2) पुरूषपरीक्षा–यह कृति महाराज शिवसिंह की आज्ञा से लिखी गई थी। यह एक नीतिग्रन्थ है। सुकुमार बुद्धि वाले बालकों को नीतिकुशल बनाने तथा कामकला में रूचि रखने वाली परस्त्रियों के मनोविनोद के लिए विद्यापति ने इस ग्रन्थ की रचना की है। इसमें भिन्न–भिन्न प्रकार के पुरूषों के लक्षण तथा उदाहरण प्रस्तुत किए गये

हैं। पारावार नामक राजा अपनी विवाहयोग्य पुत्री पद्मावती के लिए वर ढूँढना चाहता है। राजा के पूछने पर सुबुद्धि नामक मुनि ने उसे बताया कि उसकी पुत्री के लिए 'पुरूष' वर होना चाहिए। मुनि ने 'पुरूष' को पहचानने के लिए अनेक लक्षण बताते हुए पुरूष के चार भेद स्वीकार किये – (1) वीर पुरूष, (2) सुधी पुरूष, (3) विद्यानिपुण पुरूष और (4) पुरूषार्थी पुरूष।

इस ग्रन्थ में प्रायः सभी कथाएँ ऐसी हैं जिनके उदाहरण लोक में सदैव मिल सकते हैं। इसलिए साधारण लोग भी इन कथाओं को सरलतया हृदयगम कर सकते हैं। कवि की भाषा–शैली सरल, सुबोध एवं रोचक सिद्ध होती है।

(3) लिखनावली–यह ग्रन्थ विद्यापति ने राजा पुरादित्य की आज्ञा से लिखा था। इसकी रचना अल्पशिक्षित लोगों को विभिन्न प्रकार के पत्रों की लेखन–शैली की शिक्षा देने के उद्देश्य से की गई। इसमे उच्च कक्षा, समकक्षा और अधः कक्षा के लोगों के प्रति साधारण पत्र–व्यवहार के लिए उपयोगी तथा विवाद के विभिन्न विषयों से सम्बद्ध पत्रों के नमूने प्रस्तुत किए गये हैं।

लिखनावली में कुल मिलाकर 89 पत्रों के नमूने प्रस्तुत किये गये हैं। ये सारे पत्र संस्कृत में ही लिखे गये हैं। तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था पर भी ये पत्र अच्छा प्रकाश डालने में समर्थ हैं।

(4) शैवसर्वस्वसार–यह ग्रन्थ विद्यापति ने महाराज पद्मसिंह की पत्नी विश्वासदेवी के आदेश से लिखा था। इसमें शिव–पूजाविधि का प्रतिपादन विस्तार के साथ किया गया है। ग्रन्थ के आरम्भ में राजा भवसिंह से लेकर विद्यापति के समय तक के राजाओं का वर्णन भी उपलब्ध होता है। यह ग्रन्थ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। एशियाटिक सोसायटी, बंगाल के पुस्तकालय तथा दरभंगा राजकीय पुस्तकालय में इसकी हस्तलिखित प्रतियां सुरक्षित हैं।

(5) शैवसर्वस्वसार–प्रमाणभूत–पुराणसंग्रह–यह ग्रन्थ भी शैवसर्वस्वसार का समकालीन है। इसमें विद्यपति ने शैवसर्वस्वसार में दिये गये प्रमाणों का संग्रह प्रस्तुत किया है। यह ग्रन्थ भी अभी तक मुद्रित नहीं है। इसकी एक प्रति दरभंगा राजकीय पुस्तकाल्य में विद्यमान है।

(6) गंगावाक्यावली–इस ग्रन्थ की रचना भी विद्यापति ने विश्वासदेवी की आज्ञा से की थी। गंगा के माहात्म्य एवं पूजा आदि पर इसमें विस्तार के साथ विचार किया गया है। हरिद्वार से लेकर गंगासागर तक के तीर्थों के विशद वर्णन भी इस में उपलब्ध होते हैं। इस में रामायण, महाभारत, पुराण, स्मृति आदि के वचन प्रमाण रूप में उद्धृत किये गये हैं।

(7) विभागसार–दायभागनिरूपण सम्बन्धी यह ग्रन्थ विद्यापति ने राजा नरसिंहदेव की आज्ञा से लिखा था। इसमें दामादों में धन के विभाजन की व्यवस्था पर विचार किया गया है। दायभाग के अतिरिक्त द्वादश पुत्र लक्षण निरूपण, अपुत्र– धनाधिकार निरूपण एवं स्त्री–धनविभागानिरूपण आदि विषयों पर भी इस ग्रन्थ में प्रकाश डाला गया है।

(8) दानवाक्यावली–इस ग्रंथ की रचना राजा नरसिंहदेव की पत्नी धीरमति की आज्ञा से की गई थी। इसमें तुलापुरूष, स्वर्ण, रथ, हाथी के दान के महत्त्व, दान के भेदों एवं विधियों का विवेचन किया गया है। दानविधि के निरूपण में कवि ने इस रचना में कल्पतरू, दानसागर, रत्नाकर, लक्ष्मीधरसागर आदि के वचन पर्याप्त मात्रा में उद्धृत किये हैं। बान के योग्य विविध प्रकार की वस्तुओं का वर्णन भी इसमें विस्तार के साथ किया गया है।

(9) दुर्गाभक्तितरंगिणी– इस ग्रन्थ की रचना विद्यापति ने महराजा भैरवसिंह के आदेश से की थी। इसमें दुर्गापूजा–पद्धति का विस्तार के साथ निरूपण किया गया है। मिथिला में दुर्गापूजा– महोत्सव बडे उत्साह के साथ मनाया जाता है। और विशेषकर आश्विन तथा चौत्र के नवरात्रों में दुर्गा–पूजा का अधिक महत्त्व माना जाता है। विद्यापति ने इस ग्रन्थ में दुर्गा–पूजा की विधियों पर अच्छा प्रकाश डाला है।

(10) गयापत्तलक– इस कृति में गया श्राद्धसम्बन्धी विधियों का विवेचन है। विद्यापति ने किस राजा के आश्रय मे रहते हुए इस ग्रन्थ की रचना की, यह अभी तक ज्ञात नहीं है। इसकी अनेक प्रतियां मिलती हैं जिनके अन्त में महामहोपाध्याय विद्यापति का नाम उल्लिखित है।

(11) वर्षकृत्य–इसमें वर्ष भर के सारे शुभ पर्वों का विधान है। विविध देवी–देवताओं की पूजा, व्रत, दान आदि के नियमों का विवेचन इस ग्रन्थ में विस्तार के साथ किया गया है। इसमें विविध ग्रन्थों की उक्तियां प्रमाणरूप में कवि ने उद्धृत की हैं।

(12) कीर्तिलता–यह ग्रन्थ अपभ्रंश(अवहट्ठ) में लिखा गया है। विद्यापति ने महाराज कीर्तिसिंह के यशोगान के उद्देश्य से इसकी रचना की है।

इसमें कीर्तिसिंह के पिता गणेश्वर की मृत्यु, कीर्तिसिंह की विजय और राज्याभिषेक आदि का वर्णन है। मलिक असलान–द्वारा राजा गणेश्वर की हत्या के पश्चात् उसके पुत्र कीर्तिसिंह सहायता के लिए जौनपुर के शासक इब्राहीमशाह के पास पहुंचते हैं। कवि ने कीर्तिसिंह की जौनपुर–यात्रा तथा जौनपुर नगर की समृद्धि का वर्णन विस्तार के साथ किया है।

(13) कीर्तिपताका– कीर्तिलता के समान इस ग्रन्थ की रचना भी अपभ्रंश (अवहट्ठ) भाषा में की गई है। इसमें महाराज शिवसिंह की कीर्तिपताका का वर्णन है। दोहा, छन्द तथा गद्य में इसकी रचना हुई है। यत्र–तत्र संस्कृत के श्लोक एवं संस्कृत–गद्य का प्रयोग भी किया गया है। अर्धनारीश्वर शिव तथा गणेश की वन्दना से ग्रन्थ का आरम्भ होता है। इसके पश्चात् कवि ने राजा शिवसिंह के शौर्य, ऐश्वर्य एवं विलासमय जीवन के मनोरम चित्र अंकित किये हैं। अन्त में सुलतान के साथ शिवसिंह के युद्ध का वर्णन बहुत विस्तार के साथ किया गया है।

(14) पदावली–विद्यापति ने बाल्यावस्था से लेकर मृत्युकाल तक मैथिली भाषा में समय–समय पर जिन पदों की रचना की थी उनका संग्रह 'पदावली' नाम से प्रसिद्ध है। 'पदावली' के अनेक संस्करण उपलब्ध होते हैं। उनका आधार मुख्यतया दो–तीन हस्तलिखित ग्रन्थ हैं। विद्यापति के पदों का एक संग्रह मिथिला से प्राप्त हआ है। कहा जाता है कि विद्यापति के प्रपौत्र ने यह संग्रह प्रस्तुत किया था। दूसरा संग्रह महामहोपाध्याय स्वर्गीय हरप्रसाद शास्त्री ने नेपाल के राजपुस्तकालय से प्राप्त किया था। इन दोनों संग्रहों के अतिरिक्त विद्यापति के कुछ पद बंगाल के 'कल्पतरू' में भी संगृहीत किये गये थे। मैथिली कवि लोचनकृत 'राजतरंगिणी' में भी उनके कुछ पद पाये जाते हैं। इसी प्रकार 'मिथिलागीत संग्रह' में विद्यापति के कुछ पद संगृहीत हैं। बंगाल तथा नेपाल से प्राप्त पदों में स्थानीय बोलियों के सम्मिश्रण से उनका वास्तविक स्वरूप बहुत कुछ विकृत हो गया है। वस्तुतः मिथिला में प्रचलित विद्यापति के पदों में ही उनके वास्तविक स्वरूप की रक्षा हुई है और इन पदों की शुद्धता की रक्षा में मिथिला की स्त्रियों का विशेष हाथ रहा है।

'पदावली' के पदों को हम मुख्यता तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं– शृंगाररसात्मक, भक्तिपरक और विविधविषयक। पदावली के अधिकांश पद शृंगारी हैं। राधा–कृष्ण एवं नायक–नायिका के प्रेम, मिलन, विरह आदि से सम्बद्ध पदों की गणना शृंगाररसात्मक पदों में की जाती है। ऐसे पदों में कवि ने नायिका तथा नायक के प्रेम के अत्यन्त मादक

एवं हृदयग्राही चित्र अंकित किये हैं। ये पद पाठकों तथा श्रोताओं के हृदय में शृंगाररस का उद्रेक करने में पूर्णतया समर्थ हैं। भक्तिपरक पदों में शिव की महेशवानी, नचारियाँ तथा दुर्गा, गौरी, गंगा आदि की स्तुति से सम्बद्ध पद सम्मिलित किये जाते हैं। तृतीय वर्ग में विविध विषयों से सम्बन्ध रखने वाले पदों को स्थान दिया जाता है। दृष्टिकूट, प्रहेलिका आदि विभिन्न विषयों से सम्बद्ध तथा राजा शिवसिंह के राज्याभिषेक वर्णन तथा युद्धवर्णन सम्बन्धी पद इसी श्रेणी में स्थान पाने योग्य हैं।

7.4 विद्यापति की लोक–चेतना

समाज और कवि के सम्बन्धों पर काफी वाद–विवाद हुआ है। आलोचकों का एक वर्ग किसी कवि या लेखक की सफलता का सबसे बड़ा मानदण्ड उसकी लोक–चेतना को मानता है और उसके साहित्य के हर पहलू का अध्ययन समाज को परिपार्श्व में रख कर करना चाहता है। ऐसी अवस्था में जब समाज में कई प्रकार की विचारधाराएं संघर्षरत हों और प्रत्येक मतवाद के मानने वाले हर दूसरे को अस्वस्थ, प्रतिक्रियावादी और रूढ़िग्रस्त तथा विकास के प्रतिकूल कहते हों, यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि कौन कवि स्वस्थ सामाजिक प्रवृत्तियों का पोषक है और किस ने अस्वस्थ तथा रूग्ण मानव–मन के चित्रण में ही अपना समय नष्ट किया है। कई बार एक कवि की रचनाएं भी मतवादों के इस जाल में उलझ कर नाना प्रकार की मान्यताओं का शिकार हो जाती हैं। उदाहरण के लिए आधुनिक युग के किसी कवि को लीजिए। उसके साहित्य के अध्ययन करने वाले किन्हीं दो आलोचकों का मत मिलता नजर न आयेगा। एक ही कवि अथवा लेखक की रचनाओं को कुछ आलोचक समाज की यथातथ्य प्रवृत्तियों का आईना, स्वस्थ समाज का निर्माण करने वाली और सामाजिक यथार्थ को सही रूपों में चित्रित करने वाली बताएंगे। इन परस्पर विरोधी मतवादों के घटाटोप में साधारण पाठक के लिए यह निर्णय करना भी कठिन हो जाता है कि अमुक लेखक कैसा है या था। भारतीय परम्परा साहित्य और लोक से समुचित गठबंधन की रही है। अतः प्रत्येक महाकवि की रचनाओं में इस गठबंधन का स्वरूप देखने को मिलता है।

विद्यापति एक दरबारी कवि थे। उनके जीवन का अधिकांश भाग विभिन्न राजाओं के दरबार में व्यतीत हुआ। राजा शिव सिंह और रानी लखिमा देवी जैसे आश्रयदाताओं से प्रेरणा पाकर उन्होंने 'पदावली' के अनेक पदों की रचना की। राजदरबार में रहकर भी वह अपने समय के सामाजिक जीवन के प्रति जागरूक रहे। उन्होंने अपने आश्रयदाताओं के ऐश्वर्य, विलास एवं पराक्रम का ही वर्णन नहीं किया अपितु जनता के हृदय की सहज भावनाओं को भी वाणी प्रदान की है। उनके काव्य में तत्कालीन समाज की मान्यताओं, रूढ़ियों, आचार–व्यवहार एवं जीवन–मूल्यों का समावेश है। यह दूसरी बात है कि उन्होंने सिद्धों या निर्गुण सन्तों, विशेष रूप से कबीर की तरह समाज की कुरीतियों एवं रूढ़ियों के प्रति उग्र विरोध प्रकट नहीं किया। कवि राजनीति की तरह मतवाद का प्रचार नहीं कर सकता और न ही समाचार–सम्पादक की तरह किसी घटना या परिस्थिति का चित्रण ही करना उसे अभीष्ट होगा। साहित्य की अपनी मर्यादा और शैली है तथा उस शैली में व्यक्त सामाजिक यथार्थ को समझने में थोड़ा कष्ट अवश्य होगा।

विद्यापति का जन्म संस्कृत के विद्वानों के परिवार में हुआ था और वह स्वयं भी संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। संस्कृत में अनेक ग्रन्थों की रचना करके विद्यापति ने अपनी संस्कृत–साहित्य–विषयक विद्वत्ता का परिचय दिया था। परन्तु अपने समय के जन–जीवन के साथ निकटतम सम्बन्ध स्थापित करने के लिए उन्होंने पदावली की रचना में बुध–जनों की भाषा को अपनाते हुए लोक चेतना के प्रति आदर भाव व्यक्त किया है। जनता के हृदय के भावों को व्यक्त करने के लिए उन्होंने जन भाषा को ही माध्यम बनाया है।

विद्यापति की 'पदावली' एक शृंगारिक गीतिकाव्य है। गीतिकाव्य में कवि की दृष्टि समष्टिगत न होकर व्यक्तिपरक की अधिक होती है। पर विद्यापति ने जन–जीवन से पृथक रहकर केवल अपनी व्यक्तिगत भावनाओं का चित्रण 'पदावली'

में नहीं किया है, अपितु जनमानस के साथ अपने हृदय का तादात्म्य स्थापित करते हुए जनजीवन को वाणी प्रदान की है। उनमें कवि की व्यक्तिगत भावनाओं के साथ–साथ लोकजीवन की गम्भीरतम अनुभूतियों का भी सरल स्वाभाविक प्रतिफलन हुआ है–

"मोरा रे अंगनवाँ चनन केरि गछिया,
ताहि चढ़ि कुररय काग रे।
सोने चोंच बाँधि देब तोए बायस,
जवो पिया आओत आज रे।"

विरहिणी नायिका का काक–शगुन–सम्भाषण सम्बन्धी यह पद लोक–हृदय का स्पर्श करने में पूर्णतया समर्थ है। यहाँ विरहिणी नायिका एक सरल स्वभाव वाली सामान्य नारी के रूप में हमारे सामने उपस्थित होती है। उसके हृदय की मिलनोत्कण्ठा की व्यंजना यहाँ स्वाभाविक ढंग से सीधी–सादी लोक–भाषा में हुई है।

विद्यापति के गीतों मे लोक हृदय को स्पर्श करने की पूरी क्षमता पाई जाती है। इसीलिए इनके गीत मिथिला में सामाजिक उत्सवों और त्योहारों के अवसर पर गाए जाते हैं। विवाह के पश्चात् प्रथम समागम के अवसर पर मिथिला की स्त्रियाँ नवविवाहित वधू को शिक्षा देती हुई गाती हैं–

"सुन्दरि चललिहु पहु–घर ना।
चहु दिस सखी सब कर धर ना।
जाइतहु लागु परम डर ना।
जइसे ससि काँप राहु डर ना।"

मिथला के जन–समाज में विद्यापति के गीतों को जितनी ख्याति प्राप्त हुई उतनी अन्य किसी कवि के गीतों को नहीं मिल सकी। मिथिला में विद्यापति के पद लोक–गीत बन गए हैं। वे जनसाधारण के हृदय में स्थान पाने में समर्थ हुए हैं।

लोक–तत्वों के चयन में विद्यापति का अद्भुत कौशल दृष्टिगत होता है। उन्होंने अनेक गीतों छन्द, धुन, स्वर एवं शब्द विन्यास लोकजीवन से ग्रहण किए और संयोग तथा वियोग के वर्णनों में लोकजीवन की मान्यताओं को स्थान दिया। उदाहरणार्थ बालक के रूप में बसंत का वर्णन करते हुए बालक–जन्म के अवसर पर जनजीवन में प्रचलित टोने–टोटके एवं अन्य लौकिक प्रथाओं का चित्रण किया है–

"मधु लए मधुकर बालक दएहलु, कमल–पंखरी लाई।
पओनार तोरि सूत बाँधल कटि, केसर कइलि बघनाई।
नख नव पल्लव सेज ओछाओल, सिर देल कदम्बक माला।
बैसलि भमरी हरउद गाबए, चका चन्द निहारा।
कनअ केसुअ सुति–पत्र लिखिए हलु, रासि नछत कए लोला।
कोकिल गनित–गुनित भल जानए, रितु बसन्त नाम थोला"।

विद्यापति जैसे दरबारी कवि ने विरहिणी नायिका के दुःख का चित्रण करते समय उसे रानी या राजकुमारी की भूमिका में नहीं रखा है, जो उनके लिए ज्यादा उचित और उस वातावरण के अनुकूल होता। कवि ने नायिका के रूप में एक ऐसी नारी की कल्पना की है, जिसके चारों तरफ शील और मर्यादा की बाड़ लगी है, परिवार है, सास और ननद की पहरा देती आँखें हैं।

विद्यापति ने राधा और कृष्ण को सामान्य नायिका एवं नायक के रूप में चित्रित करते हुए उनके प्रेम–व्यापार में सामान्य प्रेमिका और प्रेमी के हृदयगत भावों को प्रतिबिम्बित किया है। उनके राधा और कृष्ण पथ में, यमुना–तट पर और कुंज भवन में एक दूसरे से मिलते हैं। उनकी रूपासक्ति, मिलनोत्कण्ठा, हर्षोल्लास, हास्यविनोद आदि का चित्रण विद्यापति ने सामान्य प्रेमी और प्रेमिका के रूप में किया है। एक साधारण प्रेमी के रूप में कृष्ण कभी कुन्जभवन से निकलती राधा के मार्ग को रोक कर उससे छेड़छाड़ करने लगते हैं–

"कुन्जभवन सएँ निकसलि रे, रोकल गिरिधारी।
एकहि नगर बस माधव हे, जनि कर बटमारी।
छाड़ि कन्हैया मोर आँचर रे, फाटत नव सारी।
अपजस होएत जगत भरि हे, जनि करिअ उघारि।"

राधा भी कभी एक सामान्य प्रेमिका के रूप में कृष्ण का हाथ पकड़ कर यमुना पार पहुँचाने का अनुरोध करती है–

"कर धरु करु मोहे पारे। देब मैं अपरुब हारे कन्हैया।
सखि सब तेजि चलि गेलि। न जानू कोन पथ भेली कन्हैया।
हम न जाएब तुअ पासे। जाएब ओघट घाटे कन्हैया।।"

विद्यापति ने प्रेम–विरह के चित्रण में सर्वत्र मनोवृत्ति का ही अंकन किया है, ऐसा तो नहीं परन्तु इतना सत्य है कि विद्यापति की राधा अपने विरह में भी निराश नहीं है और न ही संसार का किंचित अमंगल सोच पाती है। यही नहीं, जहां नायिका अपनी विरह की पीड़ा से व्याकुलचित होकर अपना नाश कर देना चाहती है, वहां विद्यापति उसे आश्वासन देते हुए उसे उसके प्रिय से मिलने की आशा बँधाते हैं–

"सून सेज मोहि सालए रे
पिया बिनु घर मोये आजि
विनती करौं सहलोलवि रे
मोहि देह अगिहर साजि
विद्यापति कवि गाओल रे
आइ मिलबे प्रिय तोर।"

विरह के इन गीतों में जहां नायिका आत्मग्लानि से पीड़ित होकर हजारों तरह की परिस्थितियों की कल्पना कर के अपने दुःसह दुःख की भयंकरता से ऊब कर अनिष्ट की बात सोचती है, कवि उसे प्रत्येक परिस्थिति में सखी के मुख से, पथिक के मुख से अथवा अपने मुख से आश्वासन के दो शब्द, आशादायक दो बातें अवश्य कहता है। विद्यापति के इन गीतों को गाकर जाने कितनी प्रोषितपतिकायें सुदूर कर्मरत अपने प्रेमियों व पतियों के विशेष दुःख को सँभालने में समर्थ हुई होंगी। ऐसे गीत स्वस्थ प्रवृत्तियों के विकास के द्योतक हैं।

उन्होंने जनजीवन में प्रचलित स्वस्थ प्रवृत्तियों का ही नहीं, अपितु अस्वस्थ प्रवृत्तियों का भी चित्रण यत्र तत्र किया है। लोक जीवन में प्रचलित अनमेल विवाह और बाल विवाह जैसी कुप्रथाओं पर भी कवि ने तीखा व्यंग्य किया है–

"पिया मोर बालक हम तरुनीगे,
कौन तप चुकलौंह, भेलौंह जननी गे।
पहिर लेल सखि एक दछिन क चीर,

पिया के देखैते मोर दगध शरीर।
पिया लेली गोद कए चललि बजार,
हटिया के लोग पूछे के लागु तोहार।
नहि मोर देवर कि नहीं छोट भाई,
पुरुब लिखल छल बालमु हमार।
बाट रे बटोहिया कि तुहु मोर भाई,
हमर समाद नैहर लेले जाउ।
कहिहुन बाबा के किनथु थेनु गाइ,
दूधवा पियाइ के पोसता जमाइ।"

उपर्युक्त पंक्तियों में विद्यापति ने लड़की के बाप की भर्त्सना नहीं की, उसे मूर्ख भी नहीं कहा और न उसका समाज के लोगों द्वारा उपहास कराया, परन्तु व्यंग्य कितना तीखा और मार्मिक है।

समाज में कुत्सित जीवन व्यतीत करने वाली कुटनी नारी का विद्यापति ने सजीव चित्रण किया है। यह सत्य है कि आर्थिक वैषम्य या दीनता का उल्लेख वैसा नहीं है जैसा, आजकल की यथार्थवादी कही जाने वाली कविताओं में होता है। यह सम्भव भी नहीं था क्योंकि चौदहवीं शताब्दी में एक कवि को न तो आजकल का बुद्धिवादी वातावरण प्राप्त था, न उसके सामने वर्ग–संघर्ष की वर्तमान परिस्थितियाँ ही स्पष्ट थीं। इसलिए कुटनी नारी पर लिखी कविता में दुःख की अभिव्यक्ति है, लेकिन दूसरी तरह से कामकला के प्रचार ने जिस प्रकार के छिछले प्रणय का प्रचार किया, उसमें कुटनी नारी या शिष्ट शब्दों में दूती का महत्व है। यह दूती केवल प्रेमी–प्रेमिकाओं के स्वाभाविक प्रेम–व्यापार में ही सहायता नहीं देती थी, बल्कि नागरजनों की काम–वासना की तृप्ति के लिए नाना–प्रकार के जाल फेंक कर भोली–भाली व मूर्ख लड़कियों को फँसाने का भी कार्य करती थी। एक ऐसी ही दूती जो अपने सम्पूर्ण यौवन को इस प्रकार के छद्मपूर्ण प्रेम–व्यापार में व्यतीत कर चुकी है, वृद्धावस्था आने पर अपने पूर्व जीवन के प्रति विरक्ति से भर उठती है। कुटनी नारियाँ न केवल परनारी को लोभादि दिला कर फँसाने का ही कार्य करती थीं, बल्कि स्वयं भी एक प्रकार से वेश्या का जीवन व्यतीत करती थीं। विद्यापति ने एक ऐसी ही वृद्धा कुटनी का सजीव चित्र उपस्थित किया है–

"हम धनि कूटनी परिनत नारी
बैकहु वास न कहौं विचारि
काहु के पान काहु दिअ सान
कत न हकारि करल अपमान
कय पर माद धिया मोर भेल
आहे यौवन कतय चल गेल
भागैल कपोल अलक भरि साजु
संकुल लोचने काजर आंजु
धवला केस कुसुम करू वास
अधिक सिंगार अधिक उपहास
थोथर थैया थन दुहुँ भेल
गरूउ नितम्ब कहाँ चलि गेल
यौवन सेस सुखायेल अंग

पाधु हेर विलुलइत अनंग
खने खस घोघट विघट समाज
खने–खने अब हकारलि लाज
भनहिं विद्यापति रस नहिं छेओ
हासिनी देह पति देवसिंह देओ।"

उपर्युक्त पद में कुटनी अपने पूर्व जीवन से विरक्त होकर अपनी आत्म–ग्लानि एवं पश्चात्ताप की भावना व्यक्त करती है। विद्यापति ने यहाँ परिस्थितियों के कारण विवश होकर इस प्रकार गर्हित जीवन बिताने वाली कुटनी का चित्रण पर्याप्त सहानुभूति के साथ किया है। कुटनी अपने चरित्र के कारण अपनी लड़की पर लगाये जाने वाले प्रवादों से दुःखी है, वह जानती है कि यौवन च्युत नारी का यह कृत्रिम श्रृंगार उसका उपहास करता है। परन्तु वह अपनी परिस्थितियों के कारण विवश है, कवि ने आर्थिक परिस्थितियों का स्पष्ट उल्लेख न करते हुए भी इस ओर काफी साफ ढंग से संकेत कर दिया है।

विद्यापति के कृष्ण, नंदराजा के राजकुमार नहीं ग्वाल थे, इसलिए जिस वातावरण में उन्हें उपस्थित किया गया है, वह उसी के उपयुक्त हैं। राधा कृष्ण पर व्यंग्य करती हुए कहती है कि कैसा मूर्ख है यह कृष्ण, कहीं कौड़ी से घोड़ा खरीदा जाता है या उधार मांगने से घी मिलता है? बैठने के लिए स्थान तक नहीं और और खाने के लिए उत्तम व्यंजन माँगता है–

"कउड़ि पठओले पाव नहीं घोर,
घीव उधार माँग मति भोर।
बास न पाबए माँग उपाति,
लोभ क रासि पुरूष थिक जाति।"

सामान्य सामाजिक जीवन में प्रचलित परकीया प्रेम के अनेक चित्र पदावली में पाए जाते हैं–

"हम जुवती पति गेलाह विदेस।
लग नहिं बसए पडौसिया क लेस।
सासु दोसरि कछओ नहिं जान।
आँख रतौंधि सुनये नहिं कान।
जागह पथिक जाह जनु भोर।
राति अँधार–गाम बड़ चोर।"

ऐसे पदों में ग्राम्य–जीवन के सजीव चित्र देखने को मिलते हैं। उनमें विद्यापति का लोक–जीवन सम्बन्धी ज्ञान अधिक प्रकाश में आता है।

विद्यापति की सामाजिक चेतना का परिचय एक और प्रकार से मिलता है। उन्होंने सारे अभिजात प्रयोगों के बावजूद कई स्थानों पर घोर ग्राम्य या लोकप्रसूत प्रयोग किये हैं। ऐसे प्रयोगों से कवि की सामाजिक पैठ और बातचीत की स्वाभाविकता को ग्रहण करने की कोशिश का पता चलता है। मुहावरे और कहावतों के प्रयोग में विद्यापति ने कमाल कर दिया है। विशेष रूप से ये प्रयोग राधा तथा अन्य गोपियों की बातचीत में दिखाई पड़ते हैं। लोक प्रयोग प्रायः स्त्रियों के वार्तालाप में ज्यादा सुरक्षित रहते भी हैं। उदाहरण–

"सखि हे बूझल कान्ह गोआर
पितरक टाँड़ काज दुहु काओन लहु
ऊपर चकमक सार"

कान्ह बिल्कुल गँवार है, यह मैंने आज जाना। पीतल का आभूषण ऊपर से मुलम्मा। यह चमक–दमक से कोई काम करने वाला नहीं।

राधा अपनी सखियों को अपना रात का अनुभव बताती हुई मर्मस्पर्शी लोकोक्तियों की योजना द्वारा कृष्ण के मूर्खता पूर्ण व्यवहार पर व्यंग्य करती है–

"किं कहब हे सखि रातुक बात।
मानसिक पड़ल कुबानिक हात।
काँच कंचन न जानह भूल
गुंजा रतन करह समतूल।
जे किछु कभु नहि कलारस जान।
नीर खीर दुहु करह समान।
तन्हि सौ कहाँ पिरित रसाल।
बानर कंठ कि मोतिम माल"

कवि ने लोक प्रचलित मुहावरों के प्रयोग से भाषा को एक नई शक्ति दी तथा अपने कथ्य को अधिक जीवन्त और लोक–जीवन–सम्पृक्त बनाया। मुहावरों के साथ ही उन्होंने लोक जीवन के अन्य तत्व भी ग्रहण किए। उदाहरणस्वरूप उनके गीतों में कई स्थानों पर प्रेम–विरह आदि की सूक्ष्म परिस्थितियों में लौकिक अन्धविश्वास, भूत–प्रेत, टोना–टोटका तथा अन्य प्रकार के रूढ़ विश्वासों का प्रयोग हुआ है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने इन विश्वासों को हानिकर या अवैज्ञानिक समझ कर इनका प्रतिकार किया, ऐसा करने का वह युग भी नहीं थाश् किन्तु उन्होंने अपनी सहजता में ही इनका विरोध किया है। उदाहरण के लिए, उनके गीत में एक प्रेमिका गोपी अपनी सास को धोखा देने के लिए भूताविष्ट का अभिनय करती है, कृष्ण एक ओझाइन बनकर आते हैं और अकेले में मंत्र–प्रयोग की आज्ञा ले कर घर के लोगों को उसके पास से हटा देते हैं, गोपी का रोग दूर हो जाता है–

"निरजन होई मंत्र जब झाड़िए
तब इह होएब भाल
हत सुन जटिला घर दोहे लाओल
निरजन दुहु एक ठाम
सब जन निकसल बाहर बइसल
पुरल कान्ह मन काम
बहु खन अतनु मंत्र पढ़ि झारल
भागल तब सेहो देवा
देव देयासिनी घर सयें निकलल
चातुरि बूझबि केवा।"

इस प्रकार के भूत–प्रेत के बहाने के पीछे कितना सत्य होता है, क्या–क्या अभिप्राय होते हैं, उनका एक व्यंग्यात्मक संकेत यहाँ विद्यापति ने दिया है। राधा के विरह–प्रसंगों में भी इसी प्रकार के लौकिक विश्वासों का प्रयोग किया गया है। इसके कारण ऐसे वर्णन ज्यादा मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी हो सके हैं।

विद्यापति ने 'पदावली' में यत्र–तत्र सुन्दर भावपूर्ण नीतिपरक सूक्तियों का प्रयोग कर के अपनी लोकजीवन सम्बन्धी चेतना का परिचय दिया है। लौकिक जीवन में धनी का आदर और निर्धन की उपेक्षा युग–युग से होती आई है। विद्यापति ने इस जीवन–सत्य का उद्घाटन भी किया है–

"धनिकक आदर सब तहँ होय,
निरधन बापुर पुछय न कोय।"

इसी प्रकार कृपण पुरूष के जीवन का उपहास कवि ने निम्न पंक्तियों में किया है–

"कृपन पुरूष के केओ नहि निक कह,
जग भरि कर उपहास।
निज धन अछइत नहिं उपभोगब,
केवल परहिक आस।"

विरह सम्बन्धी पदों में विद्यापति ने अनेक पदों में लौकिक विश्वासों का प्रयोग करके अपनी उक्तियों को अधिक मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी बनाया है। कृष्ण के विरह में राधा कृष्ण की निष्ठुरता की ओर संकेत करती हुई अपनी आत्मग्लानि इन पंक्तियों में व्यक्त करती है–

"की हम साँझ क एकसर तारा,
भादब चौथ क ससि।
इथि दुहु माझ कवन मोर आनन,
जे पहु हेरसि न हँसि।"

राधा कहती है कि क्या मैं साँझ का एकाकी तारा हूँ अथवा भादों की चौथ का चन्द्रमा, जो कि मेरे प्रियतम मेरे मुख को कलंकित समझ कर मेरी ओर देखते भी नहीं? राधा की ऐसी उक्तियों में लोक–संस्कार अन्तर्निहित हैं।

7.5 स्व–मूल्यांकन :

प्रिय विद्यार्थियों!

इस अध्याय में आपने विद्यापति की पदावली में लोक चेतना का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों द्वारा, उत्तर सही या गलत चिह्न द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिएः–

1) विद्यापति पदावली में किस प्रसंग का चित्रण नहीं मिलता है?

   क) महाकाली   ख) शिव–पार्वती   ग) राधा–कृष्ण   घ) राम–सीता

2) निम्नलिखित में से विद्यापति की रचना कौन सी नहीं है?

   क) पुरुषपरीक्षा   ख) लिखनावलि   ग) जानकी मंगल   घ) भूपरिक्रमा

3) विद्यापति की रचना पुरुषपरीक्षा किस महाराजा की आज्ञा से लिखी गई थी?

क) महाराज शिवसिंह ख) राजा प्रुरादित्य ग) महाराज पद्मसिंह घ) राजा नरसिंहदेव

4) विद्यापति की रचना दुर्गाभक्तिरंगिनी किस महाराजा के आदेश से लिखी गई थी?

क) राजा नरसिंहदेव ख) महाराजा भैरवसिंह ग) महाराजा शिवसिंह घ) देवसिंह

5) विद्यापति को किस महाराज ने अपने राज्याभिषेक के अवसर पर अभिनव जयदेव की उपाधि दी?

क) राजा पुरादित्य ख) महाराज पुरादित्य ग) महाराज पद्मसिंह घ) महाराज शिवसिंह

प्र 2) रिक्त स्थान भरोः–

क) विद्यापति श्रृंगारी कवि होने के साथ–साथ ––––––––– भी थे।

ख) विद्यापति का जन्म स्थान –––––––––– ग्राम है।

ग) 'बसपी' ग्राम को ––––––– भी कहते हैं।

घ) विद्यापति के प्रधान आश्रयदाता –––––––– हैं।

ङ) विद्यापति का ग्रन्थ कीर्तिलता ––––––––––– में लिखा गया है।

प्र3) सही / गलतः–

क) विद्यापति की रचना 'पदावली' मैथिली भाषा में लिखी गई है। ( )

ख) विद्यापति की रचना 'पदावली' एक श्रृंगाररिक गीतिकाव्य है। ( )

ग) विद्यापति की रचना कीर्तिपताका मैथिली भाषा में लिखी गई है। ( )

घ) विद्यापति की रचना गंगा गंगावाक्यावली में रामायण, महाभारत पुराण, स्मृति आदि के वचन प्रमाण रूप में उद्धृत किये गये हैं। ( )

7.6 सारांशः–

विद्यापति के काव्य में जन–जीवन की अभिव्यक्ति सुन्दर ढंग से हुई है। 'पदावली' के पदों से सामन्तीय जीवन की अपेक्षा लोक–जीवन ही अधिक मुखरित हुआ है। विद्यापति ने अपनी कविता को राजदरबार की नर्तकी न बनाकर जनमानस की अधीश्वरी के पद पर प्रतिष्ठित किया है। लोक–तत्वों के समावेश के कारण विद्यापति की पदावली में लोक–चेतना का स्पन्दन प्रचुर परिमाण में दृष्टिगत होता है।

7.7 कठिन शब्द

प्रिय विद्यार्थियो! अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर देने से पहले निम्नलिखित कठिन शब्दों के अर्थ शब्दकोश से ढूंढे और अपने शब्द भंडार को विकसित करें।

1. अन्तर्साक्ष्य––––––––––––––––––––
2. बहिर्साक्ष्य––––––––––––––––––––––

3. देहावसान—————————————————

4. दन्तकथाएँ—————————————————

5. उपालम्भ——————————————————

6. उपादेयता—————————————————

7. सम्बद्ध——————————————————

8. संगृहीत—————————————————

9. विकृत——————————————————

10. परिपार्श्व—————————————————

11. प्रकाण्ड—————————————————

12. समागम—————————————————

13. रूपासक्ति———————————————————

14. प्रतिष्ठित————————————————————

15. आत्मग्लानि———————————————————

7.8 अभ्यासार्थ प्रश्नः—

प्र01 विद्यापति के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए।

उ01 ——

प्र02 विद्यापति की रचनाओं का विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिए।

उ01 ——

प्र03 विद्यापति की लोकचेतना को स्पष्ट करें।

उ03 ——————————————————————————————————

____

____

____

____

____

7.9 उत्तर कुंजी

विकल्पीय प्रश्नः–

1. राम– सीता 2. जानकी मंगल 3. महाराज शिव सिंह
4. महाराजा भैरवसिंह 5. महाराज शिव सिंह

रिक्त स्थानः–

1. परमभक्त 2. 'बिसपी' 3. 'गढ़ बिसपी'
4. शिवसिंह 5. अपभ्रंश (अवहट्ठ)

सही गलतः–

1. सही 2 सही 3 गलत 4 सही

7.10 पठनीय पुस्तकें

1. विद्यापति – डॉ. आनन्द प्रकाश दीक्षित प्रकाशन – दिव्या प्रकाशन, ग्वालियर।
2. विद्यापति – मनमोहन सहगल प्रकाशन – 1966 – प्रकाशक।
3. विद्यापतिः युग साहित्य – अरविंद नारायण सिन्हा प्रकाशन – 1966 – प्रकाशक विनोद पुस्तक मंदिर।

विद्यापतिः भक्त अथवा श्रृंगारी कवि

रूपरेखा

8.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

8.2 प्रस्तावना

8.3 विद्यापतिः भक्त अथवा श्रृंगारी कवि

8.4 स्व–मूल्यांकन

- बहु विकल्पीय
- रिक्त स्थान
- सही या गलत

8.5 सारांश

8.6 कठिन शब्द

8.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.8 उत्तर कुंजी

8.9 पठनीय पुस्तकें

8.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य है कि आपकोः–

– विद्यापति भक्त कवि हैं अथवा श्रृंगारी कवि इसकी जानकारी देना।

– विद्यापति के पदों के विषय की जानकारी देना।

– विद्यापति पदावली से संबंधित जानकारी देना।

इस अध्याय के अध्ययनोपरान्त विद्यार्थी विद्यापति के पदों के विषय में, तथा विद्यापति भक्त कवि अथवा श्रृंगारी कवि हैं इसका ज्ञान प्राप्त करेंगे।

8.2 प्रस्तावना

मिथिला के सुप्रसिद्ध कवि मैथिल कोकिल विद्यापति आज के बिहार राज्य के दरभंगा जनपद के अन्तर्गत जरैल सरगना के विसपी गांव के निवासी थे। इनके पिता गणपति ठाकुर और पितामह जयदत्त संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। गणपति ठाकुर मिथिलेश महाराज गणेश्वर के सभा पंडित थे। आपको ज्ञान की गहनता पारिवारिक रूप से पैतृक सम्पति के रूप में प्राप्त हुई। विद्यापति के जन्म काल के विषय में भी विद्वान एक मत नहीं हैं। डॉ. उमेश मिश्र जहां इनका जन्म 241 लक्ष्मण सेन संवत् अर्थात् 1360 ई. मानते हैं वहीं डॉ. सुभद्र झा ने इनका समय 1352 ई. से 1448 ई. तक का माना है। श्री नगेन्द्र नाथ व श्री शिवनन्दन ठाकुर के अनुसार आपका जन्म 1351 ई. में हुआ। इसी प्रकार

विभिन्न विद्वानों ने इन्हें चौदहवीं सदी का कवि माना है। बाल्यकाल में आपने प्रसिद्ध मैथिल विद्वान श्री हरी मिश्र जी से विद्यारंभ किया। अपनी बौद्धिक प्रतिभा के कारण आपका सम्बन्ध राजदरबार से शीघ्र हो गया। डॉ. श्री उमेश मिश्र के अनुसार ''इन्होंने शास्त्र का व्यवसाय विशेष नहीं किया। शास्त्र के केवल उन्हीं विषयों से इनका सम्बन्ध विशेष रूप से रह गया जो कि राज–दरबार में नित्य काम में आते थे। आपने धार्मिक तथा धर्मशास्त्र के निबन्ध एवं नीति के ग्रन्थों का ही निर्माण किया। इनके अतिरिक्त इन्होंने अवहट्ठ में काव्य लिखे और राज दरबार में साधारण बुद्धि वाले पुरुष तथा स्त्रियों की रूचि के अनुसार अपनी मातृभाषा मैथिली में भी कविता बनाने लगे।'' इससे स्पष्ट होता है कि विद्यापति ने संस्कृत, अवहट्ठ और मैथिली में रचनाएं की। इन सभी रचनाओं के अध्ययन से उनके पूर्ण पांडित्य का परिचय मिलता है।

8.3 विद्यापतिः भक्त अथवा शृंगारी कवि

अवहट्ठ में रचित कीर्तिलता और कीर्तिपताका में विद्यापति ने क्रमशः महाराज कीर्ति सिंह और महाराज शिव सिंह का यशोगान किया है। विद्यापति ने संस्कृत भाषा में भू परिक्रमा, पुरुष परीक्षा, लिखनावली, शैवसर्वस्व सार, गंगा वाक्यावली, विभागसार, दान वाक्यावली, दुर्गा भक्ति तरंगिणी, गयापत्तलक तथा वर्षकृत्य ग्रन्थों की रचना की है। ये सभी ग्रन्थ उन्होंने अपने अलग–अलग समयों के आश्रयदाताओं – शिवसिंह, पुरादित्य, विश्वास देवी, नर सिंह, धीरमति की संरक्षता में लिखे हैं। इन रचनाओं में से पुरुष परीक्षा नवीन बुद्धि वाले बालकों को नीति का परिचय कराने वाला ग्रन्थ है। लिखनावली पत्र–व्यवहार की शिक्षा देने वाली रचना है। शैव सर्वस्व सार में शिव पूजन पर सविस्तार से चर्चा की गई है। गंगा वाक्यावली में गंगा की पूजा का वर्णन है जबकि विभाग सार में दायादों में धन का विभाजन किस प्रकार किया जाए इसका संकेत दिया गया है। दान वाक्यावली में दान के प्रकारों का उल्लेख है। दुर्गा भक्ति तरंगिणी में नवरात्र पूजन विधान का सविस्तार वर्णन कवि ने किया है। इनके अतिरिक्त विद्यापति काव्य मनीषियों ने गयापत्तलक, वर्षा कृत्य, द्वैतनिर्णय, तन्त्रार्णव व गंगाभक्त्युदय ग्रन्थों का संकेत देते हुए गोरक्ष–विजय नामक एक नाटक का उल्लेख भी आपकी रचनाओं के रूप में किया है। इन सभी रचनाओं के होते हुए भी विद्यापति की महत्ता व प्रसिद्धि का आधार उनकी मैथिली में रचित 'पदावली' है। डॉ. होसिला प्रसाद सिंह के अनुसार तो ''पदावली की प्रसिद्धि के कारण ही इन्हें 'मैथिल कोकिल' संज्ञा से अभिहित किया गया है।'' इस सन्दर्भ में डॉ. उमेश मिश्र जी का कहना है कि ''यह कोई एक ग्रन्थ के रूप में नहीं है। विद्यापति ने बाल्यावस्था से लेकर मरण पर्यान्त जितनी कविताओं की रचना की, उन सबों के संग्रह का यह नाम है।'' इस सन्दर्भ में डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा का कहना है ''विद्यापति की कीर्ति का प्रमुख आधार उनकी पदावली है, जिसमें उन्होंने अपने समव्यस्क मित्र और आश्रयदाता शिवसिंह और उनकी पटरानी लखिमादेवी को समर्पित सरस और संगीतात्मक गीतों की सृष्टि की है, जिनमें राधा–कृष्ण के प्रेम, मिलन, विरह रूपासक्ति, समर्पण, मान आदि प्रेम प्रसंगों का प्रभावशाली निरूपण हुआ है।''

विद्यापति–पदावली एक मुक्तक रचना है। इसके पदों का संकलन एक लम्बे समय तक मौखिक लोक मानस में प्रचलित रहा। जब उन्हें लिखित रूप में संकलित किया गया तो संकलनकर्ताओं की निजी रूचि भी प्रभावी रही। प्राप्त रूपों में नेपाल, मिथिला तथा बंगाल में संकलित विभिन्न पांडुलिपियों के आधार पर ही निर्भर रहना पड़ता है। नेपाल से प्राप्त पांडुलिपि में 387 पद संकलित हैं। मिथिला की राजतरंगिणी में लोचन कवि ने 51 पद संकलित किए हैं। इसी क्षेत्र में उपलब्ध राम भद्रपुर में 96 पद मिलते हैं प्राप्त जानकारी के अनुसार तरोणी की तालपत्र पोथी में 350 पदों की सूचना मिलती है। बंगाल में विद्यापति के पद बहुत लोकप्रिय रहे हैं। वहां 1705 ई. में क्षणदा गीत चिंतामणि में विद्यापति के पद संकलित हैं। यहीं पर 'पद कल्पतरू' संग्रह में भी विद्यापति के 161 पद संकलित मिलते हैं। इन्हीं विविध संकलनों में संगृहित विद्यापति के पदों को एक साथ संकलित करने का प्रयास सर्वप्रथम शारदा चरण मित्र ने

किया। जार्ज ग्रिर्यसन ने सन् 1881 ई. में मौखिक परम्परा के गायकों से सुनकर 82 पद एकत्र किए। इस दिशा में सर्व श्री विद्या भूषण, नगेन्द्रनाथ गुप्त, खगेन्द्र नाथ मित्र, जयकान्त मिश्र, रामवृक्ष बेनी पुरी, सुभद्र झा, चन्दा झा, तथा शुभकार कपूर प्रभृति विद्वानों ने बहुत प्रयास कर विद्यापति के पदों को सुरक्षित भावक–समाज तक पहुंचाने का प्रयास किया है। डॉ. श्री उमेश मिश्र की मान्यता है ''पदों की शुद्धता के लिए हमें मिथिला की स्त्रियों ही के ऊपर निर्भर रहना पड़ता है, क्योंकि विद्यापति के पदों की यथार्थ रक्षा करने वाली वे ही हैं। वे ही परम्परा से इन पदों को श्रुति के समान सुनती आई हैं और फिर कनिष्ठ वर्गों को सुनाती जाती हैं।''

विषय की दृष्टि से विद्यापति के पद कई श्रेणियों में विभाजित किए जा सकते हैं। अधिकांश पद राधा और कृष्ण के प्रेम के विभिन्न प्रसंगों का उद्घाटन करते हैं उन्हें शृंगारिक कोटि मे रखा जाता है। कुछ पद शुद्ध प्रकृति सम्बन्धी हैं, इनमें प्रकृति ही आलम्बन रूप में वर्ण्य है। कुछ पद भक्ति रसात्मक हैं, जिनमें विभिन्न देवताओं की विशेष कर शिव और उमा की स्तुति की गई है। इनके सम्बन्ध में श्री शिव प्रसाद सिंह जी का कहना है कि उमा शिव स्तुति परक पदों में ''शिव में ईश्वरत्व बुद्धि और तज्जन्य श्रद्धा का समावेश है।'' भक्ति परक पदों में शंकर, दुर्गा, गौरी, गंगा तथा कृष्ण के स्तुति परक गीतों का समावेश होता है। विद्यापति पदावली में संकलित पदों में कुछ कूट, पहेलियों के साथ–साथ महाराज शिव सिंह के राज्यारोहण तथा युद्ध वर्णन से सम्बन्धित पद भी संकलित हैं।

विद्यापति एक भावुक काव्य रसिक कवि रहे इस रूप में परिस्थिति का परिवेश विशेष के अन्तर्गत भावोर्मियों की विविधता उनके पदों में मिलती है। इस दृष्टि से उनकी पदावली में संकलित पदों का भाव वैविध्य एक प्रश्न उठाता है कि उन्हें किस भाव–प्रधान का कवि माना जाए। विद्यापति के सम्पूर्ण रूप को उनकी परिवेश गत मान्यताओं को न देखते हुए विद्वानों में एक बहस शुरू हुई कि विद्यापति को भक्त कहा जाए या उनके विविध पक्षीय शृंगार चित्रण के कारण शृंगारी? उस पर यह प्रश्न उठाते समय यह भी देखना होगा कि उनकी इस मुक्तावली को पिरोते समय संकलनकार ने किस प्रकार के पदों का संकलन 'विद्यापति पदावली' के नाम से किया है। विभिन्न संस्करणों में संग्रहित पदों को यदि सामान्य रूप से देखा जाए तो उनके स्तुतिपरक भावों को छोड़कर अधिकांश लगभग 90 प्रतिशत पद शृंगारी हैं। इन शृंगार रस प्रधान पदों में भी कुछ पदों का सम्बन्ध राधा–कृष्ण के मिलन, प्रेम, विरह आदि से सम्बन्धित है और कुछ पद सामान्य नायक–नायिका के शृंगार वर्णन से सम्बन्धित हैं। राधा–कृष्ण के आधार पर रचित पदों में विद्वानों ने रहस्यवाद की प्रधानता को देखते हुए उन्हें रहस्यवादी कवि के रूप में परखा, कुछ उन्हें कृष्ण भक्त मानते हैं जबकि कुछ विद्वान उन्हें पूर्णतया शृंगारी कवि सिद्ध करने पर तुले हुए हैं।

डॉ. ग्रियर्सन ने विद्यापति को रहस्यवादी कवि स्वीकार करते हुए राधा को जीवात्मा, कृष्ण को परमात्मा और दूती को गुरु के रूप में मान्यता दी है। उनके मतानुसार जीवात्मा (राधा) परमात्मा (कृष्ण) से मिलने के लिए प्रयत्नशील होती है। परन्तु जीवात्मा अपने सांसारिक प्रपंचों और माया के मान–पाश में आबद्ध होने के कारण आन्तरिक प्रेरणा को जागृत नहीं कर पाती। जब उसके प्रयत्नों में मान और छलना के कारण बाधा आ जाती है तब गुरु (दूती) जीवात्मा और परमात्मा के प्रेम–मिलन में सहायक के रूप में मार्ग दिखाता है।

डॉ. ग्रियर्सन के मत का समर्थन श्री नगेन्द्र नाथ गुप्त, श्री जनार्दन मिश्र एवं श्री कुमार स्वामी ने किया है। श्री नगेन्द्र नाथ गुप्त ने निम्न उदाहरण –

रयनि काजर बम, भीम भुजंगम कुलिस पड़ए दुरवार।
गरज–तरज मन, रोस बरिस घन ससंअ पड़ अभिसार।
सजनी, बचन छड़इत मोहिलाज।
होएत, से होओ, बरू सब हम अंगिकरु साहस मन देल आज।

– में प्रेम मार्ग की कठिनाइयों का वर्णन किया है। यहां लौकिक दृष्टि से तो अभिसारिका नायिका के मार्ग में आने वाली विपत्तियों का वर्णन कर उसे पथ से विचलित करने का प्रयास किया गया है पर –

ठामहि रहिअ घुमि परस चिह्निअ भूमि दिग मग उपजु सन्देह।
हरि हरि सिब सिब ताबे जा इह जिब जाबे न उपजु सिनेह।
कहकर प्रेम मार्ग की दृढ़ता का संकेत भी दिया गया है।

डॉ. जनार्दन मिश्र की मान्यता है कि विद्यापति के समय में रहस्यवाद का प्रभाव जनमानस पर बहुत गहरा था इस कारण उसके प्रभाव से बचकर निकलना और किसी अधिक निष्कंटक मार्ग का अनुसरण करना उन्हें शायद अभीष्ट नहीं था, और "इसलिए स्त्री और पुरुष के रूप में जीवात्मा और परमात्मा की उपासना की जो धारा उमड़ रही थी उसमें इन्होंने अपने को बहा दिया।" अपने मत की पुष्टि में उन्होंने कृष्ण मान प्रसंग के निम्न पद को उद्धृत किया है, जिससे आत्मा सांसारिक पदार्थों का त्याग करके अपने प्रियतम (परमात्मा) को खोजने का निश्चय करती हैः

एत दिन छलि नब रीति रे। जल–मिन जेहनि परीति रे।
एकहि बचने बिच भेल रे। हँसि पहु उतरो न देल रे।
एकहि पलंग पर कान रे। मोर लेख दूर देस भान रे।
जाहि वन के ओ नहि डोल रे। ताहि बिन पिया हँसि बोल रे।
धरब जोगिनिआ क भेस रे। करब मएँ पहुक उदेस रे।
कवि विद्यापति भान रे। सुपुरुष न कर निदान रे।

इस पद पर विचार करते हुए मिश्र जी ने विद्यापति को निर्गुण भक्ति धारा और सूफी मत से प्रभावित माना है।

श्री कुमार स्वामी ने विद्यापति के विषय में कहा है ''विद्यापति का काव्य गुलाब है, गुलाब, चारों तरफ से केवल गुलाब। यह आनंद निकुंज है। यहां हमें उस स्वर्ग का दर्शन होता है – वृन्दावन की कृष्ण–लीला शाश्वत है। वृन्दावन मनुष्य का ह्रदय देश है। यमुना का किनारा इस संसार का प्रतीक है जो राधा और कृष्ण अर्थात् जीव और ईश्वर की लीला भूमि है। वंशी की धुन अदृश्य सत्ता की नाद है जो जीव को परमात्मा की ओर अग्रसर होने का आह्वान है।''

विद्यापति की कविता को आध्यात्मिक रूप से देखने वाले कुछ विद्वान इन्हें रहस्यवादी न मानकर सगुणोपासक कृष्ण भक्त मानते हैं। इस वर्ग में बाबू श्याम सुंदर दास तथा प्रोफेसर बिपिन बिहारी मजूमदार का नाम आता है। इस वर्ग के विद्वानों का मत है कि पदावली में चित्रित राधा–कृष्ण के विभिन्न श्रृंगारी पदों में माधुर्य भाव की भक्ति प्रस्फुटित हुई है। कृष्ण भक्ति परम्परा में विष्णु स्वामी और निम्बार्काचार्य के सम्प्रदायों में राधा–कृष्ण की विभिन्न लीलाओं को भक्ति के माध्यम के रूप में माना जाता है। श्रीमद्भागवत तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण में भक्ति का माधुर्य भाव ही प्रमुख था। इसी भक्तिभावना का प्रभाव विद्यापति पर बाबू श्याम सुंदर दास ने स्वीकार किया है। डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा भी इस सन्दर्भ में कहते हैं ''पदावली पर भागवत पुराण में वर्णित प्रेम लीलाओं का प्रभाव परिलक्षित होता है। उनकी भक्ति प्रेमा–भक्ति है। जिसमें लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक अथवा आध्यात्मिक प्रेम की अभिव्यंजना होती है।'' विद्यापति पदावली के पदों का चैतन्य महाप्रभु का भक्ति–विभोर होकर गान भी इसी कारण है। 'ब्रजबुलि' के कृष्ण भक्ति काव्य में विद्यापति पदावली का प्रभाव परिलक्षित होता है। विद्यापति के पदों का प्रसार बंग, कामरूप तथा उत्कल तक के क्षेत्र में भक्ति–पदों के रूप में ही जन मानस में फैला हुआ है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी भी बंगाल, आसाम तथा उड़ीसा के विभिन्न क्षेत्रों के वैष्णव भक्तों में भक्ति का प्रचार पदावली के पदों द्वारा मानते हैं– उनका कहना है कि ''यह उन प्रदेशों के भक्ति–साहित्य में नयी प्रेरणा और नई प्राणधारा संचारित करने में समर्थ हुई। इसलिए पूर्वी प्रदेशों में सर्वत्र यह पुस्तक धर्म–ग्रन्थ की महिमा पा सकी है।''

तीसरे वर्ग के विद्वान विद्यापति को श्रृंगारी कवि के रूप में ही मान्यता देते हैं। इनमें महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री, विनय कुमार सरकार, सुभद्र झा, आचार्य राम चन्द्र शुक्ल, डॉ. राम कुमार वर्मा, डॉ. बाबू राम सक्सेना, डॉ. गोबिन्दराय शर्मा आदि के नाम आते हैं। शास्त्री जी की मान्यता में विद्यापति की संस्कृत तथा अवहट्ठ भाषा की रचनाओं में तो शिव, गंगा, दुर्गा का उल्लेख आया है पर मैथिली में राधा–कृष्ण ही पाये जाते हैं। उनका कहना है कि ''विद्यापति जब पंडित होकर लिखते हैं तो राधा कृष्ण का नाम नहीं लेते, किन्तु जब श्रृंगार रस की कविता करते हैं तो राधा कृष्ण ही अधिकतर पाये जाते हैं।'' इसका कारण शास्त्री जी के अनुसार यही है कि राधा कृष्ण को विद्यापति ने सामान्य नायक–नायिका के रूप में ग्रहण किया है। साथ ही पदावली के पदों की रचना आश्रयदाताओं की श्रृंगारी प्रकृति के अनुरूप की है। सुभद्र झा भी यह मानते हैं कि ''विद्यापति के प्रेम गीतों में प्रतीकात्मक रहस्य ढूंढने की कोशिश सर्वथा अनावश्यक है।''

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तो स्पष्ट रूप में कहा है कि ''आध्यात्मिक रंग के चश्में आजकल बहुत सस्ते हो गये हैं। उन्हें चढ़ा कर कुछ लोगों ने गीत गोबिन्द के पदों को आध्यात्मिक संकेत बताया है, वैसे ही विद्यापति के इन पदों को भी। बाल लीलाओं का कीर्तन कृष्ण भक्ति का एक प्रधान अंग है। जिस रूप में लीलाएं वर्णित हैं उसी रूप में उनका ग्रहण हुआ है और उसी रूप में वे गोलोक में नित्य मानी जाती हैं। जहां वृन्दावन, यमुना, निकुंज, कदम्ब, सखा, गोपियां इत्यादि सब नित्य रूप में है, इन लीलाओं का दूसरा अर्थ निकालने की आवश्यकता नहीं।''

डॉ. राम कुमार वर्मा ने भी विद्यापति को श्रृंगारी कवि के रूप में ही मान्यता दी है। उनके अनुसार ''कवि अपनी पदावली में जयदेव की श्रृंगारिक भावना से अधिक प्रभावित है। अपने मत के समर्थन में आपने श्री कुमार स्वामी के 'रहस्यवादी' मत का विरोध करते हुए श्री विनय कुमार सरकार के अभिमत को अधिमानता दी है 'विनय कुमार सरकार ने कुमार स्वामी के इस मत के विरुद्ध ही अपनी सम्मत्ति प्रकट की हैं। विद्यापति के पदों को देखते हुए विनय कुमार सरकार का मत ही समीचीन ज्ञात होता है, क्योंकि विद्यापति की कविता में भौतिक प्रेम की छाया स्पष्ट है।"

इसी परम्परा में श्री शिवनन्दन ठाकुर ने भी विद्यापति को श्रृंगारी कवि के रूप में ही मान्यता दी है। विनय कुमार सरकार ने –''ऐन्द्रियभावना या मानवीय सम्बन्धों के बीच इतना सुन्दर सम्मिश्रण और इतने ऊँचे स्वर का चित्रण भारतीय साहित्य में विद्यापति के अतिरिक्त और किसी ने प्रस्तुत नहीं किया है।'' – कहकर उन्हें पूर्ण श्रृंगारी कवि घोषित किया। डॉ. बाबू राम सक्सेना का अभिमत भी – ''विद्यापति के पदों के अध्ययन से पता चलता है कि वह बड़े श्रृंगारी कवि थे। इन पदों को राधा कृष्ण की भक्ति पर आरोपित करना पद–पदार्थ के प्रति अन्याय है।'' – इसी बात का साक्षी है कि विद्यापति एक श्रृंगारी कवि थे।

उपर्युक्त विवेचन से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि विद्यापति विद्वानों की चिन्तन मंडली के बीच भक्ति और श्रृंगारी इन दोनों भाव रसों के मध्य में स्थित हैं। उनके प्रति एक पक्षीय रूप में स्थापना के लिए उनके परिवेश व दृष्टिकोण को जानना आवश्यक है। यह तो निश्चित है कि विद्यापति एक दरबारी संस्कृति के कवि रहे। इसमें किसी को सन्देह नहीं हो सकता कि उन्होंने विभिन्न राज्याश्रयों में कविता की। डॉ. शिव प्रसाद जी का कहना है– ''उन्होंने अपने राजकवि होने की मजबूरी को संस्कृत प्रशस्ति काव्य लिखकर निभायाश् तत्कालीन परम्परा के अनुसार राजा के युद्ध और प्रणय का विवरण पिंगल या अवहट्ठ में उपस्थित किया, किन्तु हृदय का तकाजा जनता के प्रति उत्तरदायित्व 'देसिलवयना' के माध्यम से ही व्यक्त हुआ। विद्यापति के गीतों से पाठक उनकी जीवन्त प्रवाहमयी भाषा से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। लोकगीतों की सुमधुर और सहज पद्धति पर लिखे गए ये गीत तत्कालीन जन–मानस के अकृत्रिम दर्पण हैं। इस प्रकार की चेतना को सामाजिक यथार्थ के प्रति श्रद्धा की भावना के बिना कौन कवि ग्रहण कर सकता है ?

विद्यापति पदावली के पद मिथिला क्षेत्र में मन्दिरों में नहीं अपितु लोक–जीवन में विवाह संस्कार की विभिन्न रीतियों के अवसर पर स्त्रियों द्वारा गाए जाते हैं। मिथिला क्षेत्र की स्त्रियां नव–वधू को शिक्षा के रूप में इन पदों द्वारा सम्बोधित करती हैं। साथ ही कवि की मूल प्रेरणा जयदेव कृत गीत गोविन्द है। जयदेव के अतिरिक्त विद्यापति हाल की गाथा सप्तशती व गोवर्धनाचार्य की रचनाओं से भी प्रभावित रहे। पदावली में कई ऐसे पद हैं जो आर्या सप्तशती, अमरूकशतक व शृंगार तिलक से प्रभावित हैं। गाथा सप्तशती में तो कृष्ण और राधा का वर्णन सामान्य नायक और नायिका के रूप में ही हुआ हैं। इनसे प्रभावित विद्यापति निश्चित रूप से राधा कृष्ण को भक्त की दृष्टि से नहीं वरन् विशुद्ध शृंगारी दृष्टि से ही देखते होंगे।

पदावली के अतिरिक्त विद्यापति की अन्य रचनाओं में भी उनके शृंगार सम्बन्धी दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। 'पुरुष परीक्षा' में उन्होंने धर्म–शृंगार का पोषण किया है:

''भूयादनश्वरं प्रेम यूनोर्जन्मनि जन्मनि।
धर्म शृंगार संपृक्त सीताराघवयोरिव।।''

धर्म मंडित शृंगार की प्रशंसा वे कीर्तिपताका में भी करते हैं:

विद्या बसओ विवेक सयँ खेमा सत्तुएओ संग।
धम्म सहित सिंगार रस कव्वकला बहु रंग।।

विद्यापति ने शृंगार को रीतिकाल के आचार्य कवियों से पूर्वतः ही प्राचीन परम्परा का अनुपालन करते हुए सर्व रस सार के रूप में मान्यता दे दी थी। कीर्तिपताका में इसका संकेत मिलता है:

कविमहं नव जयदेव कवि रस महं रस सिंगार।
त्रिपुर सिंह सुत राजमहं तीनहु त्रिभुवन सार।।

उनके अनुसार इस रस का माधुर्य सर्वत्र विद्यमान है। इस कारण उन्होंने अपनी पदावली में लोक प्रकृति के अनुरूप धर्म और शृंगार को अभिन्न मानते हुए पद रचना की। हरि स्मरण में मन की सरसता को तो जयदेव ने गीत गोविन्द में भी स्वीकार किया है:

यदि हरि स्मरणे सरसं मनो यदि विलास कलासु कुतूहलम्।
मधुर–कोमल कान्त पदावली श्रृनु तदा जयदेव सरस्वतीम्।।

इतिहास साक्षी है कि कृष्ण पूजा से पूर्व ही परम्परा से काम पूजा का विधान भी रहा है। इस दृष्टि से कृष्णोपासना में साधक–शक्ति के रूप में काम–साधना को मान्यता दी गई है। इस दृष्टि से तो विद्यापति माधुर्यभाव भक्ति के साधक के रूप में दृष्टिगत होते हैं पर पदावली के अतिरिक्त अन्य रचनाओं में भी इस बात के संकेत मिलते हैं जिनसे विद्यापति के साहित्य शास्त्रज्ञ रूप का परिचय मिलता है। 'पुरुष परीक्षा' में आपके काव्य शास्त्रीय ज्ञान का परिचय मिलता है। कीर्तिपताका में भी उनकी शृंगारी मनोवृत्ति का आभास मिलता है। इन्हीं कारणों से ऐसा प्रतीत होता है कि पदावली में विद्यापति ने राधा कृष्ण की कथा को भक्त नहीं वरन् रसिक की दृष्टि से प्रस्तुत किया है। संयोग शृंगार वर्णन में विद्यापति ने कई स्थलों पर तो औचित्य की सीमा का उल्लंघन भी कर दिया है। ऐसे पदों में विद्यापति शृंगारी कवि के रूप में उभरते हैं। इसके साथ ही वन्दना तथा स्तुति परक पदों में विद्यापति की भक्ति भावना स्पष्टतया व्यक्त होती है। देवी वन्दना में विद्यापति एक विनम्र सेवक के रूप में देवी के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हैं:

जय–जय–भैरवि, असुर–भयाउनि, पशुपति–भामिनी माया।
सहज सुमित वर दिअओ गोसाउनि, अनुगति गति तुझ पाया।।
x x x x x x
घन घन घनए घुघुर–कन बाजए, हन–हन कर तुअ काता।
विद्यापति कवि तुअ पद–सेवक, पुत्र बिसरू जनि माता।।

इसी प्रकार प्रार्थना एवं नचारी के प्रसंग में जहां कवि वन्दना करता है वहां उनके भक्त रूप के दर्शन होते हैं पर पदावली के वर्ण्य–विषय की दृष्टि से उनके शृंगार रस की प्रबलता स्पष्टतः परिलक्षित होती है। विद्यापति पदावली में राधा कृष्ण के साथ ही शिव–गौरी के सम्बन्ध में भी भक्ति परक पद मिलते हैं। राधा–कृष्ण वर्णन में जहां शृंगार पक्ष प्रबल है वहीं शिव–गौरी सम्बन्ध में भक्ति भाव गहरा है। यह शिव भक्ति उनके मिथिला के परिवेश से प्राप्त आस्था है। उनके परिवार में भी शिव–भक्ति का प्रभाव अधिक गहरा था। जीवन के अन्तिम पड़ाव में पहुंचकर जब उन्होंने अपने अतीत में झांका तो व्यथित हो कह उठेः

जाबत जनम नहिं तुअ पद सेविनु, जुबती मतिमयँ मेलि।
अमृत तजि हलाहल किए पीअल, संपद अपदहि मेलि।

8.4 स्व–मूल्यांकनः–

प्रिय विद्यार्थियों ! इस अध्याय में आपने विद्यापति भक्त कवि हैं अथवा शृंगारी कवि का विस्तृत अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिह्न द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

प्र1. बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिएः–

1) विद्यापति की संस्कृत भाषा में कौन–सी रचना नहीं है?

   क) भू परिक्रमा ख) पुरुष परीक्षा ग) गंगा वाक्यावली घ) कीर्तिलता

2) आध्यात्मिक रंग के चश्में आजकल बहुत सस्ते हो गये हैं। प्रस्तुत पंक्ति आचार्य शुक्ल ने किस कवि के लिए कही है?

   क) विद्यापति ख) चन्द्रबरदाई ग) अमीर खुसरो घ) कबीरदास

3) विद्यापति की दानवावचावली रचना में किसका उल्लेख है?

   क) नवरात्र पूजन विधान का सविस्तार वर्णन ख) गंगा की पूजा का वर्णन

   ग) दान के प्रकारों का उल्लेख घ) शिव पूजन का वर्णन

4) ''विद्यापति का काव्य गुलाब है गुलाब चारों तरफ से केवल गुलाब'' यह पंक्ति विद्यापति के विषय में किस कवि ने कही है?

   क) रामचन्द्र शुक्ल ख) हजारीप्रसाद द्विवेदी ग) रामकुमार वर्मा घ) श्री कुमार स्वामी

5) विद्यापति की 'पुरुष परीक्षा' रचना में किसका परिचय मिलता है?

क) पत्र–व्यवहार की शिक्षा का   ख) काव्य शास्त्रीय ज्ञान का

ग) दायारों में धन के विभाजन का   घ) शिव पूजन का

प्र2.रिक्त स्थान भरोः–

क) विद्यापति पदावली एक –––––– रचना है।

ख) विद्यापति के पिता का नाम ––––––––– है।

ग) विद्यापति की रचना कीर्तिलता और कीर्तिपताका –––––––– भाषा में रचित है।

घ) विद्यापति के पितामह ––––––– है।

ङ) विद्यापति के संस्कृत, अवहट्ठ और –––––––––– में रचनाएं की।

प्र3. सही / गलतः–

क) विद्यापति बिहार राज्य के दरभंगा जनपद के अन्तर्गत जटैल सरगना के विसगी गांव के निवासी थे। ( )

ख) विद्यापति के पितामह जयदत्त संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। ( )

ग) डॉ . रामकुमार वर्मा ने विद्यापति को शृंगारी कवि के रूप में मानता नहीं दी है। ( )

8.5 सारांशः–

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि लोकानुरंजन पक्ष को प्रधान रखते हुए उन्होंने जो पद–रचना की उससे उन्हें युवावस्था में तुष्टि तो मिली पर रसिक जनों को मुग्ध करते–करते भक्त हृदय को तृप्त न कर सके। भक्ति में माधुर्य की मधुरता कुछ अधिक ही घुल गई इस कारण उन्होंने जिस प्रकार राधा–कृष्ण की प्रेम क्रीड़ाओं का वर्णन किया उससे ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी पदावली में भक्त हृदय के स्पन्दन के स्थान पर शृंगारी मादकता का स्वर अधिक मुखरित हुआ है। अन्त में डॉ. शुभकार कपूर के शब्दों में कहा जा सकता है कि ''विद्यापति मूलतः शृंगारी कवि थे'' पर उनका शृंगार वर्णन कान्ता भाव से परिपूर्ण माधुर्य भावना' के अन्तर्गत लोक श्रुति के कारण स्थान पाने का अधिकारी है।

8.6 कठिन शब्द

प्रिय विद्यार्थियो! अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर देने से पहले निम्नलिखित कठिन शब्दों के अर्थ शब्दकोश से ढूंढे और अपने शब्द भंडार को विकसित करें

1. अभिहित––––––––––––––––
2. वैविध्य––––––––––––––––
3. निष्कंटक––––––––––––––––
4. जीवात्मा––––––––––––––––
5. स्पन्दन––––––––––––––––

6. अकृत्रिम-------------------

7. निकुंज-----------------

8. परिलक्षित---------------

9. अधिमानता----------------

10. मादकता-----------------

11. लोकानुरंजन ------------

12. परिलक्षित-----------------

8.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र01 विद्यापति भक्त कवि हैं अथवा शृंगारी कवि स्पष्ट करें।

उ01 ----------------------------------

प्र02 विद्यापति पदावली में संकलित पदों पर प्रकाश डालें।

उ02 ----------------------------------

8.8 उत्तर कुंजी

बहुविकल्पीय प्रश्नों

1. कीर्तिलता 2. विद्यापति 3. दान के प्रकारों का उल्लेख 4. श्री कुमार स्वामी 5. काव्य शास्त्रीय ज्ञान का

रिक्त स्थान

1. मुक्तक 2. गणपति ठाकुर 3. अवहट्ट 4. जयदत्त 5. मैथिली

सही / गलत

1.सही 2. सही 3.गलत

8.9 पठनीय पुस्तकें

1. विद्यापति – डॉ. आनन्द प्रकाश दीक्षित – प्रकाशक – दिव्या प्रकाशन, ग्वालियर।
2. विद्यापति – मनमोहन सहगल
3. विद्यापति – युग साहित्य – अरविंद नारायण सिन्हा 1966 – प्रकाशन – तिनदि पुस्तक मन्दिर।

पदावली की काव्य भाषा

रूपरेखा

9.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
9.2 प्रस्तावना
9.3 विद्यापति की भाषा
9.4 विद्यापति की भाषा की मुख्य विशेषताएं
- * स्व–मूल्यांकन
- * बहु विकल्पीय प्रश्न
- * रिक्त स्थान
- * सही और गलत

9.5 सारांश
9.6 कठिन शब्द
9.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
9.8 उत्तर कुंजी
9.9 पठनीय पुस्तकें

9.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य है–

– विद्यापति की भाषा को जानना।

– विद्यापति पदावली की काव्य भाषा की जानकारी प्राप्त करना।

– विद्यापति की भाषा की मुख्य विशेषताओं से अवगत होना।

इस अध्याय के अध्ययनोपरान्त विद्यार्थी विद्यापति की काव्य भाषा तथा विद्यापति की भाषा की मुख्य विशेषताओं से अवगत होंगे।

9.2 प्रस्तावना

विद्यापति भारतीय साहित्य की भक्ति परंपरा के प्रमुख स्तंभों में से एक और मैथिली के सर्वोपरि कवि के रूप में जाने जाते हैं। विद्यापति संक्रमण काल के कवि हैं इसलिए उसकी छाया इनके काव्य में भी परिलक्षित होती है। उन्होंने साहित्यिक भाषा को जनभाषा के करीब लाने का सफल प्रयास किया।

9.3 विद्यापति की भाषा

विद्यापति ने अपनी रचनाओं में संस्कृत, अपभ्रंश–अवहट्ट और देशी भाषाओं का प्रयोग किया है। उनका मानना था कि संस्कृत अब विद्वानों की ही भाषा है–'सक्कय वाणी बहुअन भावइ'। अतः उसमें लिखे साहित्य का सामान्य जन विशेष लाभ नहीं उठा सकते। संस्कृत के वह धुरन्धर विद्वान थे। उनकी अधिकांश रचनाएं विभिन्न आश्रयदाताओं के अनुरोध पर संस्कृत में हैं। परन्तु उनकी दृष्टि में संस्कृत भाषा विद्वानों को अच्छी लगती है और प्राकृत भाषा में रस का मर्म नहीं होता। देसी वचन सबको मीठे लगते हैं, अतः वैसा ही अवहट्ट में लिखता हूँ–

"सक्कय वाणी बहुअन भावइ। पाऊँअ रस को मम्म न पावइ।
देसिल बअना सब जन मिट्ठा। तँ तैसन जम्यओ अवहट्ठा"।

इसमें स्पष्ट है कि विद्यापति ने अपभ्रंश के परिवर्तित रूप अवहट्ट में काव्य रचना सब जन के मनोरंजन के लिए की। उनका उद्देश्य ऐसी भाषा में लिखना था, जिसको जनता समझ सके और साथ ही जो सरस हो। इसीलिए उन्होंने अवहट्ट और देसी (मैथिली) को अपनाया।

विद्यापति की 'पदावली' की भाषा की अजीब दुर्गति हुई है। बंगाल वाले इन्हें बंगला का कवि समझते हैं, हिन्दी भाषा–भाषी अपना कवि मानते हैं और जब से डॉ. ग्रियर्सन ने मैथिलों के हृदय में यह भावना उत्पन्न कर दी कि मैथिली हिन्दी से स्वतन्त्र है तब से स्वभावतया वे दोनों का विरोध करने लगे हैं, अर्थात् विद्यापति को मैथिली भाषा का कवि मानने लगे हैं। एक समय अवश्य ऐसा रहा है कि जब यह निर्णय कर पाना कि विद्यापति बंगला के कवि हैं या मैथिली के, कठिन थाश् परन्तु अब विद्वानों के अनुसंधानों ने इस प्रश्न को सुलझा दिया है और सिद्ध कर दिया है कि वे बंगाल के कवि नहीं हैं। मैथिली स्वयं बंगला, गुजराती आदि भाषाओं की तरह स्वतन्त्र अस्तित्व न रखकर हिन्दी का ही एक अंश है। अतः विद्यापति हिन्दी के कवियों में आसन ग्रहण करने के अधिकारी हैं। वैसे मैथिली में स्वतन्त्र रूप से भी कुछ साहित्य रचना हुई है और स्वतन्त्र भारत में जनपदीय भाषा के आन्दोलन के फलस्वरूप आज मैथिली को भारत सरकार की साहित्य अकादमी द्वारा मान्यता प्राप्त हो गई है। परन्तु विद्वानों का बहुत बड़ा वर्ग मैथिली को हिन्दी की क्षेत्रीय उपभाषाओं में ही स्थान देता है और विद्यापति को हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत सम्मिलित करता है। इसी आधार पर विभिन्न भारतीय विश्वविद्यालयों के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में विद्यापति को स्थान मिला हुआ है।

विद्यापति की 'पदावली' में संस्कृत के तत्सम (नन्दन, तरू, मुरारि, परिमल, पदतल, उपवन आदि), तद्भव (पिया प्रिया), मजूर (मयूर) मसान (श्मशान), हिरदय (हृदय) आदि) अपभ्रंश (दुज्जन, भप्पिय, भम्मए, अत्पन आदि), विदेशी (चकमक (तुर्की), बाजार (फारसी), जवाब (अरबी आदि) और देशज (मिनति, महतारी, डाहुक आदि) शब्दों का काफी प्रयोग हुआ है। ब्रज और अवधी के समान ही 'पदावली' की मैथिली भी साहित्यिक भाषा रही है। इसका मेल जितना अवधी और ब्रजभाषा से है, उतना बंगला से नहीं।

विद्यापति की 'पदावली' की भाषा समय की गति के साथ परिवर्तित होती रही है। पांच सौ वर्षों की लम्बी अवधि में उसमें अनेक कारणों से अनेक परिवर्तन आये हैं। 'पदावली' लोक–प्रियता के कारण जन–जिहा पर चढ़ी रही और उसका लिखित रूप से भिन्न उच्चारित रूप सदा ही बदलता रहा। भिन्न–उच्चारण करने वालों ने उसे भिन्न लिखित रूप दे दिये। 'पदावली' की भाषा के रूपों की भिन्नता का दूसरा कारण है भिन्न भाषा भाषियों द्वारा उस पर अपना–अपना रंग चढ़ाने का प्रयत्न। श्री रामवृक्ष बेनीपुरी ने ठीक ही कहा है–

'विद्यापति की भाषा की दुर्दशा भी हुई है। बंगालियों ने उसे ठेठ बंगला रूप दे दिया है, मोटंग–वालों ने मोटंग का रंग चढ़ाया है। बाबू ब्रजनन्दन सहाय ने उस पर भोजपुरी की कलई की है और आजकल के मैथिल उस पर आधुनिक मैथिली का रोगन चढ़ा रहे हैं। भगवान् विद्यापति की कोमल–कांत–पदावली की रक्षा करे।'

9.4 विद्यापति की भाषा की मुख्य विशेषताएँ

1. सफल भावाभिव्यक्ति

भाषा का कर्म भावों की अभिव्यक्ति करना है। भाषा के लिए भावाभिव्यक्ति साध्य है और अलंकारादि साधन। जहां साधन साध्य हो जाता है वहां कलापक्ष प्रधान हो जाता है। कलापक्ष में मस्तिष्क को चमत्कृत करने की क्षमता भले ही हो, हृदय को आंदोलित करने का अभाव ही होता है। विद्यापति की भाषा इन दोनों का अप्रतिम समन्वय है। यही समन्विति भाषा की पूर्णता है। अतः विद्यापति की भाषा पूर्ण है। उसमें भावों को प्रकट करने की यथेष्ट शक्ति है। विरहिणी राधा के इन शब्दों को देखिएः–

"काक भाख निज भाखह रे
पहु आओत मोरा।
क्षीर खाँड़ भोजन देब रे
भरि कनक कटोरा"।

उपर्युक्त शब्दों में राधा के माध्यम से विरहिणी नारी–जाति का हृदय बोल उठा है जिसमें प्रिय से मिलन की उत्कट इच्छा तो है ही, स्वभाव की सरलता भी सन्निहित है।

2. चित्रमयता

सफल कवि शब्दों के संबल पर भावों का चित्र प्रस्तुत कर देते हैं अर्थात् कवि की कल्पना साकार होकर पाठकों अथवा श्रोताओं की आंखों में झूलने लगती है। विद्यापति की भाषा इस गुण से समन्वित है। यथा–

"चिकुर गरए जलधारा।
जनि मुख–ससि डर रोअए अंधारा
कुच–जुग चारू चकेवा।
निअकुल मिलिअ आनि कोन देवा।
ते संका भुज पासे–
बांधि धएल अड़ि पाएत अकासे।"

इन पंक्तियों में सद्यः स्नाता का सजीव चित्र है जिसके केशों से पानी चू रहा है और जिसने लज्जावश अपने दोनों हाथों से कुचों को छिपा रखा है।

3. अनुरणात्मकता

शब्दों के द्वारा ध्वनि उत्पन्न करना ही अनुरणात्मकता है। केवल महाकवियों की भाषा में ही यह विशेषता मिलती है। पदावली का एक उदाहरण देखिए–

"किंकिन किन किन कंकन कन कन घन घन नूपुर बाजे"।

यहां किंकिणी, कंकण और नूपुरों की ध्वनियों का ध्वन्यात्मक चित्रण है और इनकी ध्वनियों का पार्थक्य भी दर्शित है।

4. संगीतात्मकताः–

संगीतात्मकता तो विद्यापति की भाषा के प्राण हैं। कोमलकांत पदावली श्रृंगार–रस के नितांत अनुकूल है जिन्हें लय के रेशमी धागों से अत्यन्त कौशल के साथ जोड़ा गया है। भाषा में कहीं भी न तो कर्कषता है और न अवरुद्धता। यह संगीत शास्त्रीय विधानों का नहीं, धड़कनों की स्वाभाविक थिरकनों का है। 'पदावली' में ये थिरकनें आद्यान्त हैं। उदाहरणार्थः–

"अखिल लोचन तम–ताप–विमोचन
उदयति आनन्दकन्दे।
एक ललिनि–मुख मलिन करए जदि
इथै लागि निन्दह चन्दे"।

विद्यापति की संगीतात्मकता भावों को उत्कर्षता प्रदान करती है। भावों की मार्मिकता इनकी लयों में साकार होकर अत्यन्त मार्मिक और हृदयग्राह्य बन जाती है।

5. शब्द–शक्तिः–

शब्द की अभिधा, लक्षणा और व्यंजना ये तीन शक्तियां मानी जाती हैं। उत्तम काव्य वही है जिसमें व्यंजना शक्ति हो। विद्यापति की 'पदावली' में व्यंग्यार्थबोधक पदों की कमी नहीं है उदाहरण स्वरूपः–

"करू धरू करू मोहे पारे
देब में अपरूब हाटे, कन्हैया।
सखि सब तेजि चलि गेली
न जान कोन पथ भेली, कन्हैया।
हम न जाएब तुअ पासे
जाएब औघट घाटे, कन्हैया"।

अभिधेयार्थ तो यह है कि राधा अपनी परिस्थिति बताती हुई कृष्ण से उसे यमुना पार कराने की प्रार्थना कर रही है। वह कहती है कि हे कन्हैया, मेरा हाथ पकड़िए और मुझे पार पहुँचा दीजिए। इसके लिए मैं तुम्हें अपूर्व हार दूंगी। सारी सखियां न जाने किस मार्ग से मुझे अकेली छोड़ कर चली गई हैं। मैं तुम्हारे पास नहीं जाती, मुझे तो औघट घाट जाना है।

इसका व्यंग्यार्थ यह है कि भारतीय विधान के अनुसार नारी का हाथ पकड़ने का अधिकार केवल पति को है। राधा अपना हाथ कृष्ण के हाथ में देने की प्रार्थना करती है। इस प्रार्थना में उसका पत्नीवत् आत्म–समर्पण है। हार प्रदान का अर्थ स्मृति को सदैव सजग बनाये रखने का साधन है। सखियों का अज्ञात मार्ग से छोड़कर चली जाने से राधा का एकाकीपन ध्वनित है और औघट घाट से तात्पर्य निर्जन स्थान से है जहां किसी प्रकार का भय न रखकर आंनदपूर्वक रतिक्रीड़ा की जा सके।

6. अलंकार योजना

संस्कृत के काव्य शास्त्र से परिचित होने के कारण विद्यापति ने कविता में अलंकारों के महत्त्व को अच्छी तरह समझा है। उन्होंने विभिन्न अलंकारों की योजना द्वारा अपनी भाषा को समृद्ध किया है। केवल चमत्कार प्रदर्शन के लिए उन्होंने अलंकारों का प्रयोग नहीं किया है। अलंकारों के प्रयोग से उनकी भाषा की रमणीयता एवं शक्तिमत्ता बढ़

गई है। केवल चमत्कारविधायक शब्दांलकारों के प्रति उन्होंने सीमा से अधिक मोह कहीं नहीं दिखाया है। फिर भी यत्र–तत्र अनुप्रासमयी कोमल–कान्त पदावली उनकी भाषा को सौन्दर्य प्रदान करती हुई दृष्टिगत होती है। उदाहरण–

'रितुयति राति रसिक रसराज। रसमय रास रभस रस मोंझ
रसमति रमनि–रतन धनि राहि, रास रसिक कसह रस अवगाहि'।
'सारंग नयन बयन पुनि सारंग, सारंग, सारंग तसु समधाने।
सारंग ऊपर उगल दुई सारंग, केलि करथि मधुपाने"।

7. लोकोक्तियाँ और मुहावरेः–

लोकोक्तियां और मुहावरे भाषा की अभिव्यंजना शक्ति को द्विगुणित कर देते हैं। लोकोक्तियों का विधान कवि का लोक–भाषा पर पूर्ण अधिकार का सूचक है। विद्यापति के पदों में लोकोक्तियों का प्रचुर प्रयोग मिलता है। यथा–

1. हाथे न मेट पखान क रेहा।
2. हाथ क कांगन अरसी काज।
3. भमश भरे मांजरि न भांगे।
4. बडेघ्ओ भूखल नहिं दुहु कओरे खाए।
5. कुप न आवए पथिक के पास।
6. दूध क माखी दूती भेल आदि।

मुहावरों के भी कतिपय उदाहरण देखिएः–

"नींद भरल अछ लोचन तोर।
कोमल बदन कमल रूचि चोर।"
× × × ×
"बारि बिलासिनी केलिन जानथि
भाल असन उडि गेला।"
× × × ×
अधर दसन देखि जिउ भोरा काँपे
लोलुऊ–बदन सिटी अधि धनि तोरि"

• स्व–मूल्यांकनः

प्रिय विद्यार्थियों !

इस अध्याय में आपने विद्यापति की भाषा व उनकी भाषा की विशेषताओं का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित बहु विकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिह्न द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

प्र) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिएः–

1) प्रस्तुत पंक्ति किस कवि द्वारा कही गई है? संस्कृत अब विद्वानों की ही भाषा है– 'सक्कय बहुवन भावर'।

क) विद्यापति ख) चन्दबरदाई ग) मीराबाई घ) कबीरदास

2) विद्यापति की रचना 'पदावली' की भाषा में कौन सा गुण विद्यमान नहीं है?

क) सरसता ख) माधुर्य ग) रमणिका घ) सुंदरता

3) विद्यापति ने अपभ्रंष के किस परिवर्तित रूप को अपने काव्य रचना का आधार बनाया हे?

क) मैथिली ख) संस्कृत ग) अवहट्ठ घ) हिन्दी

4) अलंकारों के प्रयोग से विद्यापति की भाषा की कौन से विषेशता बढ़ गई

क) माधुर्यता ख) सुंदरता ग) रमणीयता एवं शक्तिमता घ) सरसता

5) शब्दों के द्वारा ध्वनि उत्पन्न करना क्या कहलाता है?

क) संगीतात्मकता ख) अनुरणात्मकता ग) चित्रमयता घ) शब्द शक्ति

प्र2) रिक्त स्थान भरोः–

क) विद्यापति ––––––– के सर्वोपरि कवि के रूप में जाने जाते हैं।

ख) विद्यापति ने साहित्यिक भाषा को –––––––– के करीब लाने का सफल प्रयास किया।

ग) –––––––– तो विद्यापति की भाषा के प्राण हैं।

घ) शब्द की अभिधा, लक्षणा और ––––––––– तीन शक्तियां मानी जाती है।

ङ) भाषा के लिए भावाभिव्यक्ति साध्य है और अलकारादि –––––––।

प्र3) सही या गलत

प्रिय विद्यार्थियो! निम्नलिखित के उत्तर सही या गलत चिह्न द्वारा देकर आप अभी तक प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें।

क) विद्यापति की संगीतात्मकता भावों को उत्कर्षता प्रदान करती है। ( )

ख) विद्यापति की 'पदावली' के पदों में सगीतमयी भाषा को स्थान दिया है। ( )

ग) विद्यापति की 'पदावली' की भाषा समय की गति के साथ परिवर्तित नहीं होती है। ( )

9.5 सारांशः

इस प्रकार 'पदावली' की भाषा में सरसता, माधुर्य और रमणीयता पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग से उसमें अधिक सजीवता, भावाभिव्यंजन क्षमता एवं हृदयग्राहिता आ गई है। 'पदावली' की भाषा जहां लोकभाषा का जीवन्त एवं ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत करती है वहां, उसमें साहित्यिक सौन्दर्य की छटा भी दर्शनीय है। 'पदावली' के पदों की रचना गीतों के रूप में हुई है, इसलिए 'पदावली' के पदों में संगीतमयी भाषा को स्थान

दिया गया है। सरस, मधुर, लयपूर्ण और नाद–भरी शब्दावली के प्रयोग से विद्यापति की भाषा अधिक प्रभावशाली एवं हृदयग्राही रूप धारण कर लेती है। 'पदावली' वास्तव में एक रस–सिद्ध कवि एवं शब्द शिल्पी कलाकार की सफल कृति सिद्ध होती है।

9.6 कठिन शब्द

क) अनुसंधान– अन्वेषण, खोज

ख) आधान्त – आदि के अन्त तक

ग) साध्य – साधन के योग्य

घ) यधेष्ट – काम चलाने लायक

ङ) पार्थक्य – पृथक होने की अवस्था, अंतर

9.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र01 विद्यापति पदावली की काव्य भाषा पर प्रकाश डालिए।

उ01 --

प्र02 विद्यापति की भाषा की प्रमुख विशेषताएं बताईए।

उ02 --

9.8 उत्तर कुंजी

- **बहुविकल्पीय प्रश्न**

1. विद्यापति 2. सुन्दरता 3. अवहट्ठ 4. रमणीयता एवं शक्तिमता 5. अनुरणात्मकता

- **रिक्त स्थान**

1. मैथिली 2. जनभाषा 3. संगीतात्मकता 4. व्यंजना 5 साधन

• **सही गलत**

1. सही 2. सही 3. गलत

9.9 पठनीय पुस्तकें

1. विद्यापति – डॉ. आनन्द प्रकाश दीक्षित प्रकाशन – दिव्या प्रकाशन, ग्वालियर।
2. विद्यापति – मनमोहन सहगल
3. विद्यापति – युग साहित्य – अरविंद नारायण सिन्हा 1966 – प्रकाशक विनोद पुस्तक मन्दिर।

कबीर का रहस्यवाद

रूपरेखा

10.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
10.2 प्रस्तावना
10.3 कबीर का रहस्यवाद
10.4 सारांश
10.5 स्व–मूल्यांकन
- बहु विकल्पीय प्रश्न
- रिक्त स्थान
- सही और गलत

10.6 कठिन शब्द
10.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
10.8 उत्तर कुंजी
10.9 पठनीय पुस्तकें

10.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य हैः–

– कबीर के समय में हिन्दू धर्म के अनेक सम्प्रदायों, मतों और पंथों की जानकारी देना।

– कबीर के क्रांतिकारी रूप के प्रति अवगत कराना।

– कबीर के आध्यात्मिक प्रेम की प्रस्तुति इनके काव्य में हुई है इसकी जानकारी देना।

– कबीर के रहस्यवाद की विभिन्न अवस्थाओं के प्रति अवगत कराना–कबीर के समय में हिन्दू धर्म के अनेक सम्प्रदायों, मतों और पंथों की जानकारी देना।

– कबीर के क्रांतिकारी रूप के प्रति अवगत कराना।

– कबीर के आध्यात्मिक प्रेम की प्रस्तुति इनके काव्य में हुई है इसकी जानकारी देना।

– कबीर के रहस्यवाद की विभिन्न अवस्थाओं के प्रति अवगत कराना।

इस अध्याय के अध्ययनोपरान्त विद्यार्थी कबीर के समय में हिन्दू धर्म के अनेक सम्प्रदायों, मतों और पंथों की जानकारी, कबीर के क्रांतिकारी रूप, कबीर के आध्यात्मिक प्रेम तथा कबीर के रहस्यवाद की विभिन्न अवस्थाओं से परिचित होंगे।

10.2 प्रस्तावना

कबीर के समय में हिन्दू धर्म अनेक सम्प्रदायों, मतों और पंथों में विभक्त था। मूर्तिपूजा और बहुदेववाद का बोलबाला था। धार्मिक जीवन में कर्मकांडों और बाह्य आचारों को अत्यधिक महत्त्व दिया जा रहा था। भोले और भीरू लोग सिद्धों, दिगंबरों, योगियों, शाक्तों, निरंजन पंथियों, वैरागियों, तपस्वियों और मौनी साधुओं के चमत्कारपूर्ण क्रियाकलापों से प्रभावित थे। धर्म का आध्यात्मिक पक्ष उपेक्षित हो रहा था, जबकि धर्म में संकीर्णता लगातार बढ़ती जा रही थी।

कट्टरता और संकीर्णता का प्रभाव हिंदुओं तथा मुसलमानों में समान रूप से दृष्टिगोचर हो रहा था। लेकिन इन विषम परिस्थितियों में एक वर्ग ऐसा भी था जो सभी समुदायों, सम्प्रदायों के बीच पारस्परिक सौहार्द का समर्थक था। "धार्मिक संकीर्णता और विघटन के युग में स्वानुभूति के आधार पर विभिन्न आध्यात्मिक दर्शनों से ग्रहणशील तत्वों का संग्रह करके कबीर एक क्रांतिदूत के समान प्रादुर्भूत हुए। उन्होंने मानवता पर आधृत संत मत का प्रचार किया तथा धर्म का वास्तविक रूप जनता के सामने प्रस्तुत करके उसको मार्गदिशा प्रदान की।"[1]

10.3 कबीर का रहस्यवाद

कबीर समग्र रूप में क्रांतिकारी हैं। उन्होंने धर्म के नाम पर पैदा की गई गलत परम्पराओं का डटकर विरोध किया। कबीर सहज धर्म का उपदेश देते हैं। उनके इस सहज उपदेश में धर्म–अध्यात्म की गूढ़ गहराइयां छिपी हुई हैं। कबीर ने ब्रह्म की निर्गुण सत्ता को स्वीकार किया है। हालांकि विद्वानों ने कबीर के दर्शन (काव्य) में परस्पर विरोधी तत्वों को भी देखा है – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं – कबीरदास के पदों से एकेश्वरवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैताद्वैत विलक्षणवाद आदि कई परस्पर विरोधी मतों के समर्थक हो सकते हैं, पर इस विरोध का कारण कबीर दास के विचारों की अस्थिरता नहीं है बल्कि यह है कि वे भगवान को आगार समझते थे। इसीलिए लौकिक दृष्टि से जो बातें परस्पर विरोधी दिखती हैं, आलौकिक भगवत्स्वरूप में वे सब घट जाती हैं। यह बात भक्ति की दुनिया में नई नहीं है। शाक्त लोग एक साथ भगवान के लिए कई परस्पर विरोधी विशेषणों का व्यवहार करते हैं।[2]

यह कहना गलत न होगा कि कबीर आध्यात्मिक चेतना के जिस स्तर पर हैं, वहाँ उनके लिए कुछ भी त्याज्य नहीं है। वे ईश्वर के समस्त रूपों को ग्रहण करने के लिए आतुर दिखते हैं। आध्यात्मिक संदर्भों में भी कबीर को किसी सीमित क्षेत्र तक बाँधकर नहीं रखा जा सकता। उन्होंने ब्रह्म का ऐसा रूप निरूपित किया है जिसमें वैदिक मान्यता, मुसलमान व सूफी प्रभाव, योगियों का विलक्षणवाद, बौद्धों का शून्यवाद आदि बहुत कुछ दृष्टिगोचर होता है।

कबीर भले ही निर्गुण के समर्थक और पोषक दिखाई पड़ते हों, लेकिन वास्तविकता यह है कि वे ब्रह्म का ऐसा स्वरूप प्रस्तुत करते हैं जो सगुण और निर्गुण दोनों का एकीकृत रूप है। कबीर के आध्यात्मिक विचारों और साधना पद्धति को समझने के लिए बहुत व्यापक दृष्टिकोण लेकर आगे बढ़ने की जरूरत है। "भारतीय परम्परा की साधना–कसौटी पर अपनी रचनाओं को कसकर यह संज्ञान कर लेने की आवश्यकता है कि उसके पश्चात् कितने विरोधात्मक विचार मिलते हैं? इसके लिए कबीर की साधारण कविताओं को लेकर काम नहीं चलाया जा सकता। कबीर की उक्तियों और उलटबांसियों का अध्ययन भी परमावश्यक है।"[3]

कबीर के साहित्य में यह प्रयास कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता कि वे किसी दार्शनिक पद्धति की प्रस्तुति करते हैं। कबीर के ब्रह्म और अध्यात्म से सम्बन्धित विचारों को प्रायः रहस्य से जोड़कर देखा जाता है। कबीर का रहस्यवाद क्या है? विद्वानों ने इस पर अलग दृष्टिकोण से विचार किया है। लेकिन रहस्यवाद (कबीर के रहस्यवाद) के स्वरूप पर विद्वान एकमत नही हो सके।

ऐसा नहीं है कि रहस्यवाद की शुरुआत कबीर से हुई हो। सिद्धों–योगियों ने स्वानुभवों की प्रस्तुति में रहस्यवाद का प्रयोग किया है। वहीं से कबीर ने न्यूनाधिक रूप में इसे स्वीकार किया है। कबीर के सम्पूर्ण साहित्य में ब्रह्म और आत्मनिरूपण की प्रस्तुति को प्रधानता मिली है। यहाँ यह स्पष्ट करना जरूरी है कि कबीर का रहस्यवाद निरा बुद्धि पर आधारित नहीं है। उसमें भाव–तत्व भी मौजूद है।

"कबीर का रहस्यवाद प्रत्यक्ष रूप में उनका आध्यात्मिक ब्रह्म से आत्मा का भावनात्मक तादात्म्य करने का प्रयास है। यह आत्मा और परमात्मा का प्रणय सम्बन्ध है, जिसमें दोनों के स्वरूप और तत्त्वों का निरूपण बुद्धि प्रधान होने पर भी मिलन के प्रयास से पूर्णरूप से भावनात्मक है। .... रहस्यवादी कवि भावना और प्रेम से ब्रह्म के आधिदैविक स्वरूप की भावना प्राप्त करता है और बुद्धि द्वारा आध्यात्मिक ब्रह्म के सत्य निरूपण से ज्ञान और फिर इन दोनों का सहारा लेकर अध्यात्मिक सत्ता की। जो उसे रहस्यमयी अनुभूतियां साधना के क्षेत्र में होती हैं, उनका अपनी अटपटी भाषा में शब्द चित्र अंकित करता है। साधक की यही कृतियां साहित्य में रहस्यवाद की सृष्टि करती हैं।"[4]

कबीर के रहस्यवाद को निम्नलिखित उपशीर्षकों के अंतर्गत देखा जा सकता है –

1. आस्तिकता
2. प्रेम और भावना
3. गुरू का स्थान
4. आत्मशुद्धि
5. ब्रह्म प्राप्ति की बाधाएं
6. साधना के साधन
7. प्रेम के साधन
8. बुद्धि और भाव तत्व
9. तादात्म्य या एकरूपता

लौकिकता से परे हटकर परमात्मा के प्रति राग, विस्मय, जिज्ञासा, मिलने की उत्कंठा और उत्सुकता को रहस्य अनुभूति की अवस्था में शामिल माना गया है। यह अनुभूति विभिन्न सोपानों से होती हुई ईश्वर से तादात्म्य की अवस्था तक जाती है। कबीर का दृढ़ विश्वास है कि आत्मा को परम तत्व की अनुभूति के लिए किसी मध्यस्थ, पुस्तकीय ज्ञान या लौकिक समझ की जरूरत नहीं है। किसी सहयोग के बिना ही व्यक्ति अपने साध्य को प्राप्त कर सकता है 'साक्षी' का अनुभव करने के लिए किसी दूसरे की जरूरत नहीं है। बल्कि सच्चाई यह है कि किसी दूसरे की मौजूदगी में परम सत्ता से तादात्म्य में बाधा उत्पन्न हो सकती है।

ईश्वर के अस्तित्व के प्रति आस्था, उसकी मौजूदगी का अहसास वह सीढ़ी है जिसके आधार पर आगे बढ़ा जा सकता है। कबीर आस्तिक हैं। उन्होंने ब्रह्म के लिए 'शून्य' शब्द का प्रयोग किया है लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि वे ईश्वर के अस्तित्व को नकार रहे हैं। उन्होंने इस शब्द को बौद्धों–नाथों के प्रभाव से ग्रहण किया है और इस 'शून्य' में सर्वव्यापी और अखंड ईश्वर का दर्शन किया है। कबीर के इस 'शून्य' को पाना आसान नहीं है।

'ऐसा कोई ना मिलै, सब देई बतलाय।
सुन्न मंडल में पुरुष एक ताहि रहे ल्यो लाय'।।[5]

कबीर की रहस्य–चेतना दो खण्डों में सामने आती है –

1. भावनात्मक रहस्यवाद
2. साधनात्मक रहस्यवाद

जिन पदों में कबीर ने आध्यात्मिक प्रेम का निरूपण किया है, वहाँ भावनात्मक रहस्यवाद की प्रस्तुति हुई है। इसके अलावा जहाँ कबीर की रहस्य अनुभूति 'सतत समाधि' तक पहुँचती है, वहाँ वह साधनात्मक रहस्यवाद के रूप में होती है।

रहस्यवाद में आस्था व आस्तिकता के बाद प्रेम और भावना का स्थान है। कबीर की रहस्य अनुभूति विविध स्तरों पर परिलक्षित होती है। ''जैसे शंकर आदि आनंद के लिए भक्ति की द्वैतवादी भूमिका में उतर आते हैं, वैसे ही कबीर भी रहस्यवादी भूमिका पर अद्वैत से आए हैं। उनका रहस्यवाद उपनिषद के ऋषियों का रहस्यवाद है जो मूलतः अद्वैत के अंतरविरोधों में समन्वय करने वाली रहस्यात्मक अनुभूति है।"

कबीर में रहस्यवाद की तीन अवस्थाओं की गहरी अनुभूति मिलती है। प्रथम अवस्था में गुरु की कृपा से अनुराग पैदा होता है और इसकी परिणति विरह से होती है।

'सतगुरु हम पर रीझि कर, कह्या एक प्रसंग।
बरस्या बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग।।'

और भी–

'बिरह जलाई मैं जलूं, जलती जलहरि जाउं।
मैं देख्या जलहरि जलै, संतो कहां बुझाउं।।'

रहस्यवाद की दूसरी अवस्था परिचय की है। कबीर ने ईश्वर से परिचय का अनेक पदों में सुंदर वर्णन किया है। परमात्मा का तेज अनंत है। चूँकि कबीर ने उसे जान लिया है, इसलिए उससे एकाकार होने में ज्यादा कठिनाई नहीं है –

'पारब्रह्म के तेज का, जैसा है उनमान।
कहिबे कूं सोभा नहीं, देख्या ही परमान।।'

रहस्यवाद की तीसरी अवस्था मिलन की है। "यही सिद्धावस्था है। ज्ञानी के लिए यही अपरोक्षानुभूति है। मिलन की इस अवस्था में जीवात्मा में 'मैं' और 'तू' का भेद धीरे–धीरे विलीन होने लगता है। उसे 'अहं' में त्वं' पूर्णतः समाया हुआ प्रतीत होता है।"6

ईश्वर से मिलन के बाद संसार के तमाम कष्ट, भय, प्रपंच और तपन समाप्त हो जाती है। अनंत शीतलता का अहसास होता है। यही अनंत शीतलता रहस्यवाद का चरम है।

'अब हम सकल कुसल करि मांना
स्वांति भई तब (जब) गोव्यंदं जांनां।
तन में होती कोटि उपाधि
उलटि भई सुख सहज समाधि।।'

कबीर को सूफी साधना का विरह वर्णन काफी पसन्द है। लेकिन उनकी रहस्यचेतना सूफियों जैसी नहीं है। उनके पदों का माधुर्य भाव भारतीय परम्परा का है। विरह अवस्था में कबीर ईश्वर की व्यापकता का और गहरा अनुभव करते हैं। उन्हें विरह अवस्था में 'सर्वात्म चेतनवाद' का आभास होता है। कबीर अनेक पदों में अद्वैती, भक्त और रहस्यवादी होने का सुंदर समन्वय प्रस्तुत करते हैं।

कबीर का रहस्यवाद पश्चिमी या सूफियों का रहस्यवाद नहीं है। उन्होंने रहस्यवाद के स्तर पर अनेक भारतीय साधनाओं का समन्वय प्रस्तुत किया। "कबीर ने भगवान के निर्गुण एवं निराकार रूप के प्रति निरुपाधिक प्रेम को रहस्यवादी साधना के माध्यम से साकार तथा हृदयस्पर्शी रूप दिया है।"[7]

कबीर–काव्य में अनेक स्थानों पर रहस्यपूर्ण रूपक और दृश्य मौजूद हैं। उनकी रहस्य दृष्टि में भक्ति और ज्ञान, दोनों समाहित हैं। उनके रहस्यवाद का लक्ष्य मन को उलझाना नहीं, अपितु उसे सांसारिक भटकावों से निकालकर, ईश्वर के साथ उसका योग करा देना है। कबीर ने रहस्य–अनुभूति की प्रस्तुति में प्रतीकों, उलटबासियों एवं रूपकों का सफल प्रयोग किया है। कबीर के रहस्यवाद को समझने के लिए दर्शन – पक्ष की समझ होना जरूरी है। दर्शन – पक्ष की समझ के अभाव में उनकी रहस्यवाद की प्रस्तुति क्लिष्ट दिखाई पड़ सकती है। कबीर केवल सिद्धांतों के आधार पर नहीं चलते वे जीवन के व्यावहारिक पक्ष को स्वीकारते हैं। उन्होंने पूर्ववर्ती कवियों, संतों के रहस्यवाद के समन्वित रूप को प्रस्तुत किया है। कबीर का रहस्यवाद सार्थक, प्रासंगिक और नई दृष्टि देने वाला है।

कबीर के रहस्यवादी पदों में श्रृंगार के भावों का चित्रण हुआ है। ऐसे पदों में स्त्री–पुरुष के दाम्पत्य को लेकर श्रृंगार की प्रस्तुति हुई है। यहाँ यह बात स्पष्ट करना जरूरी है कि कबीर की श्रृंगार प्रस्तुतियों को रीतिकालीन या श्रृंगारवादी कवियों के परिप्रेक्ष्य में देखा–समझा नहीं जा सकता। कबीर के श्रृंगार पद एक अंतर्दृष्टि से सम्पन्न हैं। यह अंतर्दृष्टि आत्मा और परमात्मा के मिलन को लेकर है। उनके श्रृंगार के पदों में आत्मा अपने पति (परमात्मा) से मिलने को तड़पती है –

'सखियो, हमहु भई बलमासी।
आयो जोवन बिरह सतायो, अब मैं ज्ञान गली अठिलासी।
ज्ञान गली में खबर मिल गये, हमें मिली पिया की पाती।
वा पाती में अगम संदेसा, अब हम मरने को न डराती।
कहत कबीर सुनो भई प्यारे, वर पाये अविनासी।।'

कबीर ने दर्शन के दोनों पक्षों – वियोग और संयोग को अनेक पदों में चित्रित किया है। ऐसे अनेक पद हैं जिनमें आत्मा, साईं के विरह में तड़पती है और ऐसे पदों की भी भरमार है जब परमात्मा से मिलन के बाद आत्मा आनंदमग्न हो गई है। विरह में यही आत्मा कहती है –

देखूं मेरे राम सनेही
जा बिन दुःख पावै मेरी देही।
हुँ नेरा पंथ निहारूं स्वामीं
कब रे मिलहुगे अंतरजामीं।
जैसे जल बिन मीन तलपै
ऐसै हरि बिन मेरा जियरा कलपै।
निस दिन हरि बिन नींद न आवे
दरस पियासी राम क्यूँ सचु पावैं।

कहै कबीर अब विलम्ब न कीजै
अपनौ जांनि मोहि दरसन दीजै।।

कबीर ने श्रृंगार का स्थूल चित्रण नहीं किया है। अलबत्ता यह सच्चाई है कि इन्होंने श्रृंगार की प्रस्तुति में लौकिक भाषा और रूपकों का प्रयोग किया है। कबीर ने आत्मा को प्रेमिका और भगवान को प्रेमी के रूप में भी स्वीकार किया है।

कबीर के श्रृंगार के पदों में माधुर्य गुण व्यापक रूप से मिलता है। श्रृंगार के पदों में कबीर की माधुर्य प्रस्तुति सहज रूप में सामने आती है।

"दुलहनी गावहु मंगलचार।
हम घरि आये हो राजा राम भरतार।।
तन रत करि मैं, मन रत करिहूँ, पंचतत्त्व बराती।
रामदेव मोरै पांहुनैं आये, मैं जोबन मैं माती।।
सरीर सरोवर बेदी करिहूँ, ब्रह्मा वेद उचार।
रामदेव संग भांवरि लैहूं, धनि धनि भाग हमार।।
सुर तेतीसूं कौतिग आये, मुनिवर सहस अठ्यासी।
कहैं कबीर हम ब्याहि चले हैं, पुरिष एक अबिनासी।।"

वर्ण्य विषय की दृष्टि से विद्वानों ने कबीर के काव्य को तीन वर्गों में विभक्त किया है–

1. भावात्मक
2. विचारात्मक
3. व्यंग्यात्मक

कबीर के श्रृंगार का रूप भावात्मक पदों में मिलता है। इन पदों में कबीर ने भक्ति भावना तथा असीम के प्रति अपने प्रेम तथा दाम्पत्य भाव की अभिव्यक्ति की है। कबीर ने श्रृंगार वर्णन के लिए आत्मा और ईश्वर के बीच प्रेमी–प्रेमिका के सम्बन्धों पर दाम्पत्य सम्बन्धों को अधिक मान दिया है।

कबीर किसी भी दृष्टि से काव्यशास्त्री नहीं हैं और न ही उन्होंने योजनापूर्वक श्रृंगार की प्रस्तुति की है। श्रृंगार रस उनके पदों में अनायास ही प्रस्तुत हुआ है। कबीर की अपने परिवेश पर गहरी पकड़ है। श्रृंगार का जो भी भाव आया है, वह परिवेशगत कारणों से आया है। गूढ़ भावों को इन पदों में सहजता से प्रस्तुत किया जा सका है।

कबीर काव्य में श्रृंगार के पद मुख्यतः 'बसंत', 'हिंडोला' और 'कहरा' में मिलते हैं। उपर्युक्त सभी प्रकार के 20–22 पद कबीर के काव्य में मौजूद हैं। उनमें से आधे पदों में श्रृंगार भाव की प्रस्तुति हुई है। यह प्रस्तुति आत्मा और परमात्मा के सम्बन्धों को लेकर की गई है। कबीर की श्रृंगार प्रस्तुतियां रागों पर भी आधारित हैं।

कुछ रूपकों और प्रतीकों को लेकर कबीर पर यह आरोप भी लगता है कि वे सामाजिक मान्यताओं से परे हट रहे हैं। लेकिन ईश्वर से मिलन और समाज को सही राह दिखाने के लिए उन्हें इन आरोपों की परवाह नहीं है। कबीर अपने अनुभव से लोक की अभिव्यंजना करते हैं। इसलिए उनके श्रृंगार–वर्णन में जीवन से इतर कुछ भी प्रस्तुत नहीं हुआ है। उन्होंने अनेक पदों में परमात्मा को पति, आत्मा को पत्नी तथा परमात्मा को प्रेमीध्संरक्षक के रूप में चित्रित किया है। लेकिन कबीर का श्रृंगार वर्णन स्थूल या मांसल श्रृंगार नहीं है। निश्चय ही कबीर अपनी मान्यताओं और

आदर्शों के प्रति बेलाग और आस्थावान हैं। यही पद्धति शृंगार के पदों मे दृष्टिगोचर होती है। कबीर काव्य से यह स्वतः ही स्पष्ट है कि कबीर की बेचैनी किसी लौकिक प्रेमी के प्रति नहीं है।

कबीर के रहस्यवाद में उनकी दार्शनिक एवं आध्यात्मिक मान्यताओं का संकेत मिलता है। कबीर जिस साधना पद्धति का अनुसरण करते हैं, ऊपरी तौर पर वह व्यक्तिगत दिखाई नहीं पड़ती फिर भी कबीर के दार्शनिक विचार अनेक स्थानों पर स्पष्ट होते हैं।

ब्रह्म –

कबीर ने ब्रह्म को विलक्षण माना है। उसे सांसारिक विशेषणों से नहीं जाना जा सकता। कबीर का ब्रह्म 'विरुद्धों के समन्वय' का रूप दिखाई पड़ता है। उनके ब्रह्म के रूप में परस्पर विरोधाभासी बातें भी दिखाई पड़ती हैं। हालांकि उन्होंने ब्रह्म के निर्गुण रूप को ही प्रधानता से प्रस्तुत किया है। उनका ब्रह्म पूरी सृष्टि में फैला हुआ है। इसीलिए वे कहते हैं–'सूरज चन्द्र का एक ही उजियाराध्सब महि पसरा ब्रह्म–पसारा।'

कबीर के ब्रह्म को किसी सीमा में बांधना आसान नहीं है वे अपने ब्रह्म को अनेक पौराणिक नामों से पुकारते हैं। उनका ब्रह्म राम, हरि, केशव, सिद्ध, गोविंद, महादेव, कृष्ण, अल्लाह, खुदा, रब, करीम, गोरखनाथ, निरंजन आदि नामों के साथ सामने आता है लगता है जैसे सगुण की उपासना कर रहे हैं। ब्रह्म की भक्ति के लिए उसके साकार रूप की जरूरत है।

कबीर ने ब्रह्म के साकार रूप को महत्ता न देने के बावजूद, भक्ति के तीनों प्रमुख आश्रयों को स्वीकार किया। ये आश्रय हैं –

1. भावनात्मक –

"नैना अंतरि आव तूं ज्यूं हौं नैन झंपेउं।
ना हौं देखौं और कूँ ना तुझ देखन देउं।।"

2. ज्ञानात्मक –

"कोटि सूर जाकै परगास, कोटि महादेव अरु कविलास।
दुर्गा कोटि जाकै मर्दन करै, ब्रह्मा कोटि वेद उच्चरै।।"

3. प्रतीकात्मक –

"कहु कबीर को जाने भेव।
मन मधुसूदन त्रिभुवन देव।।"

कबीर की दृष्टि में ब्रह्म का स्वरूप अव्यक्त है – वह चाहे निर्गुण हो या सगुण। उन्होंने ब्रह्म को तत्व रूप में भी स्वीकार किया। उनका ब्रह्म इतना विलक्षण है कि परम ज्ञानी पुरुषों को भी उसके स्वरूप के बारे में नेति नेति कहना पड़ा। जहाँ तक ब्रह्म–निरूपण का विचार है – हमें कबीर में पूर्णरूप से आध्यात्मिक विचार ही मिलता है। कहीं–कहीं पर आधिदैविक भावना की झलक भी विद्यमान है। परंतु आधिभौतिक भावना का नितांत अभाव है। कबीर का ब्रह्म – वर्णन शास्त्रीय शैली के अंतर्गत न होकर उपदेशात्मक, रहस्यात्मक, भावनात्मक और बुद्धिमूलक शैली के अंतर्गत हुआ है।[8]

आत्मा –

कबीर आत्मा को ब्रह्ममय रूप में देखते हैं। उनके जिन पदों और साखियों में आत्मा का निरूपण हुआ है, वह ब्रह्ममय होकर ही सामने आया है। कबीर आत्मा और परमात्मा की एकता पर जोर देते हैं। कबीर ने जिस धरातल पर आत्मा का निरूपण किया है, वह पूरी तरह से शंकर के अद्वैत रूप के निकट है। कबीर ने आत्मा के अद्वैत रूप को ही स्वीकार किया है।

कबीर आत्मा को भी उसी प्रकार समस्त संसार में व्याप्त मानते हैं जिस प्रकार ब्रह्म व्याप्त है। लेकिन माया के प्रभाव के कारण आत्मा का परमात्मा से अलगाव हो गया है। जब भी माया रूपी कुम्भ फूटता है तो आत्मा का परमात्मा से मिलन हो जाता है –

जल में कुंभ कुंभ में जल है बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना यह तथ कथ्यो गियानी।।

कबीर ने आत्मतत्व को अंतिम सत्य माना है। आत्मा बूंद है और परमात्मा समुद्र है। आत्मा भी परमात्मा के समान निर्गुण और निराकार है। कबीर ने शरीर में मौजूद आत्मा के दो रूप माने हैं –

1. ज्ञाता
2. ज्ञेय

कबीर मानते हैं कि साधना की चरम अवस्था में आत्मा और परमात्मा का तादात्म्य स्थापित होता है। यह तादात्म्य तीन प्रकार का माना गया है –

1. ज्ञानात्मक (ज्ञान से परमात्मा तक पहुँचना)
2. भावनात्मक (भावना से परमात्मा तक पहुँचना)
3. यौगिक (योग से परमात्मा तक पहुँचना)

कबीर ने आत्मा के लिए जीव और सुरति शब्दों का प्रयोग भी किया है। आत्मा का जब तक ब्रह्म से परिचय नहीं होता, वह कुमारी रहती है। लेकिन जब परमात्मा का ज्ञान हो जाता है तब उसमें तड़पन पैदा होती है। कबीर ने आत्मा का अंतिम लक्ष्य ब्रह्म से एकाकार होना माना है।

माया

"कबीर के माया सम्बन्धी विचार भी शंकर के अद्वैत दर्शन के निकट हैं। कही–कहीं सांख्य, सूफी और ईसाई संतों की माया–विषयक मान्यता से भी कबीर की मान्यता मिलती–जुलती दिखाई देती है। कबीर ने शंकर के समान ही माया को 'अणव्यावर के दूध' और 'बंध्या के पूत' की संज्ञा देकर उसकी अस्तित्वहीनता पर प्रकाश डाला है।"[9]

कबीर का स्पष्ट मत है कि माया ने सभी को ठगा है। मनुष्य–देवता, राजा–रंक, ऋषि–मुनि–गृहस्थ, भक्त–योगी आदि में से कोई उसके प्रभाव से नहीं बच सका। माया सर्वत्र व्याप्त है और वह परमात्मा से तादात्म्य की राह में हमेशा रोड़ा अटकाती है। कबीर ने अपने काव्य में माया के विविध रूपों का वर्णन किया है। व्यावहारिक दृष्टि से उन्होंने माया के दो भेद माने हैं–

1. विद्या माया
2. अविद्या माया

अविद्या माया को उन्होंने पुनः दो भागों में बांटा है –

1. मोटी माया (मानसिक विकारों एवं मिथ्या ज्ञान से उत्पन्न होती है।)
2. झीनी माया (काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि इसके कारण होते है)

विद्या माया, ब्रह्म की शक्ति है। यह माया संतों के लिए हितकारी है। यह माया ईश्वर के साक्षात्कार में सहायक होती है। लेकिन इसके लिए कठोर साधना से गुजरना पड़ता है। कबीर ने माया को लगातार परिवर्तनशील और मोहक माना है। माया के आकर्षक रूप के कारण ही आत्मा उसके बंधन में पड़ती है। माया के इस आकर्षक रूप से बचने के लिए कबीर ने अनेक प्रकार से आत्मा को चेताया है। उन्होंने माया को 'पापिणी', मोहनी, महाठगिनि, सांपिनि और डाकणी कहा है। कबीर परमात्मा और आत्मा की तरह ही माया को समस्त संसार में व्याप्त मानते हैं –

माया जग सांपिनि भई, विष ले बैठी पास।
सब जग फंदे फंदिया, चले कबीर उदास।।

कबीर ने मन और माया का घनिष्ठ सम्बन्ध माना है। जब मन में काम, क्रोध, तृष्णा, ईर्ष्या, मोह आदि नही होंगे तो माया, मन को अपने प्रभाव में नहीं ले पाएगी लेकिन जब भी मन कमजोर होगा, माया उसमें घर बनाकर बैठ जाएगी। इसलिए माया के प्रभाव से मुक्त रहने के लिए मन को नियन्त्रित करने की बात कही गई। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कबीर के माया सम्बन्धी विचार सांख्य और सूफी मत के भी निकट हैं।

जगत

परमात्मा, माया तथा आत्मा के स्वरूप पर विचार करते समय ही कबीर जगत के स्वरूप का भी वर्णन करते हैं। कबीर के जगत–सम्बन्धी विचारों पर भी बौद्ध दर्शन, अद्वैत, सांख्य और सूफीमत का प्रभाव दिखाई पड़ता है। हालांकि वे अद्वैत दर्शन के अधिक निकट हैं। कबीर ने सृष्टि के समस्त पदार्थों को नाशवान और ब्रह्म को सत्य माना। यही बात आचार्य शंकर कहते हैं। उन्होंने जगत के मूल तत्व को अपरिवर्तनशील माना। वे 'पानी ही ते हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाय' कहकर उपर्युक्त बात की पुष्टि करते हैं। कबीर ने कुछ जगहों पर जगत् को 'स्वप्न' और कुछ जगहों पर 'नूर' माना है। इन्हीं दोनों आधारों पर उनके काव्य में जगत सम्बन्धी विचारों पर बौद्धदर्शन और सूफीमत के प्रभाव की बात कही गई। कबीर अपने काव्य में लगातार समन्वयवाद की प्रतिष्ठापना करते हैं। इसी कारण जगत सम्बन्धी विचारों में वैविध्य और कहीं कहीं विरोधाभास भी परिलक्षित होता है।

मोक्ष –

जीव की मुक्ति सम्बन्धी पदों में कबीर की मोक्ष–धारणा प्रकट होती है। कबीर मानते हैं कि जब जीव विचारों का परित्याग करता है तो उसे ज्ञान की प्राप्ति होती है। वह ब्रह्म के स्वरूप को जान लेता है। संसार के प्रति उसकी दृष्टि सम हो जाती है। उसके भीतर ईश्वर से मिलन की चाह पैदा होती है। एक स्थिति ऐसी आती है जब व्यक्ति के अंह का लोप हो जाता है। ज्ञान की प्राप्ति होते ही व्यक्ति सांसारिक दुःखों से मुक्त हो जाता है।

कबीर की दृष्टि में मोक्ष की ओर जाने की यह पहली सीढ़ी है। सांसारिक बाधाओं को पार करती हुई आत्मा जब ईश्वर से एकाकार हो जाती है तो वह परम आनंद को प्राप्त करती है। कबीर की आनंद की यह अनुभूति वेदांतियों

के समान है। कबीर ने मोक्ष के लिए मुक्ति परमपद, अभयपद, निर्वाण आदि अनेक शब्दों का प्रयोग किया है। कबीर मुक्ति अथवा मोक्ष को अपूर्ण अवस्था से पूर्ण अवस्था पर पहुँचना नहीं मानते अपितु अपने नित्य अविनाशी, शाश्वत शुद्ध–बुद्ध स्वरूप की प्रतीति तथा द्वैत स्थिति की समाप्ति मानते हैं। जहाँ ब्रह्म और जीव तथा साध्य और साधक का भेद नष्ट हो जाता है। मुक्ति का यह भाव अद्वैत वेदांत के अनुकूल है। यहाँ मोक्ष का अर्थ ब्रह्मानुभूति है। वेदांत की 'विदेह अवस्था' ही कबीर की उन्मन अवस्था है।[10]

कबीर का स्पष्ट मत है कि माया के प्रभाव के कारण ही जीव को मोक्ष प्राप्ति में बाधा उत्पन्न होती है। लेकिन जीव माया के बंधन को काटने में सक्षम है। भक्त, सांसारिक आसक्तियों से मुक्त होकर परमात्मा से सायुज्य स्थापित करता है। यही मुक्ति है। सार रूप में कहा जा सकता है कि कबीर का मोक्ष वर्णन उपनिषदों, गीता और वेदांत दर्शन से प्रभावित है। पुरुषार्थ के बल पर जीव, माया से मुक्ति पाता है। उसके कर्मबंधन क्षीण हो जाते हैं। ईश्वर से सायुज्य के बाद वह शुभ कर्मों से भी मुक्त हो जाता है।

कबीर का दार्शनिक पक्ष किसी मतवाद का प्रचार या समर्थन नहीं करता। कबीर कहीं पांडित्य प्रदर्शन नहीं करते हैं और न ही पंडित होने का दावा करते हैं। वे दर्शन को भी व्यावहारिक दृष्टि से देखते हैं। कबीर ने अपनी प्रस्तुति में विभिन्न दर्शनों को स्वीकारध्समाहित किया है। दार्शनिक दृष्टि से कबीर अद्वैतवाद के निकट है। इसमें भी वे शुद्धाद्वैत के अधिक निकट हैं।

10.4 सारांश

कबीर कहीं दार्शनिक बनने की चेष्टा नहीं करते। दर्शन के निरूपण का सायास प्रयास उनके काव्य में नहीं है। दर्शन की दृष्टि से कबीर समन्वयकारी हैं। वे ज्ञान को स्वीकार करते हैं, लेकिन भक्ति की अनदेखी नहीं करते। वे शंकर के अद्वैत के निकट होने के बावजूद 'श्रुति–प्रमाणों को स्वीकार नहीं करते। अद्वैत से प्रभावित होने पर भी उनके कई पदों में एकेश्वरवाद, शून्यवाद दिखाई पड़ता है। जीव के विषय में उन्हें सूफियों का मत मान्य हैं। यह कहा जा सकता है कि कबीर ने ज्ञान और भक्ति का सामंजस्य स्थापित किया हैं। कबीर का दर्शन सर्वत्र समन्वयकारी है।

10.5 स्व–मूल्यांकन

प्रिय विद्यार्थियों !

इस अध्याय में आपने कबीर के रहस्यवाद की विभिन्न अवस्थाओं का अध्ययन किया है। अब अब आप निम्नलिखित बहु विकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिह्न द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

- **बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिएः–**

1) कबीरदास जी का जन्म कब हुआ था?

   क) 1398 ख) 1458 ग) 1278 घ) 1518

2) कबीर के समय में हिन्दू धर्म अनेक वर्गों में विभक्त था।

   क) सम्प्रदायों ख) मतों ग) पंथों घ) उपर्युक्त सभी

3) कबीर में रहस्यवाद की कितनी अवस्थाओं की गहरी अनुभूति मिलती है?

क) चार　　ख) पाँच　　ग) तीन　　घ) दो

4) रहस्यवार की प्रमुख अवस्था में विकास परिचय मिलता है?

क) ईश्वर से परिचय का　　ख) मिलन का

ग) गुरु की कृपा से अनुराग का　　घ) इनमें से कोई नहीं

5) रहस्यवाद की तीसरी अवस्था कौन–सी है?

क) परिचय की　　ख) मिलन की　　ग) गुरु की कृपा की　　घ) उपुर्यक्त सभी

• **रिक्त स्थान भरोः–**

क) कबीर के समय में मूर्तिपूजा ———————— का बोलबाला था।

ख) कबीर समग्र रूप में ———————— हैं।

ग) कबीर ने ब्रह्म को ————————— माना है।

घ) कबीर आत्मा को —————— रूप में देखते हैं।

ङ) कबीर ने मन और —————— का घनिश्ठ सम्बन्ध माना है।

• **सही और गलतः–**

क) कबीर का रहस्यवाद पष्विमी या सूफियों का रहस्यवाद नहीं है। ( )

ख) कबीर की रहस्य–चेतना एक ही खण्ड में सामने आती है। ( )

ग) रहस्यवाद में आस्था व आस्तिकता के बाद प्रेम और भावना का स्थान है। ( )

घ) कबीर को सूफी साधना का विरह वर्णन काफी पसन्द है। ( )

ङ) कबीर के माया सम्बन्धी विचार भी षंकर के अद्वैत दर्षन के निकट है। ( )

10.6 कठिन शब्द

प्रिय विद्यार्थियो!

अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर देने से पहले निम्नलिखित कठिन शब्दों के अर्थ शब्दकोश से ढूंढे और अपने शब्द भंडार को विकसित करें।

(1) सामंजस्य ——————————

(2) सर्वत्र ——————————

(3) अद्वैत ————————————

(4) पुरूषार्थ——————————

(5) प्रतिष्ठापना ————————————

(6) शाश्वत ————————————————

(7) साक्षात्कार ——————————————

(8) तादात्म्य——————————————

(9) साक्षात्कार————————————————

(10) निरूपण————————————————

(11) लौकिक——————————————

10.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कबीर की रहस्य भावना का विवेचन कीजिए।

उ01 ——

2. 'कबीर का शृंगार वर्णन लौकिक नहीं अपितु आध्यात्मिक है।' इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उ02 ——

3. कबीर के दार्शनिक विचारों पर प्रकाश डालिए।

उ03 ——

10.8 उत्तर कुंजी

• बहु विकल्पीय प्रश्न

1. 1398	2. उपर्युक्त सभी	3. तीन
4. गुरु की कृपा से अनुराग का	5. मिलन की	

• रिक्त स्थान

1. बहुदेववाद	2. क्रांतिकारी	3. विलक्षण
4. ब्रह्ममय	5. माया	

• सही और गलत

1. सही	2. गलत	3. सही
4. सही	5. सही	

10.9 पठनीय पुस्तकें

1. कबीर एवं गंगादास के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन – डॉ. सुरेन्द्र नाथ श्रीवास्तव – 1989 – प्रकाशन – हरीरामा।
2. कबीर – हजारी प्रसाद द्विवेदी 1942 – हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकार कार्यालय द्विवेदी मुंबई।
3. भक्ति साहित्य के आधार स्तम्भ, यज्ञदत्त – प्रकाशक – दिल्ली साहित्य प्रकाशन – 2004।
4. भक्ति साहित्य के आधार स्तम्भ, यज्ञदत्त – प्रकाशक – दिल्ली साहित्य प्रकाशन – 2004।
5. कबीर ग्रन्थावली (आलोचना भाग), सम्पा० डॉ. भगवत स्वरूप मिश्र 1992 – प्रकाशन – विनोद पुस्तक मन्दिर।
6. कबीर ग्रन्थावली (आलोचना भाग), सम्पा० डॉ. भगवत स्वरूप मिश्र 1992 – प्रकाशन – विनोद पुस्तक मन्दिर।
7. कबीर ग्रन्थावली (आलोचना भाग), सम्पा० डॉ. भगवत स्वरूप मिश्र 1992 – प्रकाशन – विनोद पुस्तक मन्दिर।
8. भक्ति साहित्य के आधार स्तम्भ, यज्ञदत्त प्रकाशक – दिल्ली सहित्य – 2004।
9. कबीर एवं गंगादास के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. सुरेन्द्र नाथ श्रीवास्तव 1989 – हरीराम द्विवेदी
10. कबीर एवं गंगादास के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. सुरेन्द्र नाथ श्रीवास्तव 1989 – हरीराम द्विवेदी
11. कबीर दर्शन, रामजी लाल सहायक
12. कबीर की विचारधारा, गोविन्द त्रिगुणायत 1973 – प्रकाशक – साहित्य निकेतन कानपुर।
13. कबीर का रहस्यवाद, राम कुमार वर्मा 1932
14. कबीर, हजारी प्रसाद द्विवेदी – 1942 – हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय मुंबई।
15 कबीर मीमांसा, डॉ. रामचन्द्र तिवारी 1976 – प्रकाशक – लोकभारती प्रकाशन।

कबीर की सामाजिक चेतना

रूपरेखा

11.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
11.2 प्रस्तावना
11.3 कबीर की सामाजिक चेतना
11.3.1 कबीर का तत्कालीन समाज
11.3.2 समाज के प्रति कबीर की दृष्टि
11.3.3 कबीर की दृष्टि में नारी और आमजन
11.3.4 कबीर का सामाजिक दर्शन
11.3.5 कबीर की वैश्विक दृष्टि
11.3.6 कबीर का समन्वयवाद
11.4 सारांश
11.5 स्व–मूल्यांकन
- बहुविकल्पीय प्रश्न
- रिक्त स्थान
- सही और गलत
11.6 कठिन शब्द
11.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
11.8 उत्तर कुंजी
11.9 पठनीय पुस्तकें

11.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य है :–

– कबीर के काव्य में आध्यात्मिक और धार्मिक पक्ष की प्रमुखता की जानकारी देना।

– कबीर धर्मगुरू हाने के साथ धर्मों के समन्वयकारी, दार्शनिक, हिन्दू मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक और सच्चे समाज सुधारक थे, इसके प्रति अवगत कराना।

– उनके काव्य में बार–बार समन्वयकारी रूप प्रकट हुआ है, इसकी जानकारी देना।

प्रस्तुत अध्याय अध्ययनोपरान्त आप जानेगे की कबीर के काव्य में आध्यात्मिक और धार्मिक पक्ष की प्रमुखता रही है। कबीर धर्मगुरू हाने के साथ धर्मों के समन्वयकारी, दार्शनिक, हिन्दू मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक और सच्चे समाज सुधारक थे। विद्यार्थी इससे भी परिचित होंगे कि कबीर के काव्य में उनका समन्वयकारी रूप प्रकट हुआ है।

11.2 प्रस्तावना

कबीर के मूल रूप में धर्म गुरु होने के आधार पर कहा जा सकता है कि उनके काव्य में आध्यात्मिक और धार्मिक पक्ष को ही प्रमुखता दी जानी चाहिए। लेकिन ऐसा सोचना एकांगी होगा। कबीर, धर्मगुरु होने के साथ धर्मों के समन्वयकारक, दार्शनिक, हिन्दू–मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक और सच्चे समाज सुधारक थे।

11.3 कबीर की सामाजिक चेतना

संत कबीर आत्मकल्याण और ईश्वर से एकाकार होने के बारे में सोचते हैं, लेकिन उनका एकाकार होना केवल स्वातः सुखाय या एकांतिक नहीं है। परमतत्व से साक्षात्कार के बावजूद वे दुनियावी व्यवहार को तिलांजलि नहीं देते। आध्यात्मिक ऊँचाई हासिल करने के बावजूद उनका संसार से गहरा नाता बना रहता है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उनकी विशेषताओं के बारे में लिखा है –

1. सादगी और सहज भाव पर निरन्तर जोर देते रहना।
2. बाह्म धर्माचारों की निरन्तर आलोचना करना।
3. सब प्रकार के विरागभाव और हेतुप्रकृतिगत अनुसंधित्सा के द्वारा सहज ही गलत दिखने वाली बातों को दुर्बोध्य और महान बना देने की चेष्टा के प्रति भाव।

कबीर साधारण मनुष्यों के लिए भी अपने बने रहते हैं। वे किसी ऐसे संसार या दर्शन की रचना नहीं करते जो वायवीय हो। उनका संसार यथार्थ से जुड़ा है। वे समस्त चीजों को सहजता से स्वीकार करने पर जोर देते हैं। वे अपनी बात को साधारण ढंग से कहते हैं इसीलिए उनकी बात आज सैकड़ों साल बाद भी ग्राह्य है। कबीर के कई रूप एक साथ चलते हैं। वे संत हैं, गुरू हैं, नेता हैं, कवि हैं और समाज सुधारक भी हैं।

उनके समस्त काव्य में बार–बार उनका समन्वयकारी रूप प्रकट होता है। समाज सुधार की दृष्टि से कबीर ने सैकड़ों बातें कहीं। उनके काव्य में समाज सुधार का इतना अधिक पुट है कि वे कई स्थानों पर संत या कवि के बजाय समाज सुधारक ज्यादा दृष्टिगोचर होते हैं।

11.3.1 कबीर का तत्कालीन समाज

कबीर के समय में देश की सामाजिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। धर्म, राजनीति और समाज में व्यापक स्तर पर अव्यवस्था फैली हुई थी। सामाजिक ढाँचा लगातार कमजोर हो रहा था। परम्परागत मान्यताओं को छोड़ा जा रहा था। हिंदू और मुसलमान एक–दूसरे के सम्पर्क के कारण नई सामाजिक मान्यताओं को स्वीकार कर रहे थे।

धर्म के दलालों के बोलबाले के कारण धर्मांधता भी कई रूपों में सामने आ रही थी। ऐसी परिस्थिति में निराशा, उत्साहहीनता, अवनति, परमुखापेक्षिता बढ़ रही थी। इस काल में समाज अधोगति को प्राप्त हो चुका था। समाज के पथ–प्रदर्शक पुरोहितों में पाखंडियों की गिनती बढ़ रही थी। "समाज में उत्साह एवं जीवनस्तर नित्यप्रति गिरता चला जा रहा था। इस कठिन काल में साहित्य, संस्कृति और भाषा की उन्नति का स्वप्न देखना तो स्वप्नतुल्य ही था। जन–साधारण में शिक्षा का नितांत अभाव हो चला था, धार्मिक अंधविश्वास आडंबर इत्यादि भी अशिक्षा के फलस्वरूप बढ़ते चले जा रहे थे।"[1]

यद्यपि उस समय मुसलमान विजेता जाति थी, लेकिन आम मुसलमानों की हालत हिन्दुओं जैसी ही थी। हिंदुओं की तुलना में मुसलमानों का अधिक पतन हुआ था। लूट का धन मिलने के कारण मुस्लिम समाज में तमाम तरह की विसंगतियाँ उत्पन्न हुईं थीं। इन सभी परिस्थितियों का परिणाम अशांति और अव्यवस्था के रूप में सामने आया था। इन परिस्थितियों को कबीर ने बहुत निकट से देखा और समझा। समाज इतनी विचित्र परिस्थितियों में फँस गया था कि उसमें मानवीयता नाम की कोई चीज नहीं रह गई थी। समाज में फैले आडंबर पर कबीर ने कड़ी चोट की। उन्होंने दोनों समुदायों की गलत मान्यताओं पर प्रहार किया।

11.3.2 समाज के प्रति कबीर की दृष्टि

समाज के प्रति कबीर की दृष्टि विशुद्ध मानवतावादी है। वे ऐसे सामाजिक व्यवहार और धार्मिक मान्यताओं–मूल्यों की स्थापना पर जोर देते हैं जो सभी को स्वीकार्य हों। उनकी मान्यताओं–मूल्यों में बाह्य आचारों, कर्म–कांडों और झूठे बन्धनों का कोई महत्त्व नहीं है। तत्कालीन ब्राह्मणवादी व्यवस्था ने समाज के नियमों को लगातार कड़ा किया। इन नियमों के कारण बहुत से लोगों को धर्म से निकाल दिया गया। नियम इतने कड़े थे कि निकाले गए व्यक्ति की वापसी की संभावनाएँ न के बराबर थीं। धर्म और समाज व्यवस्था को बेहतर बनाने के नाम पर जो वातावरण तैयार किया गया था, कबीर को उससे सख्त नफरत थी –

केसौं कहा बिगाड़िया, जे मूड़ै सौ बार।
मन कौं काहे न मूड़िए, जामै विषै विकार।।

कबीर ने समाज को अपनी कसौटी पर परखा। वे किसी परम्परागत ढर्रे पर चलने के समर्थक नहीं थे। उन्होंने समाज की तत्कालीन व्यवस्थाओं के खिलाफ बोलने का साहस किया। आज की परिस्थितियों में कबीर के साहस का अनुमान लगाना भी कठिन है। कबीर ने राजसत्ता और समाज के ठेकेदारों के खिलाफ समान रूप से आवाज उठाई। कबीर ने धर्म और सामाजिक जीवन में क्रांति का अमर संदेश फूँक दिया। इस क्रांति के फलस्वरूप निराश्रित पड़ी जनता ने एक बार फिर सहारा पाकर स्वतंत्र वातावरण में श्वास लेने का प्रयास किया। पाखंड के पैरों तले कुचली जाती भोली–भाली जनता ने कबीर को सुधारक के रूप में स्वीकार करके अपना पथ प्रदर्शक माना।

ऐसा मानना ठीक नहीं होगा कि उस समय समाज जागरूक लोगों से पूरी तरह निर्मूल हो गया था। जागरूक लोग मौजूद थे। उन्हें केवल सहारे की जरूरत थी। सहारा और दिशा देने की भूमिका कबीरदास ने निभाई।

कबीर की क्रिया की प्रतिक्रिया होनी स्वाभाविक थी। उनके विचारों ने समाज में तहलका मचा दिया। कबीर निराशा भरे माहौल में उभर कर सामने आए, लेकिन वे जीवन और परिस्थितियों के प्रति कहीं भी निराश नहीं हैं। वे कठिन परिस्थितियों का भी दृढ़ता से सामना करते हैं और भक्तों को भी सामना करने की प्रेरणा देते हैं। कबीर समाज से टकराने वाले सच्चे वीर हैं।

भगति दुहेली राम की, नहिं कायर का काम।
सीस उतारै हाथि करि, सो लेसी हरि नाम।।

कबीर सबल भी हैं और अक्खड़ भी। वे सत्य के पक्ष में मजबूती से खडे हैं। अच्छाई को सामने लाने के लिए क्या कीमत चुकानी पड़ेगी, वे इसकी परवाह नहीं करते। कबीर किसी खेमे से बंधकर बात नहीं करते। वे मानवता के पक्ष में आवाज उठाते हैं। वे सुधारने के लिए चिकनी–चुपड़ी बात नहीं करते, खरी–खरी सुनाते हैं। उन्हे पंडितों को झूठा कहने में भी डर नहीं लगता और न ही मुल्लाओं की असलियत को उजागर करने में –

बकरी पाती खात हैं, तिनकी काढ़ी खाल।
जे नर बकरी खात हैं, तिनके कौन हवाल।।

कबीर ने समाज और व्यक्ति को अलग करके नहीं देखा। वे व्यक्ति को सुधारना चाहते हैं और समाज को भी, क्योंकि एक के सुधरने से अच्छे परिणाम प्राप्त नहीं हो सकते। विचारों की दृष्टि से कबीर को सच्चा समाजवादी कहा जा सकता है। वे व्यक्ति से समाज तक पहुँचते हैं। कबीर को यह स्वीकार्य नहीं कि व्यक्ति के स्वार्थ के लिए समाज के हित को कुर्बान कर दिया जाए। कबीर जिस विद्रोहात्मक प्रवृत्ति को स्वर देते हैं, कोई अकेला व्यक्ति उसका वाहक नहीं हो सकता, उसके लिए सामूहिक प्रयासों की जरूरत है। यह दृष्टि कबीर के काव्य के सामाजिक पक्ष के नए पहलू को उद्‌घाटित करती है। कबीर के समय में समाज से समूह–भावना या समाजवादी भावना का लोप हो चुका था। तत्कालीन कर्म–व्यवस्था ने व्यक्ति को कर्म और साहस से हटाकर भाग्यवादी बना दिया था। हर व्यक्ति को यह लग रहा था कि वह केवल अपना स्वार्थ पूरा कर ले। स्वार्थवादी और भाग्यवादी प्रवृत्ति का सबसे अधिक लाभ उन लोगों ने उठाया जो खुद को धर्म और समाज का रक्षक बता रहे थे।

राजतंत्र और सामंतवादी व्यवस्था में जनता के लिए कोई स्थान नहीं था। कबीर का प्रहार बहुफलकीय है। वे सड़ चुकी व्यवस्थाओं को नष्ट करने को आतुर हैं। उनके लिए 'ढाई आखर' ही सब कुछ है। जिसने व्यक्ति से, समाज से 'प्यार' करना सीख लिया, वही सच्चे अर्थो में पंडित है–

पोथी पढ़ि–पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोइ।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होई।।

कबीर तर्क, अनुभूति और बुद्धि की बात करते हैं। उनके सपने का समाज किसी वायवीय आधार पर खड़ा हुआ नहीं है। वह भौतिक रूप से मौजूद है। संसार को असत्य मानने के बावजूद वे संसार से भागने का उपदेश नहीं देते। क्योंकि वे इस बात को गहराई से समझते हैं कि जिसे संसार में रहकर नहीं पाया जा सकता, उसकी प्राप्ति संसार से भागकर भी संभव नहीं है। कबीर का दर्शन, उनकी सोच किसी जाति, धर्म, संप्रदाय और समूह विशेष तक सीमित नहीं है। वे समग्र मानवता की बात करते हैं। वे समाज का कई स्तरों पर उत्थान चाहते हैं। ये स्तर हैं – धार्मिक, नैतिक, सत्ता गत आदि।

कबीर के लिए बुद्धि की कसौटी सबसे महत्वपूर्ण है। इसीलिए जब वे तर्क देते हैं तो आडम्बरों के महल तत्काल धराशायी हो जाते हैं। वे किसी वेद–पुराण या कुरान का आधार नहीं मानते। सुनी–सुनाई बातों पर उनका विश्वास नहीं है। वे कहीं तर्कों से समझाते हैं और कहीं बुद्धि से। कबीर किसी चीज के अंध–समर्थक नहीं हैं। इसलिए उनके कुछ पदों में परस्पर विरोधी स्वर भी आ गए हैं। लेकिन उनका यह स्वर समाज–दृष्टि के विकास का परिचायक है। कबीर के तमाम पदों में आत्मविश्वास, दृढ़ता, स्पष्टदृष्टि, प्रेरणा, नव–संस्कार और समाज के प्रति अपने दायित्व की समझ दृष्टिगोचर होती है। कबीर के विचार जीवन के संघर्ष और परिस्थितियों से निर्मित हुए हैं। इसलिए उनमें उथलापन और बनावटीपन नहीं है।

कबीर आचरण पर जोर देते हैं। गोरखनाथ की तरह उनका स्पष्ट मत है कि कथनी और करनी में अंतर नहीं होना चाहिए –

'कथणीं कथी तौ क्या भया जो करणी ना ठहराइ।
काल बूत के कोट ज्यूं, देषत ही ढहि जाइ।।

11.3.3 कबीर की दृष्टि में नारी और आमजन

मध्यकाल में नारी की स्थिति केवल भोग्या तक सीमित हो गई थी। स्त्री केवल मनोरंजन का साधन थी। मुसलमान आक्रमणकारियों और सामंतों ने स्त्री के सम्मान को चकनाचूर कर दिया था। कबीर की दृष्टि स्त्री के प्रति भिन्न है। वे परस्त्री को भोगने की बात तो क्या उस पर कुदृष्टि डाले जाने का भी विरोध करते हैं –

'पर नारी राता फिरै, चोरी बिढ़ता खाँहिं।
दिवस चरि सरसा रहै, अंति समूला जांहि।।

सामाजिक रूप से संगठित होने का उपदेश भी कबीर कई बार देते हैं। कबीर ने समाज के सामने धर्म के वास्तविक रूप को उद्घाटित करने का कोई मौका हाथ से नहीं जाने दिया। उन्होंने नव–धर्म का जो प्रकाश फैलाया उससे भी समाज को नई दिशा मिली।

कबीर ने समाज के निचले तबके के कष्टों को भी निकटता से देखा था। समाज के लिए जो भी नियम या विधियाँ प्रचलन में थीं, उनकी सबसे ज्यादा मार इसी तबके पर पड़ रही थी। कबीर के लिए 'आम आदमी' सब कुछ था। 'आम–आदमी' ही उनकी समाज दृष्टि के केन्द्र में है। यह वही आम आदमी था जिसकी मंदिरों तक पहुंच नहीं थी, जिसे समाज में सबसे निचले स्थान पर रखा गया था और पंडित–मुल्लाओं के ईश्वर से भी उसकी निकटता नहीं थी। इसमें कतई संदेह नहीं कि कबीर ने भारतीय जनमानस पर महान उपकार किया। उन्होंने जनता को सहज धर्म और जीवन का उपदेश दिया। धर्म के नाम पर इस्लामवादियों ने जो आतंक फैलाया था, कबीर ने समाज को उसका सामना करने की हिम्मत दी। हिंदू धर्म में जिन छोटी जातियों को तिरस्कार की भावना से देखा जा रहा था, कबीर उनके लिए भी बड़ा सहारा साबित हुए। "कबीर ने भारतीय जनता में भेदभाव विहीन सहज–धर्म और सामाजिक नियमों का जो ढांचा खड़ा किया उससे जनता को बल मिला। जनता के नैतिक जीवन में सुधार की प्रवृत्ति जागृत हो उठी और सभी में अपने जीवन, अपने समाज और अपने धर्म के प्रति स्वतंत्र रूप से विचार करने की प्रवृति ने जन्म लिया।"[2]

11.3.4 कबीर का सामाजिक–दर्शन

कबीर को ऐसे विचारक के रूप में भी स्वीकार किया गया है जिन्होंने समाज–व्यवस्था के प्रति एक स्पष्ट दर्शन प्रस्तुत किया। उनके इस दर्शन में 'आदर्श मानव' के विकास की पर्याप्त संभावनाएँ मौजूद हैं। उन्होंने अपने दर्शन में विश्व की तमाम अच्छाइयों को स्वीकार किया। यह भी कहा जा सकता है कि कबीर के आविर्भाव से पहले धर्म को वर्ग विशेष की बपौती बना दिया गया था। कबीर ने तमाम बंधनों और शृंखलाओं को तोड़ डाला। उन्होंने बहुत निकट से महसूस किया कि पोथियों के धर्म से मनुष्य का स्वाभाविक विकास अवरुद्ध हो रहा है। कबीर ने तत्कालीन समाज में चल रहे संघर्ष को नई दिशा दी। इससे मानव–धर्म का रास्ता स्पष्ट हुआ। कबीर के लिए मानव–धर्म ही सर्वोच्च है। कबीर के मानवतावादी होने का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उन्होंने समाज के दबे–कुचले और गिरे हुए लोगों को अपने साथ बिठाया और उन्हें बराबरी पर लाकर खड़ा कर दिया। कबीर सच्चे अर्थों में जनता के उस वर्ग के समर्थक थे जिन्हें दलित कहकर पुकारा जा रहा था।

कबीर आत्मवादी हैं, लेकिन वे देह के अस्तित्व से इनकार नहीं करते। वे देह और आत्मा के बीच समन्वय की बात करते हैं। यदि कबीर समाज को छोड़ने की बात करते, इसे त्याज्य बताते तो फिर वे इसके सुधार के बारे में चिंतित न होते। वे जनहित में समता के पक्षधर हैं। आत्मवादी होने के साथ वे समाजवादी भी हैं और नए विचारों को हमेशा सहजता से स्वीकार करते हैं।

कुछ विद्वानों ने कबीर के साहित्य में साम्यवाद को ढूँढने का प्रयास किया है, लेकिन सैद्धांतिक दृष्टि से कबीर साम्यवादी नहीं हैं। साम्यवाद केवल सांसारिक दृष्टि से जीवन को सुखी बनाने की बात करता है। जबकि कबीर आत्मा की उन्नति और ईश्वर के मिलन की बात पर भी जोर देते हैं। वे समाज को व्यापक दृष्टि से देखते हैं। भौतिक सुख और साधन उनका मकसद नहीं है। वे समाज के लिए भी ऐसा सपना देखते हैं जहाँ शांति और प्रेम हो।

11.3.5 कबीर की वैश्विक दृष्टि

कबीर की सामाजिक दृष्टि वैश्विक है। इसमें किसी भेदभाव के बिना सभी को समान स्थान प्राप्त है। वे विषमताओं को समाप्त करना चाहते हैं। उनका जोर इस बात पर है कि विषमताओं की समाप्ति के लिए व्यक्ति श्रम को महत्त्व दे। उन लोगों पर भी कबीर की निगाह है जो समाज की कमजोरियों या मतभेदों से फायदा उठाने का प्रयास कर रहे हैं। कबीर सत्य के अन्वेषी हैं। उनका पूरा जीवन सत्य के प्रयोगों से भरा हुआ है। उनके पास सत्य–असत्य को जांचने की विलक्षण शक्ति है। कबीर का कार्य इस रूप में भी महान् है क्योंकि वे सत्य के पक्ष में खड़ा होने की हिम्मत दिखाते हैं। उन्होंने समाज के हित में जटिल और गूढ़ विषयों को भी सहज और सरल रूप में प्रस्तुत किया। कबीर ने विचार और व्यवहार, दोनों स्तरों पर समाज को दिशा देने का सार्थक और सफल प्रयास किया।

कबीर की कविता कला की कसौटी पर भले ही कहीं कमजोर दिख जाए, लेकिन जन–पक्षधरता के मामले में उनका कोई सानी नहीं है। वे सुकुमारता के पक्षधर नहीं हैं। उनकी सोच और रुचि खरी–खरी बात कहने की है। उनके सामने सबसे बडाध उद्देश्य व्यक्ति और समाज को राह पर लाना है। इस कार्य में कविता साधन की तरह है, न कि साध्य की तरह।

कबीर की कविता में शिक्षा और सदुपदेश सहजता से प्रकट होता है। लेकिन कई बार यह गहरी चोट भी करता है। कबीर की कविता अंतर्मुखी है, लेकिन उसका क्षेत्र संकीर्ण नहीं है। कबीर अपने काव्य में समाज के तमाम पहलुओं को उठाते हैं। ''उन्हें अर्थहीन आचार पसंद नहीं थे, चाहे वे बड़े से बड़े आचार्य या पैगम्बर के ही प्रवर्तित हों या उच्च से उच्च समझी जाने वाली धर्म पुस्तक से उपदिष्ट हों। बाह्माचार की निरर्थक पूजा और संस्कारों की विचारहीन गुलामी कबीर को पसंद नहीं थी। वे इससे मुक्त मनुष्यता को ही प्रेमभक्ति का पात्र मानते थे। धर्मगत विशेषताओं के प्रति सहनशीलता और संभ्रम का भाव भी उनके पदों में नहीं मिलता। परंतु वे मनुष्य मात्र को समान मर्यादा का अधिकारी मानते थे। जातिगत, कुलगत, आचारगत श्रेष्ठता का उनकी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं था। सम्प्रदाय–प्रतिष्ठा के भी वे विरोधी जान पड़ते हैं। परन्तु फिर भी विरोधभास यह है कि उन्हें हजारों की संख्या में लोग सम्प्रदाय–विशेष के प्रवर्तक मानने में ही गौरव का अनुभव करते हैं।''[3]

11.3.6 कबीर का समन्वयवाद

कबीर ने हिंदुओं–मुसलमानों के बीच समन्वय के जो बिंदु जोड़े हैं, वे उनकी महान् देन हैं। वे राम और रहीम के बीच उच्च स्तर की एकता स्थापित करते हैं। शायद यही कारण है कि दोनों सम्प्रदायों में उनके अनुयायियों की काफी बड़ी संख्या है। कबीर दोनों सम्प्रदायों में एकता की स्थापना के लिए उच्च स्तर के प्रयास करते हैं। लेकिन इसके पीछे उनका मकसद किसी नए सम्प्रदाय की सृष्टि करना नहीं है। वे दोनों धर्मों की उन श्रेष्ठताओं की खिल्ली उड़ाते हैं जो महज बाह्माचार है।

कबीर के समाज–दर्शन में यह बात भी महत्वपूर्ण है कि उनकी एकांतिक–साधना और लोक–कल्याण की प्रवृत्ति में कोई सैद्धांतिक विरोध नहीं है। समाज की जिन परंपराओं का वे खंडनात्मक विरोध करते हैं, उसके पीछे लोक–कल्याण का भाव ही प्रबल है। वे श्रेष्ठता के दंभ पर भी प्रहार करते हैं।

कबीर ने समकालीन–समाज विकृतियों एवं सुधार आदि के विषय में जो कुछ कहा है वह बहुत व्यवस्थित नहीं है, बल्कि उनके काव्य में इधर–उधर फैला हुआ है। उन्होंने सामाजिक विकृतियों के सम्बंध में दो प्रकार की दृष्टि अपनाई है। एक, केवल विकृतियों का खंडन किया है और दूसरे विकृतियों के खंडन के साथ उनका हल या परिष्कृत रूप भी प्रस्तुत किया है।

कबीर ने अपने रूपकों और प्रतीकों के माध्यम से सामाजिक तथा व्यावसायिक दोनों उद्देश्यों को साधा है। इसलिए उनके काव्य के सामाजिक पक्ष पर विचार करते वक्त आध्यात्मिक सीमाओं को भी स्वीकार करना पड़ेगा। कबीर के बारे में विद्वानों ने अलग प्रकार की राय व्यक्त की है। अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध ने कबीर रचनावली के 'अनुबन्ध' में उन्हें समाज का निंदक तक कह डाला। जबकि कुछ ने उनके काव्य में साम्यवाद, समाजवाद, गांधी–दर्शन, सर्वोदय–सिद्धांत आदि को ढूंढ़ा। इन सभी विश्लेषकों– शोधार्थियों ने एक बात को समान रूप से स्वीकार किया, वह यह कि कबीर समाज के हालात को लेकर चिंतित थे और वे व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति के साथ समाज का भला भी चाहते थे। कबीर से पूर्व के संतों और रचनाकारों ने संन्यास–आश्रम को बेहद महत्वपूर्ण माना है, लेकिन कबीर घर–बार छोड़कर ईश्वर की खोज में भटकने के हिमायती नहीं हैं –

'हिरदा भीतरि हरि बसै, तू ताही सौं ल्यो लाइ।

कबीर कहते हैं कि जो संसार में भोग रहे हैं, यदि वही सब कुछ संन्यास में भोगना है, तो फिर संसार क्या बुरा है। वे गृहस्थ जीवन का विरोध नहीं करते, लेकिन गृहस्थ जीवन का अर्थ संसार में लिप्त हो जाना नहीं है। कबीर विवाह को बाधा नहीं मानते और न ही संतति पैदा करने को गलत मानते हैं –

'कबीर धनि ते सुंदरी जिनि जाया बैसनों पूत।
राम सुमरि निरभै हुआ सब जग गया अपूत।।

कबीर पारिवारिक सम्बन्धों को दुःख का कारण भी मानते हैं। लेकिन इसके पीछे वे परिवार को छोड़ने का उपदेश नहीं देते। बल्कि उनकी दृष्टि मानवात्मा की संपूर्ण मुक्ति की है। कबीर के काव्य में गृहस्थ के कार्यों, अतिथि सत्कार, दान–दक्षिणा, श्रम का विभाजन, सामाजिक–पारिवारिक सम्बन्ध, सामाजिक नियन्त्रण, नारी का स्थान व नारी के प्रति दृष्टि, संस्कार, शिक्षा, कुरीतियां और अंध–विश्वास आदि का वर्णन मिलता है।

11.4 सारांश

वास्तव में कबीर ऐसे समाज के निर्माण का स्वप्न देखते हैं जो बराबरी पर आधारित हो, वैषम्य से रहित हो, उसमें बाह्य आचारों की प्रधानता न हो। शोषण से मुक्त हो और समाज के कल्याण के साथ व्यक्ति के कल्याण के प्रति भी जागरूक हो।

11.5 स्व–मूल्यांकन

- बहुविकल्पीय प्रश्न
- रिक्त स्थान
- सही और गलत

प्रिय विद्यार्थियों!

इस अध्याय में आपने कबीर की सामाजिक चेतना के अंतर्गत कबीर का तत्कालीन समाज, समाज के प्रति कबीर की दृष्टि, कबीर की दृष्टि में नारी और आमजन, कबीर का सामाजिक दर्शन, कबीर की वैश्विक दृष्टि, कबीर का समन्वयवाद का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित बहु विकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिह्न द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

प्र) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिएः–

1) कबीरदास को वाणी का डिक्टेटर किसने कहा है?

क) हजारी प्रसाद द्विवेदी ख) रामचंद्र शुक्ल ग) रामकुमार वर्मा घ) नामवर सिंह

2) कबीरदास के कौन–से रूप उनके साथ चलते हैं?

क) संत ख) गुरु ग) नेता घ) उपर्युक्त सभी

3) कबीदास अधिकतर किसकी बात करते हैं?

क) तर्क ख) अनुभूति ग) बुद्धि घ) उपर्युक्त सभी

4) कबीरदास के लिए किसकी कसौटी सबसे महत्वपूर्ण है?

क) बुद्धि ख) तर्क ग) ज्ञान घ) माया

प्र2) रिक्त स्थान भरोः–

क) संत कबीर आत्मकल्याण और ––––––––––––––होने के बारे में सोचते हैं।

ख) समाज के प्रति कबीर की दृष्टि विषुद्ध –––––––––––––है।

ग) कबीरदास सबल भी है और ––––––––––––––– भी।

घ) कबीरदास का संसार ––––––––––––––––––––– से जुड़ा है।

ङ) सामाजिक रूप से संगठित होने का उपदेश ––––––––––––––––––– देते हैं।

प्र3) सही / गलतः–

क) कबीर ने समाज के निचले तबके के कष्टों को भी निकटता से देखा था। ( )

ख) मध्यकाल में नारी की स्थिति केवल भोग्या तक ही सीमित थी। ( )

ग) कबीर की सामाजिक दृष्टि वैश्विक नहीं है। ( )

घ) कबीर ने समन्वयवाद की बात की है। ( )

11.6 कठिन शब्द

प्रिय विद्यार्थियो!

अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर देने से पहले निम्नलिखित कठिन शब्दों के अर्थ शब्दकोश से ढूंढे और अपने शब्द भंडार को विकसित करें।

	शब्द	अर्थ		शब्द	अर्थ
1.	विश्लेषक	——————	11.	वैषम्य	——————
2.	व्यवस्थित	——————	12.	शोषण	——————
3.	निरर्थक	——————	13.	भौतिक सुख	——————
4.	अंतर्मुखी	——————	14.	अन्वेषी	——————
5.	आविर्भाव	——————	15.	धराशायी	——————
6.	संप्रदाय	——————	16.	परमुखापेक्षिता	——————
7.	उद्‌घाटित	——————	17.	जटिल	——————
8.	अवनति	——————	18.	तत्कालीन	——————
9.	दुर्बोध्य	——————	19.	समन्वय	——————
10.	यथार्थ	——————	20.	जागरूकता	——————

11.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कबीर–काव्य के सामाजिक पक्ष का विवेचन कीजिए।

2. कबीर को समाज–सुधारक कहना कहाँ तक उचित है? स्पष्ट कीजिए।

3. 'कबीर सच्चे अर्थों में समाज सुधारक थे।' इस कथन की समीक्षा कीजिए।

11.8 उत्तर कुंजी

• बहु विकल्पीय प्रश्न

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी 2. उपर्युक्त सभी 3. उपर्युक्त सभी 4. बुद्धि

• रिक्त स्थान

1. ईश्वर के एकाकार 2. मानवतावादी 3. अक्खड़ 4. यथार्थ 5. कबीरदास

• सही या गलत

1. सही 2. सही 3. गलत 4. सही

11.9 पठनीय पुस्तकें

1. भक्ति साहित्य के आधार स्तम्भ, यज्ञदत्त – दिल्ली साहित्य प्रकाशन, 2004।
2. भक्ति साहित्य के आधार स्तम्भ, यज्ञदत्त – दिल्ली साहित्य प्रकाशन, 2004।
3. कबीर, हजारी प्रसाद द्विवेदी – राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2004।
4. कबीर की विचारधारा – गोविन्द त्रिगुणायत – साहित्य निकेतन, 1971।
5. कबीर मीमांसा – डॉ. रामचन्द्र तिवारी – लोकभारती प्रकाशन, 1976।
6. कबीर साहित्य की परख – परशुराम चतुर्वेदी – भारती भंडार, इलाहाबाद, 1954।
7. कबीर – हजारी प्रसाद द्विवेदी – राजकमल प्रकाशन, 2004।

कबीर का काव्य शिल्प

रूपरेखा

12.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

12.2 प्रस्तावना

12.3 कबीर का काव्य शिल्प

12.3.1 भाषा

12.3.2 प्रतीक

12.3.3 उलटबासियाँ

12.3.4 शैली

12.3.5 अलंकार

12.3.6 छंद विधान

12.4 सारांश

12.5 स्व–मूल्यांकन

- बहु विकल्पीय प्रश्न
- रिक्त स्थान
- सही या गलत

12.6 कठिन शब्द

12.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.8 उत्तर कुंजी

12.9 पठनीय पुस्तकें

12.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रिय विद्यार्थियो! इस अध्याय का उद्देश्य हैः–

– कबीर के भाषा शिल्प की जानकारी देना।

– इस अध्याय से यह जानकारी देना कि कबीर समाज सुधारक के साथ–साथ मुंहफट और खरी–खरी कहने वाले कवि थे।

– इससे भी अवगत करवाना कि कबीर के काव्य में सहज प्रवाह और नैसर्गिक अभिव्यंजना हुई है।

– कबीर के अनुभव लोक से जुड़े हैं, इससे परिचित करवाना।

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरान्त कबीर के भाषा शिल्प की जानकारी तो होगी ही साथ ही कबीर समाज सुधारक के साथ–साथ मुंहफट और खरी–खरी कहने वाले कवि थे इससे परिचित होंगें। इससे भी अवगत होंगे कि कबीर के काव्य में सहज प्रवाह और नैसर्गिक अभिव्यंजना हुई है।

12.2 प्रस्तावना

कबीर मुँहफट और खरी–खरी कहने वाले कवि हैं। उनको इस बात की चिंता नहीं है कि समाज क्या कहेगा? उनकी चिंता समाज को सीधे रास्ते पर लाने की है। जब वे अपने भावों को प्रस्तुत करते हैं तो उनका उद्देश्य काव्य की प्रस्तुति करना नहीं, वरन सदुपदेश करना होता है। यदि सदुपदेश की यह प्रक्रिया अच्छे काव्य में प्रस्तुत हुई है तो यह कबीर की अतिरिक्त योग्यता का प्रमाण है।

12.3 कबीर का काव्य शिल्प

यदि काव्य का तात्पर्य अलंकार, ध्वनि, वक्रोक्ति, रस अथवा अन्य काव्यशास्त्रीय आधार पर रचना करना है तो निश्चित ही कबीर का स्थान बहुत ऊँचा नहीं है। लेकिन यदि विचारों/भावों की सरस और सहज अभिव्यक्ति को काव्य माना जाए तो कबीर श्रेष्ठ कवियों की श्रेणी में आते हैं।

कबीर ने भाषा, प्रतीक, अलंकार, रूपक शैली, उलटबासी, छंद और बिम्ब के स्तर पर सुंदर और प्रभावी प्रयोग किए हैं। उनके काव्य में विचारों/भावों की पुनरावृत्ति है, लेकिन केवल इसी आधार पर उनके काव्य को सामान्य श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। कबीर के काव्य में विचारों का सहज प्रवाह और नैसर्गिक अभिव्यंजना है। वे श्रोता या पाठक को रससिक्त करने की योग्यता रखते हैं। यही उनके शिल्प–विधान की सबसे प्रमुख विशेषता है। कबीर का सारा प्रयास परम सत्य की खोज का है। इसलिए चाहे भाषा के प्रयोग की बात हो अथवा शैली की, या गुणों, शब्द–शक्तियों, अलंकारों, बिम्बों–प्रतीकों के प्रयोग की, कबीर अपने मूल उद्देश्य से अलग नहीं होते। कबीर का 'अनगढ़' शिल्प–विधान उन्हें जनमानस का कवि बनाता है। वे क्रांतिकारिता के प्रतीक बन जाते हैं। उपर्युक्त सदंर्भों को दृष्टि में रखते हुए कबीर काव्य के प्रमुख पक्षों पर विचार करने पर अनेक नई बातें सामने आती हैं। उन्हें इन रूपों में देखा जा सकता है –

12.3.1 भाषा –

भाषा कबीर के भावों के आगे–आगे दौड़ती है। उनका काव्य भाषा के लिए नहीं है वरन् भाषा उनके काव्य की सहचरी है। उनकी भाषा को अटपटी, सधुक्कड़ी और पंचमेल खिचड़ी तक कहा गया। लेकिन यथार्थ यह है कि उनकी भाषा आम आदमी पर केंद्रित है। आम आदमी की समझ में आने वाली भाषा है। इसमें दो राय नहीं कि कबीर की भाषा सुगढ़ और साहित्यिक नहीं है तथा भक्त कवियों जैसी रसपूर्णता भी उसमें नहीं है।

उलटबासियों आदि में तो उनकी भाषा कर्कश भी हो गई है। लेकिन सच्चाई यह है कि अलंकारहीनता और कर्कशता भी कबीर की भाषा का गुण बन गया है। वे जैसी खरी और सीधी बात कहते हैं उसे कलात्मक, व्याकरण आधारित, रसपूर्ण और कोमलकांत पदावली में कहा जाना संभव नही है। कबीर की भाषा के बाह्य पक्ष को समझ लेना आसान है लेकिन इसके आंतरिक पक्ष तक पहुँच पाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। "कठिनाई कबीर की भाषा के अंतर पक्ष को समझने में है। वे भाषा में संवेदना का इतना गहरा ताना–बाना बुनते हैं कि सब उसी में समा जाता है। इनकी भाषा संस्कृत नहीं है। विचारों में उपनिषद के पास रहकर भी भाषा में उपनिषद भाषा का गठन नहीं है। पुराणों जैसा विस्तार भी नहीं है।"[1]

कबीर के अनुभव लोक से जुड़े हुए हैं। उनका भाषा संस्कार भी लोक–जीवन का ही है। कबीर पढ़े–लिखे नहीं हैं। इसलिए वे भाषा को उसी रूप में आगे बढ़ाते हैं जिस रूप में उसे ग्रहण किया है। उनकी भाषा लोक रूप में प्रवाहमान भी हो जाती है। कबीर कवि होने से पहले समाज सुधारक हैं। यदि उनका कवि पक्ष अधिक प्रभावी होता तो निश्चित ही उनकी भाषा भी साहित्यिक हो जाती। लेकिन समाज–सुधारक कबीर लोगों और समाज को दिशा देने के कार्य को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। इसलिए वे समाज से मिली सहज भाषा में भाव–अभिव्यक्त करते चलते हैं। कबीर ने वही कहा जो अनुभव किया। उनके लिए समाज का मंगल कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। कबीर का जोर कथनी और करनी की समानता पर है। यह समानता उनकी भाषा में भी दृष्टिगोचर होती है।

कबीर का प्रत्येक शब्द भावपूर्ण और सारगर्भित है। उनके काव्य में कोई भी शब्द निरर्थक नहीं है। सामान्य दिखने वाले शब्द भी विशिष्ट और असामान्य अर्थ के द्योतक हैं। कबीर के सामने भाषा के चमत्कार–प्रदर्शन का सवाल नहीं था। यह भी संभव है कि वे भाषा के व्याकरणिक और साहित्यिक रूप से परिचित न हों। उनके काव्य में जिन काव्यांगों की प्रस्तुति हुई है वह सहज रूप में हुई है।

कबीर पर संध्या–भाषा के प्रयोग का आरोप भी लगा। लेकिन उन्होंने किसी ऐसे शब्द का प्रयोग नहीं किया जो समाज से बाहर का हो या उसकी समाज में स्वीकार्यता न हो। उनकी भाषा में जहाँ दुरूहता और प्रतीकात्मता आयी है, वह पारिभाषिक और आध्यात्मिक शब्दों के कारण आयी है। कबीर 'मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ' कहकर पहले ही अपनी स्थिति स्पष्ट कर देते हैं। यह श्रेय कबीर को ही जाता है कि उन्होंने भाषा को 'बहता नीर' बनाया। उसको गति दी। लोक जीवन के शब्दों को स्वीकार करके उनको प्रतिष्ठा दी। उन्होंने संस्कृत या संस्कृतनिष्ठता के एकाधिकार को तोड़ा। उनकी भाषा भविष्य की भाषा थी और यह बात आगे चलकर सही साबित हुई। आज 'हिन्दुस्तानी' का जो स्वरूप है, उसका प्रारम्भिक रूप कबीर की भाषा में मिलता है। लोक से जुड़े होने के कारण कबीर के पास शब्द–भण्डार की कमी नहीं है। वे कई स्थानों पर भाषा को बेहद पैनेपन के साथ इस्तेमाल करते हैं। इससे स्वतः ही यह स्पष्ट है कि कबीर को शब्दों की गंभीरता और उनकी मारक क्षमता का भली प्रकार ज्ञान था। ''भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वह वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा, उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा दिया है, बन गया है तो सीधे–सीधे नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार सी नज़र आती है उसमें मानों ऐसी हिम्मत नहीं कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइश को पूरा नहीं कर सके और अकथ कहानी का रूप देकर मनोग्राही बना देने की जैसी ताकत कबीर की भाषा में है, वैसी बहुत कम लेखकों में पायी जाती है।"[2]

कबीर का काव्य भाषायी विविधता का जीवंत प्रतीक है। उसमें देशी–विदेशी कई भाषाओं के शब्द मिलते हैं। जब वे भक्तों को समझाते हैं तो उनकी भाषा सहज हो जाती है। लेकिन जब वे मुल्ला, पंडे–पुजारियों को फटकारते हैं तो उसमें अक्खड़ता और उग्रता के दर्शन होने लगते हैं। बहुक्षेत्रीय शब्दावली उनकी भाषा की सुंदरता को बढ़ाती है।

अर्थ की दृष्टि से कबीर की भाषा बहुत गंभीर है। उसमें कहीं किसी प्रकार की आरोपित खींचतान दिखाई नहीं देती। कबीर के भीतर बैठा संत इस बात को अच्छी प्रकार से जानता है कि किस प्रकार के भाव के लिये कैसी शब्दावली की जरूरत है। कबीर ने समुद्र, मछली, जागरण, कुंडलिनी, पेड़, सियार, सिंह, कमल, आंधी, कुंभ, चंद्र, सूर्य, गगन, पृथ्वी, सेवक, गुलाम, आत्मा, वस्तु आदि को नए अर्थों और संदर्भो के साथ ग्रहण किया है। उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति को अधिक प्रभावी बनाने के लिए तीनों शब्द शक्तियों– अभिधा, लक्षणा और व्यंजना का इस्तेमाल किया है।

कबीर की भाषा संवाद की भाषा है। उसमें संवादात्मकता बड़े गुण के क्रम में मौजूद है। यह कहना भी समीचीन होगा कि कबीर की भाषा को सही संदर्भों में समझने के लिए उनके दार्शनिक और आध्यात्मिक विचारों को जानना बहुत जरूरी है। इसके बिना उनकी उलटबासियों को समझना असम्भव ही होगा। कबीर ने अपनी सुविधा के लिए शब्दों को खूब तोड़ा–मरोड़ा। इससे बाद की भाषा में शब्दों के परिवर्तित रूप भी प्रचलित हो गए।

12.3.2 प्रतीक –

भक्त, ईश्वर के साथ साक्षात्कार में असीम आनंद का अनुभव करता है। कबीर जैसा भक्त इन अनुभूतियों को काव्य–रूप में प्रस्तुत तो करता है। लेकिन अक्सर ऐसा होता है जब आलौकिक अनुभूतियों की लौकिक प्रस्तुति नहीं हो पाती। यह गूंगे के गुड़ जैसी स्थिति है। इस आलौकिक अनुभूति की प्रस्तुति के लिए प्रतीकों का आश्रय लेना पड़ता है। प्रतीकों के माध्यम से अमूर्त को मूर्त रूप दिया जाता है। प्रतीक की सर्वाधिक सार्थकता भी इसी बात में है कि वह शब्दातीत अनुभूति को बड़ी हद तक प्रस्तुत करने में समर्थ होता है। "प्रतीक का आधार सादृश्य या साधर्म्य नहीं, बल्कि भावना जाग्रत करने की निहित शक्ति है। .... किसी वस्तु के मेल में उपमान खड़ा करने का उद्देश्य यही होता है कि उस वस्तु के सौंदर्य आदि की जो भावना है, उसे उत्कर्ष प्राप्त हो। अतः सच्ची परख वाले कवि अप्रस्तुत या उपमान के रूप में जो वस्तुएं लेते हैं, उनमें प्रतीकत्व होता है।"[3]

अप्रस्तुत की प्रस्तुति के अलावा, कबीर ऐसी चीजों के लिए भी प्रतीकों का प्रयोग करते हैं, जिन्हें वे प्रथम दृष्टया उद्घाटित करने के पक्ष में नहीं होते। कबीर की उलटबासियाँ इसी बात की द्योतक हैं। कबीर ने भावनाओं को मूर्त रूप देने के अलावा भक्तों की कौतूहल वृत्ति को जागृत करने के लिए भी प्रतीकों का सहारा लिया है। कबीर के काव्य में प्रधानतः दो प्रकार के प्रतीक मिलते हैं–

1. साम्य मूलक
2. विरोध मूलक

विद्वानों ने कबीर की रहस्य–अनुभूतियों की प्रतीकों द्वारा प्रस्तुति को तीन रूपों में देखा है –

1. चेतन–अचेतन की समरसता के प्रतीक। जैसे 'जल में कुंभ, कुंभ में जल'।
2. जीवन की सामान्य वस्तुओं के माध्यम से अनंत की कल्पना। कबीर के सहस्रदल कमल, गंग–जमुन तथा चंद्र–सूर्य इसी प्रकार के प्रतीक हैं।
3. मानवीय सम्बन्धों के रूप में परमतत्त्व की कल्पना करना। जैसे पिता–पुत्र, स्वामी–सेवक तथा पति–पत्नी आदि सम्बन्धों की कल्पना।

कबीर ने असीम, अनंत, अरूप, अगोचर और परमतत्त्व आदि अनेक प्रतीकात्मक शब्द ईश्वर के लिए प्रयुक्त किए हैं। कबीर ने लौकिक जीवन से अनेक प्रतीक लिए हैं। उन्होंने निम्नलिखित साहित्य से भी प्रतीकों को ग्रहण किया है –

1. साम्य मूलक साहित्य
2. सूफी साहित्य
3. नाथ–सिद्ध योगियों का साहित्य

4. बौद्ध पंथ साहित्य

5. लौकिक जीवन सम्बन्धी साहित्य

कबीर ने ईश्वर के लिए राम, पिव, गोबिंद, कंत, भरतार, साथी, सांई, सांईया, सागर, हरि, पति, साहिब रमइया, खुदा, गुसांई, रहीम, कुम्हार, जगदीश आदि प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग किया है। प्रतीकों के प्रयोग की दृष्टि से कबीर का दृष्टिकोण व्यापक और सारग्राही है। जीव, माया, जगत आदि के सम्बन्धों को दिखाने के लिए भी उन्होंने विविध प्रतीकों का प्रयोग किया है।

कबीर ने उलटबासियों में माया के लिए गंग, बिलाई व बुढ़िया आदि का प्रयोग भी किया है।

कबीर ने मानवीय सम्बन्धों में परमतत्व की कल्पना की सुंदर प्रस्तुति की है। कबीर ने 'दुलहनी गावहु मंगलचार, हम घरि आये हो राजा राम भरतार' में लौकिक विवाह को आलौकिक संदर्भ में प्रस्तुत किया है। कबीर ने कुछ स्थानों पर योगसाधनात्मक पारिभाषिक प्रतीकों तथा संख्यावाची प्रतीकों का भी प्रयोग किया है।

कबीर की उलटबासियों में विरोधमूलक प्रतीक–योजना कई स्थानों पर दृष्टिगोचर होती है –

"एक सुहागिनि जगत पियारी, सकल जीव जंत की नारी।
खसम मरै व नारि न रोवै, उस रखवाला औरे होवै।।

कबीर ने व्यापार, व्यवसाय, गृहकार्यों एवं प्राकृतिक गतिविधियों को भी प्रतीक बनाया है।

12.3.3 उलटबासियाँ –

उलटबासियों को भाव–प्रकाशन की विशिष्ट शैली माना जाता है। यह शैली संत साहित्य में प्रचलित थी। कबीर ने इसका खूब प्रयोग किया। उलटबासी के भाव या अर्थ को महज शाब्दिक आधार पर ग्रहण नहीं किया जा सकता। उलटबासियों में प्रायः वस्तु या प्रकृति के धर्म को उलटकर प्रस्तुत किया गया है। ऐसे में सीधे–सपाट ढंग से इसके अर्थ को समझना असंभव है।

जब कबीर 'नाव बिच नदिया डूबी जाय' या 'बरसे कंबल, भीजे पानी' कहते हैं तो सामान्य संदर्भों में यह बात कुछ उलट दिखाई पड़ती है। ऐसी उक्तियों को ही उलटबासियों की श्रेणी में रखा गया है। कबीर के समय में सीधे ढंग से ईश्वर के बारे में जो बातें कही गईं, संभवतः वे लोगों को ज्यादा रुचिकर नहीं लगीं। इसलिए ईश्वरीय सत्य को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया कि उसे पाने या ढूँढने में लोगों को शारीरिक के साथ मानसिक प्रयास भी करना पड़े। हाँलांकि पारिभाषिक और प्रतीकात्मक शब्दों की भरमार के कारण उलटबासियों को समझना दुरूह भी साबित हुआ। लेकिन यह भी सत्य है कि एक बार प्रतीकों का अर्थ समझ लेने पर उलटबासियों के गूढ़ अर्थ को समझने में कठिनाई नहीं होती। कबीर ने अपनी उलटबासियों में सांसारिक प्रपंच, सहजानुभूति, ज्ञान–विरह, आत्म तत्त्वान्वेषण, माया, काल, सृष्टि तथा मन आदि विषयों का गूढ़ विवेचन किया है और गृह, वन, शरीर, प्राकृतिक कार्य–व्यापार एवं व्यावसायिक प्रतीकों को माध्यम बनाया है।''[4]

उलटबासी में एक अविश्वसनीय कल्पना संसार की रचना होती है। पहली दृष्टि में तो यही लगता है कि कबीरदास अतार्किक और अनावश्यक बात कह रहे हैं। लेकिन ज्यों–ज्यों गहरे पैठते हैं तो उसका अर्थ समझ में आने लगता है।

क्या कोई ऐसा पुत्र भी हो सकता है जो अपने बाप से पहले उत्पन्न हुआ हो – 'पहले जन्म पूत का भयउ, बाप जनमिया पाछै' – इस बात पर जब गंभीरता से विचार करते हैं तो पाते हैं कि 'पुत्रत्व कोई प्रारंभिक या अंतिम स्थिति

नहीं है। वह बीच की स्थिति है। वह ऐसी कड़ी है जो पुत्र होने के साथ पिता को पैदा करने की क्षमता रखती है।

कबीर की उलटबासियों को समझने के लिए गंभीर अध्ययन की जरूरत है। सामान्य ढंग से समझने पर उलटबासी से अर्थ का अनर्थ हो जाएगा। कबीर जब गो–मांस भक्षण और वारुणी पीने की बात करते हैं तो इसका अर्थ जिह्वा को ब्रह्मरंध्र की ओर ले जाकर अमृत का पान करने से है। सहजयानियों की ऐसी उलटबासियों को संध्या भाषा भी कहा जाता था। संध्या भाषा के सम्बन्ध में विद्वानों ने अनेक अनुमान लगाए हैं। हठयोग प्रदीपिका, शिव संहिता और घेरंड संहिता आदि ग्रंथों के उपमानों द्वारा इन उलटबासियों के अर्थ समझने में सुविधा हो सकती है।

उलटबासियों में जिन प्रतीकों का प्रयोग किया गया है, उनके अर्थ हमेशा समान रहें ऐसा नहीं है, जैसे मन के लिए कहीं सियार, कहीं मीन, कहीं मतंग और कहीं निरंजन का प्रयोग किया गया है। ऐसी कई उलटबासियाँ हैं, विद्वानों ने जिनके अर्थ अलग–अलग प्रस्तुत किए हैं। जैसे –

"संतो, जागत नींद न कीजै।
काल न खाय, कल्प नहिं व्यापै, देह जरा नहिं छीजै।
उलटि गंग समुद्रहिं सोखै, ससि और सूर गरासै।
नवग्रह भारि रोगिया बैठे, जल में बिम्ब प्रकासै।।
बिना पियाला अमृत अचवै, नदी नीर भरि राखै।
कहै कबीर सो जुग–जुग जीवे, राम सुधा रस चाखै।"

उलटबासियों में जिन चमत्कारपूर्ण उक्तियों का प्रयोग किया गया है, उनसे सभी पर अर्थ का उत्कर्ष नहीं हो पाया है वरन् अर्थ बोझिल और अस्पष्ट हो गया है। प्रतीकों, रूपकों आदि की दृष्टि से कबीर की उलटबासियों का निर्विवाद रूप से हिंदी भक्ति साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

12.3.4 शैली –

संस्कृत में शैली के लिए 'रीति' और अंग्रेजी में 'स्टाइल' शब्द का प्रयोग किया गया है। हिंदी में जिस अर्थ और संदर्भ के साथ शैली का प्रयोग किया जा रहा है, वह स्टाइल के अधिक निकट है। निर्वैयक्तिता को काव्य की महत्वपूर्ण विशेषता माना जाता है, लेकिन निर्वैयक्तिकता का घटित होना प्रायः असंभव होता है। किसी भी कृति की भाषा, उसकी शैली पर कवि के व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है। अपनी बात को कहने या किसी विषय को प्रस्तुत करने के लिए साहित्यकार को उपयुक्त शब्दों का चुनाव करना होता है और उन्हें एक योजना के तहत प्रस्तुत करना होता है।

कबीर ने अन्य संत कवियों की तरह ही मुक्तक रचना–शैली को अपनाया है। यह शैली उनकी अनुभूतियों की अभिव्यंजना के लिए प्रत्येक दृष्टि से उपयुक्त साबित हुई है। भक्त कवियों ने प्रायः अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए किसी अवतार या दैवीय पात्र को माध्यम बनाया है, इससे उनके काव्य की सीमाएँ भी तय हो जाती हैं। जबकि मुक्तक रचना शैली में भावों की सीमा बंधनों से मुक्ति के साथ प्रस्तुत हुई है।

कबीर ने अपनी अभिव्यक्ति को भाषा की अनुचरी नहीं बनने दिया। उनकी सबसे बड़ी शैलीगत विशेषता यह है कि उनका प्रत्येक पद अपने आप में पूर्ण है।

प्रायः सभी स्थानों पर कबीर की भाषा सरल और सुबोध है लेकिन वह प्रभावोत्पादक भी है। जहाँ कबीर गूढ़ार्थ की अभिव्यंजना करना चाहते हैं वहाँ उन्होंने रूपकों और प्रतीकों का सहारा लिया है। उन्होंने तत्कालीन समाज में

प्रचलित दूसरी भाषाओं के शब्दों, मुहावरों आदि को स्वीकार करने में भी संकोच नहीं किया। इससे उनकी शैली और भी निखर कर सामने आयी है।

कबीर की शैली में सौंदर्य बोध, कल्पना और भावुकता का सामंजस्य दिखाई पड़ता है। कबीर ने मुक्तक शैली के विविध रूपों का सहजता से प्रयोग किया है। डॉ० रामकुमार वर्मा के अनुसार कबीर ने अपने काव्य में दोहा–शैली, पद–शैली, दोहा–चौपाई (रमैणी), बावन आखरी, सप्तवार, तिथि और ऋतुवर्णन आदि वर्णनात्मक शैलियों का प्रयोग किया है।

कबीर ने भाव के साथ शैली का निकट सम्बन्ध बनाए रखा है। भावों की प्रस्तुति के आधार पर अभिव्यंजना शैली के भी कई प्रकार हो सकते हैं। डॉ सरनाम सिंह शर्मा ने अपनी पुस्तक 'कबीरः व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धांत' में कबीर की कई शैलियों का वर्णन किया है। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं – सामान्य निरूपण शैली, साक्ष्य प्रस्तुतीकरण शैली, प्रसंग शैली, कथा शैली, वर्णन शैली, निषेध शैली, प्रशंसात्मक शैली, उपालंभ शैली, प्रतीक शैली, अलंकार शैली, संवादात्मक शैली, आत्मप्रकाशन शैली, प्रबोधन शैली, विवश्ता (दैन्य) प्रकाशन शैली आदि।

शैली के चार गुण माने जाते हैं – ओजस्विता, सजीवता, प्रौढ़ता और प्रभावशीलता। कबीर के काव्य में इन चारों गुणों की प्रस्तुति मिलती है। कबीर 'शैली' के प्रति चिंतित या अतिरिक्त रूप से जागरूक दृष्टिगोचर नहीं होते। उन्होंने अपनी वाणियों में अनायास ही व्यंजना का सुंदर रूप प्रस्तुत किया है। इसलिए कबीर शैली की दृष्टि से भी संत–कवियों में विशिष्ट हो जाते हैं।

12.3.5 अलंकार –

भाषा को मधुर, भावों को प्रभावी और अभिव्यक्ति को स्पष्ट करने के लिए अलंकारों का प्रयोग किया जाता है। अलंकार का यही धर्म माना गया है कि वह काव्य को उत्कृष्टता प्रदान करे। संस्कृत के आचार्यों ने अलंकारों की अनिवार्यता पर जोर दिया है। अलंकारहीन काव्य को निम्न श्रेणी का काव्य माना गया है।

कबीर का जोर सहज भावाभिव्यक्ति पर रहा है। कबीर को उस संदर्भ में कवि नहीं माना जा सकता जैसे कि जायसी या बिहारी। कबीर कवि होने से पहले भक्त हैं। वे कलात्मक अभिव्यंजना के लिए काव्य रचना नहीं करते, बल्कि अपनी अनुभूतियों को सहज और प्रभावी ढंग से लोगों तक पहुंचाना चाहते हैं। ''उनकी अभिव्यंजना में जो सौन्दर्य, आकर्षण और वैचित्र्य विद्यमान है, सहज एवं भाव–सहजात है। उनकी भाषा उनके हृदय का स्वाभाविक उद्‌गार मात्र है। इसीलिए उनके साहित्य में प्राप्त होने वाले अलंकार भी स्वाभाविक रूप में ही प्रयुक्त हुए हैं। वाणी–विलास के प्रदर्शन हेतु नहीं।''5

कबीर के लिए अलंकार कभी अनिवार्य नहीं रहे, न ही वे वाणी के बनाव – श्रृंगार की जरूरत महसूस करते हैं। यदि कहीं अलंकार की प्रस्तुति हुई है तो वह सहज रूप में ही हुई है। कबीर की यह सहज प्रस्तुति भी काफी व्यापक है। कबीर के काव्य में मुख्य रूप से अनुप्रास, यमक, पुनरूक्ति वीप्सा, पुनरूक्तवदाभास, श्लेष, कारक–दीपक, देहली–दीपक, परिकर, परिकरांकुर, भेदकातिशयोक्ति, कारणमाला और एकावली इत्यादि अलंकार प्रयुक्त हुए हैं। इन अलंकारों के प्रयोग से भाषा की चारुता, संप्रेषणीयता और प्रभावोत्पादकता में अतिशय वृद्धि हुई है।

कबीर के काव्य में शब्द, अर्थ एवं उभय तीनों प्रकार के अलंकार मिलते हैं। इनमें से कुछ के उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

अनुप्रास –

कबीर खाई कोट की, पाणी पिवै न कोइ।
जाइ मिलै जब गंग मैं, तब सब गंगोदिक होइ।।

वीप्सा –

भलै नींदौ भलै नींदौ भलै नींदौ लोग
तन मन राम पियारे जोग।

यमक –

सहज सहज सब कोई कहै, सहज न चीन्हे कोइ।
जिन्ह सहजै विषया तजी, सहज कहीजैं सोइ।।

पुनरुक्ति –

धन धन झीखत धन गयौ, सो धन मिल्यौं न आये रे।

उपमा –

कबीर राम रिझाइ लै, मुखि अमृत गुण गाइ।
फूटा नग ज्यूं जोड़ि मन, संधे संधि मिलाइ।।

रूपक –

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि भुवै पडंत।
कहै कबीर गुरु ग्यान थै, एक आध उबरंत।।

दृष्टांत –

मूरिष संग न कीजिए, लोहा जलि न तिराइ।
कदली सीप भुवंग मुष, एक बूँदु तिंहु भाइ।।

उत्प्रेक्षा –

साषत बांमण मति मिलै, बैसनों मिलै चंडाल।
अंक माल दे भेंटिये, मानो मिले गोपाल।।

अतिशयोक्ति –

'आंखडियाँ झाई पड़ीं, पंथ निहारि निहारि।
जीभड़ियाँ छाला पड्या, राम पुकारि पुकारि।।

मानवीकरण –

'कबीर माया मोहनी, मांगी मिलै न हाथि।
मनह उतारी झूठि करि, तब लागी डोलै साथि।'

अन्योक्ति –

'रैणा दूर बिछोहिया, रहु रे संषम झूरि।
देवलि देवलि धाहड़ी, देसी उगे सूरि।।'

कबीर के काव्य में लगभग पचास प्रकार के अलंकारों का प्रयोग मिलता है। इनमें ऐसे अलंकार ज़्यादा हैं जिन्हें सामान्य जन सहजता से ग्रहण कर सकता है।

12.3.6 छंद विधान –

कबीर की वाणी सहज स्फूर्त है। उनके काव्य में कहीं यह दृष्टिगोचर नहीं होता कि वे काव्य शास्त्रीय मान्यताओं के अनुरूप काव्य रचने की कोशिश में लगे हैं। इस कोशिश के न होने के बावजूद उनके काव्य में लयात्कता और नादात्मकता मौजूद है। चूंकि उनके प्रायः सभी पद गेय श्रेणी में हैं, इसलिए उनकी रचना में छंदविधान का पालन भी हुआ है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि कलात्मकता की दृष्टि से छंदों का विशिष्ट महत्त्व है। छंदोबद्ध काव्य–रचना की परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही है। वैदिक ग्रंथों में गायत्री, त्रिष्टुप, जगती आदि तथा लौकिक संस्कृत में मंदाक्रांता, शार्दूल विक्रीड़ित, शिखरिणी आदि छंदों का विधान हुआ है। हिंदी में दोहा, चौपाई, सवैया, बरवै, इंद्रवज्रा, छप्पय, हरिगीतिका, सोरठा, रोला, कुंडलियां आदि अनेक छंदों का प्रयोग मिलता है।

कबीर ने अपने काव्य में ज्यादातर प्रचलित छंदों का ही प्रयोग किया है। कबीर के समय में दोहा, चौपाई, सार आदि छंद प्रचलन में थे। इसलिए कबीर के काव्य में ये बहुतायत में मिलते हैं। साखियों में दोहा, सोरठा का कबीर ने खूब प्रयोग किया है। इसका कारण यह रहा कि इस छंद में बड़ी से बड़ी बात को प्रभावी ढंग से कहा जा सकता है। कबीर ने रमैनियों में चौपाई छंद का प्रयोग किया है। कबीर के 'सबद' अधिकतर राग–रागनियों और पदों के रूप में हैं। इनके अतिरिक्त कबीर के काव्य में चौतीसी, विप्रबतीसी, कहरा, हिंडोला, बसंत, चांचर, बेलि, बिरहुली आदि छंदों का भी प्रयोग हुआ है। कबीर को लोकछंद भी प्रिय हैं। उन्होंने लोक–छंदों में राग–रागनियों का प्रयोग भी किया है पर कबीर का छंद विधान किसी चमत्कार प्रदर्शन के लिए नहीं है बल्कि उन्होंने छंदों को सहज रूप में स्वीकार किया है।

12.4 सारांश

इस तरह कबीर का काव्य शिल्प–विधान की कसौटी पर पूरी तरह खरा उतरता है।

12.5 स्व–मूल्यांकन

प्रिय विद्यार्थियों !

इस अध्याय में आपने कबीर की काव्य भाषा के अंतर्गत कबीर के काव्य शिल्प,प्रतीकों, उलटबासियाँ, शैली अलंकार, छंद विधान का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिह्न द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

प्र) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए:–

1) कबीर की भाषा को क्या–क्या नाम दिए गए हैं?

क) अटपटी ख) सधुक्कड़ी ग) पंचमेल खिचड़ी घ) उपर्युक्त सभी

2) कबीर के काव्य में कितने प्रकार के अलंकार मिलते हैं?

क) दो ख) तीन ग) चार घ) पाँच

3) कबीर के काव्य में प्रयुक्त अलंकारों के नाम हैं–

क) अनुप्रास ख) यमक ग) श्लेष घ) उपर्युक्त सभी

4) संस्कृत में शैली के लिए किस शब्द का प्रयोग किया गया है?

क) रीति ख) स्टाइल ग) प्रथा घ) प्रणाली

5) शैली के कितने गुण माने जाते हैं?

क) तीन ख) दो ग) चार घ) पाँच

प्र2) रिक्त स्थान भरो:–

क) कबीर ने भाव के साथ ———————— का निकट सम्बन्ध बनाए रखा है।

ख) कबीर के समय में दोहा —————————— छंद प्रचलन में थे।

ग) कबीर शैली में सौंदर्य बोध, कल्पना और ————————— का सामंजस्य दिखाई पड़ता है।

घ) कबीर ने रमैनियों में ————————— छंद का प्रयोग किया है।

प्र3) सही / गलत:–

क) शैली के चार गुणों में ओजस्विता, सजीवता प्रौढ़ता और प्रभावशीलता है। ( )

ख) कबीरदास की भाषा संवाद की भाषा है। ( )

ग) कबीरदास के काव्य में प्रधानतः तीन प्रकार के प्रतीक मिलते हैं। ( )

घ) कबीर ने रमैनियों में चौपाई छंद का प्रयोग किया है। ( )

12.6 कठिन शब्द

प्रिय विद्यार्थियो!

अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर देने से पहले निम्नलिखित कठिन शब्दों के अर्थ शब्दकोश से ढूंढे और अपने शब्द भंडार को विकसित करें।

(1) विशिष्ट —————————

(2) अभिव्यंजना ————————

(3) अनिवार्य—————————————————

(4) भावाभिव्यक्ति———————————————

(5) ओजस्विता———————————————

(6) सजीवता—————————————————

(7) प्रौढ़ता——————————————————

(8) निर्वैयक्तिकता————————————

(9) दुरूहता———————————————

(10) नैसर्गिक———————————————

12.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कबीर की काव्य—कला का विवेचन कीजिए।

2. कबीर काव्य के शिल्प विधान की समीक्षा कीजिए।

3. कबीर काव्य की कलापक्षीय विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

12.8 उत्तर कुंजी

• बहु विकल्पीय प्रश्न

1. उपर्युक्त सभी 2. तीन 3. उपर्युक्त सभी 4. रीति 5. चार

• रिक्त स्थान

1. शैली 2. चौपाई 3. भावुकता 4. चौपाई

• सही या गलत

1. सही 2. सही 3. गलत 4. सही

12.9 पठनीय पुस्तकें

1. कबीर समग्र, डॉ. युगेश्वर – विजय प्रकाश, बैरी 2001।
2. कबीर, हजारी प्रसाद द्विवेदी – राजकमल प्रकाशन, 2004।
3. चिन्तामणि (भाग – दो) रामचन्द्र शुक्ल – सरस्वती मंदिर, वाराणसी।
4. मध्यकालीन हिन्दी संतः विचार और साधना, डॉ. केशनी प्रसाद चौरसिया – हिन्दुस्तान एकेडेमी, इलाहाबाद, 1965।
5. कबीर की भाषा – डॉ. महेन्द्र कुमार – राजकमल प्रकाशन।
6. कबीर – हजारी प्रसाद द्विवेदी – राजकमल प्रकाशन, 2004।
7. कबीर साहित्य की परख – परशुराम चतुर्वेदी – भारती भण्डार, इलाहाबाद, 1954।
8. कबीर मीमांसा – डॉ. रामचन्द्र तिवारी – लोकभारती प्रकाशन, 2007।
9. कबीरः एक नयी दृष्टि – डॉ. रघुवंश – लोकभारती प्रकाशन, 2009।

पद्मावत अन्योक्ति और समासोक्ति

रूपरेखा

13.1. उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

13.2. प्रस्तावना

13.3 पद्मावत अन्योक्ति और समासोक्ति

13.3.1 प्रथम विषय वस्तु

13.3.2 द्वितीय विषय–वस्तु भाग

10.3.3 तृतीय विषय–वस्तु भाग

13.4 सारांश

13.5 स्व–मूल्यांकन

- बहु विकल्पीय प्रश्न
- रिक्त स्थान
- सही या गलत

13.6 कठिन शब्द

13.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.8 उत्तर कुंजी

13.9 पठनीय पुस्तकें

13.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रिय विद्यार्थियो! इस अध्याय का उद्देश्य है आपको पदमावत् के प्रति विद्वानों के विचारों से छात्रों को परिचित कराना। विद्वानों के विचारों के बीच से छात्र को अपना मत बनाने की प्रेरणा देना भी अध्याय का उद्देश्य है। छात्रों की उत्सुकता बढ़ा कर विचार बनाने की ओर उन्हें प्रेरित करना भी इस अध्याय का उद्देश्य है।

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरान्त इस आलेख से पद्मावत अन्योक्ति और समासोक्ति के काव्यशास्त्रीय स्वरूप को समझेंगे।

13.2 प्रस्तावना

काव्यशास्त्रियों ने अलंकार शास्त्र के अंतर्गत दो प्रकार के अलंकारों 'अन्योक्ति' और 'समासोक्ति' का वर्णन किया है। कवि अपनी बात कहने के लिए इन दोनो 'प्रकार के अलंकारों का सहारा लेता है। जब कवि कहना कुछ और चाहता है परन्तु कहता कुछ हट कर या अन्य कुछ है तो उस अन्य उक्ति को अन्योक्ति कहा जाता है। इस अलंकार में कवि की निहित भावना की व्याख्या की आवश्यकता बनी रहती है। परन्तु जब कवि जो प्रत्यक्ष कह रहा है वही कहना उसका उद्देश्य है तो उस अलंकार को समासोक्ति कहा जाता है, समासोक्ति में कवि के कहने का उद्देश्य और

कथ्य प्रत्यक्ष और स्पष्ट रहता है उसे साधारण पाठक/श्रोता आसानी से समझ लेता है और कथन के रसास्वादन में कुछ भी आड़े नहीं आता। ये दोनों 'अन्योक्ति' और 'समासोक्ति' अलंकारों के रूप में काव्य का सौंदर्य बढ़ाते हैं। इस भाग में इन दोनों अलंकारों का परिचय दिया जाएगा।

13.3 पद्‌मावत अन्योक्ति और समासोक्ति

13.3.1 प्रथम विषय वस्तु – अध्याय के इस भाग में 'अन्योक्ति' और 'समासोक्ति' के काव्यशास्त्रीय स्वरूप को उद्‌घाटित किया जाएगा। काव्य शास्त्र में अलंकारों के रूप में भी और कवि की अभिव्यक्ति शैली के रूप में भी ये दोनों अलंकार महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे हैं। रहस्यवादी कवियों ने जब ईश्वरीय सत्ता को प्रकृति में देखा अनुभूत किया तो वैसी ही अनुभूति अपने पाठको, श्रोताओं तक पहुंचाने की चेष्टा करते हुए प्रकृति पर ईश्वर के प्रति अपनी भावना और ईश्वर पर प्रकृति को आरोपित किया। दोनों (प्रकृति के ईश्वर) के परस्पर क्रिया–व्यापार की कल्पना करते हुए रूपकों का निर्माण किया। अन्योक्ति और समासोक्ति उनकी रूपकीकरण की वृत्ति के ही रूप हैं, इसे यहां समझाने की चेष्टा की जाएगी। इस अध्ययन को निम्नलिखित दो उपविभागों में रखा जाएगा।

अन्योक्तिः– यहां अन्योक्ति अलंकार और इसके मूल रूप को समझा जाएगा। अन्योक्ति एक साम्य मूलक अलंकार है, जिसमें अप्रस्तुत के वर्णन द्वारा प्रस्तुत का बोध कराया जाता है, इसे अप्रस्तुत प्रशंसा भी कहते हैं। अन्योक्ति अथवा अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार में सामान्यतः अप्रस्तुत विषय का वर्णन किया जाता है, किन्तु उसके द्वारा किसी प्रस्तुत अर्थ की व्यंजना की जाती है। इससे अन्योक्ति में अप्रस्तुत अर्थ द्वारा जिस प्रस्तुत अर्थ की व्यंजना कराई जाती है वही अर्थ प्रमुख हुआ करता है।

समासोक्तिः– यहां समासोक्ति अलंकार और इसके मूल रूप को समझेंगे।

समासोक्ति में विशेषणों की समानता के कारण यहां प्रस्तुत के वर्णन द्वारा अप्रस्तुत का बोध कराया जाता है, वहां समासोक्ति अलंकार होता है। इस प्रकार समासोक्ति में प्रस्तुत अर्थ के साथ–साथ एक अप्रस्तुत अर्थ भी अनुस्यूत रहता है यहां मुख्य प्रस्तुत अर्थ ही होता है। समासोक्ति में प्रस्तुत के कथन में अप्रस्तुत का ज्ञान पाया जाए, उसका वर्णन किया जाए या जिसमें प्रस्तुत का भी वर्णन निकलता हो, वहाँ समासोक्ति अलंकार होता है, जिसकी पहचान कहीं वाचक से और कहीं श्लेष से हुआ करती है। समासोक्ति में प्रस्तुत अथवा वर्णित विषय ही प्रधान रहता है, उसके द्वारा अप्रस्तुत की व्यंजना भी हुआ करती है। अन्योक्ति और समासोक्ति में मूल अन्तर यह है कि जहां अन्योक्ति में अप्रस्तुत प्रधान होता है, वहां समासोक्ति में प्रस्तुत प्रधान होता है।

अन्योक्ति और समासोक्ति के अतिरिक्त रूपक के बारे में भी काव्य शास्त्रियों ने चर्चा की है। रूपक–कथा, काव्य में कथा द्वयर्थक होती है, कथा का प्रस्तुत पक्ष किसी सैद्धातिक अभिव्यक्ति का साधन मात्र होता है, इस सांकेतिक कथा का प्रस्तुत कथा में आद्योपांत अभेद आरोप रहता है। इसमें प्रस्तुत कथा के पात्र पूर्णतया निर्जीव एवं अमूर्त भावनाओं के प्रतीक होते हैं और समस्त वर्णन एवं घटनाएं सांकेतिक अभिव्यक्ति ध्योतक की होती हैं। इसका कथानक पूर्णतया कल्पित होता है और महाकाव्य के लिए अपेक्षित ठोस तथा यथार्थ कथानक सर्वथा भिन्न होता है। ऐसा काव्य महाकाव्य न होकर भी महाकाव्य की विशेषताओं को लेकर लिखा जाता है।

13.3.2 द्वितीय विषय–वस्तु भाग – इस भाग में पद्‌मावत को 'अन्योक्ति'' कहने वाले विद्वानों के विचारों को समझाया जाएगा और उन आधारभूत तत्वों/कथनों की व्याख्या की जाएगी जिनके आधार पर 'पद्‌मावत'' को अन्योक्ति कहा जाता है। यहां विभिन्न पात्रों के प्रतीकार्थ को स्पष्ट किया जाएगा और कुछ ऐसे पराम्परागत प्रतीकों को समझाया जाएगा जो पद्‌मावत को अन्योक्ति मानने की प्रेरणा देते हैं। इस संदर्भ में कहा जा सकता है कि कुछ शब्दों के भावार्थ

और प्रतीकार्थ की सम्प्रदाय विशेष द्वारा की जा रही प्रयुक्ति भी महत्वपूर्ण रहती है जैसे कबीर जी की उलटबासियों में शब्द का अर्थ वही नहीं जो प्रत्यक्ष और सामान्य समाज द्वारा स्वीकृत है, बल्कि संतों ने शब्द को अपनी विचार परम्परा के बीच से उठा कर काव्य में प्रयुक्त करके उसे सम्प्रदाय विशेष के अर्थ विशेष के रूप में प्रयुक्त किया है। सूफी या प्रेम मार्गी कवियों ने भी इस वृत्ति को अपना कर अन्योक्ति का विकास किया जिसका परिचय दिया जाएगा। यहां दोनों ही शब्दों अन्योक्ति और समासोक्ति को पद्मावत के संदर्भ में समझा जाएगा।

पद्मावत की कथा के समग्र वर्णन को अप्रस्तुत अथवा उपमान के रूप में स्वीकार करते हुए डॉ. भगीरथ मिश्र, डॉ. रामदहिन मिश्र, डॉ. हरदेव और डॉ. बड़थ्वाल ने पद्मावत को रुपकातिशयोक्ति अथवा अन्योक्ति स्वीकार किया है। जबकि इसके विपरीत पं. चन्द्रबली पांडेय, आचार्य राम चन्द्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और डॉ. नगेन्द्र पद्मावत को समासोक्ति स्वीकार करते हैं। इन दोनों प्रकार के मतों के अतिरिक्त डॉ. शम्भुनाथ सिंह पद्मावत को प्रतीक पद्धति में रचित एलीगरी स्वीकार करते हैं।

वास्तव में जायसी ने सादृश्य मूलक अंलकारों उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा के अतिरिक्त स्वाभावोक्ति, अन्योक्ति और रूपकातिश्योक्ति अलंकारों का मनोरम प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अप्रस्तुत को प्रतीकों द्वारा प्रस्तुत किया है, प्रतीक अभीष्ट भावों की अभिव्यक्ति का सबल समर्थ साधन हैं। जहां गूढ़ एवं सूक्ष्म भावानाओं या अनुभूतियों का प्रकटीकरण सामान्य भाषा और परम्परागत अलंकारों की सामर्थ्य से परे होता है, वहां समर्थ कवि प्रतीक पद्धति का आश्रय लेता है क्योंकि प्रतीक स्वेच्छा से परे परम्परा से प्रयुक्त होने वाले संकेत हैं, जो अप्रस्तुत का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह अध्ययन निम्नलिखित दो भागों में विभक्त होगा –

अन्योक्ति के मूलभूत तत्व के संदर्भ में पद्मावत

कुछ सांप्रदायिक प्रतीक होते हैं, जो अधिकतर रूढ़ होते हैं और धार्मिक कर्मकाण्डों आदि में स्वीकृत हो जाने के कारण इनके स्वरूप को एक निश्चिततत्ता प्राप्त हो जाती है परन्तु उनमें व्यंजनात्मकता का अभाव रहता है जिससे वे काव्य में विशेष प्रभावोत्पादक नहीं बन पाते। जिस प्रकार कबीर की उलटबासियों में ऐसे साम्प्रदायिक प्रतीक आए हैं। जायसी भी कबीर की तरह ही रहस्यवादी हैं, रहस्यवादी की अनुभूति का स्वरूप और उसका साध्य (ईश्वर) भाषा में अकथनीय, अप्रेषणीय होने के कारण प्रतीकों के माध्यम से ही व्यक्त होता है। जायसी ने ऐसे साम्प्रदायिक प्रतीकों का सुंदर संयोजन किया है जैसे

"नव पौरी तेहि गढ़ मंझियारा, और तैहि फरहिं पांच कोतवारा
दुसव दुआर गुपूत एक नाक, अगम चढ़ाव बाट सुठि बाँकी"

इस अवतरण में गढ़ = शरीर, नव पौरी = नव इन्द्रियां, पांच कोतवाल = पांच प्राण, दसंव दुआर = ब्रह्म रन्ध्र आदि के प्रतीक शब्द हैं। इसी तरह पद्मावत में अन्य स्थल पर भी जायसी प्रतीकों का उपयोग करता है। चौदह भुवन = मानव पिण्ड, चितौड़=शरीर, रत्नसेन = मन, सिंघलदीप=हृदय, पद्मावती=बुद्धि, हीरामन तोता=गुरु, नागमती=दुनिया धन्धा अथवा भोग विलास, राघव चेतन=शैतान, अलाउद्दीन=माया के प्रतीक हैं।

हठयोग साधना में सूर्य और चन्द्र काफी भावपूर्ण प्रतीक हैं जायसी ने पद्मावती को चाँद और रत्नसेन को सूर्य का प्रतीक माना है। ''राजा सुआ संवाद खण्ड'' में रत्नसेन चन्द्र रूपा पद्मावती को प्राप्त करने के लिए सूर्य का रूप धारण करने का संकल्प करता है। 'गोरा बादल संवाद खण्ड' में गोरा बादल कहते हैं कि हम सूर्य रूपी महाराज रत्नसेन को चन्द्ररूपी तुम (पद्मावती) से ला मिलाएंगें। हठ योग प्रदीपिका 3,15 में सूर्य का इड़ा नाड़ी और चन्द्रमा को पिंगला नाड़ी कहा गया है। इन नाडियों को रोककर सुषुम्ना मार्ग से प्राणवायु को संचारित करना ही सूर्य चन्द्र

का सामरस्य है। कहीं पद्मावती को पारस मणि के रूप में माना है, जिसे स्पर्श करके सरोवर का जल निर्मल ही नहीं हुआ बल्कि उसने जैसा चाहा वैसा रूप प्राप्त कर लिया। इस तरह जायसी ने प्रतीक विधान द्वारा अप्रस्तुत को प्रस्तुत करने का सफल यत्न किया है, प्रतीक अलंकार होते हुए भी कहीं अन्योक्ति तो कहीं समासोक्ति शैलियों को समृद्ध और पुष्ट कर देता है।

'पद्मावत' में जायसी ने पदमावती के सौंदर्य का चित्रण परमात्मा को नारी रूप में कल्पित करके किया है, उसे अतुलनीय सौंदर्य के साथ–साथ परम प्रेममय भी चित्रित किया है। पद्मावत में कवि ने पदमावती के रूप में ईश्वर के जलवे या नूर की कल्पना की है, अतः जहां कहीं पद्मावती की सुंदरता का वर्णन किया है, उसमें आलौकिक ईश्वर अपने लोकोत्तर सौंदर्य में बिम्बित हुआ है। इन स्थलों पर प्रतीकों और अलंकारों द्वारा कवि ने प्रतीक कथा शैली अपनाई है। जैसे बिना सिंदूर चढ़े पदमावती की मांग ऐसे लगती है जैसे रात्रि में उजला पथ – बिन सिंदूर अस जानहुँ दिया। उजिअर पंथ रैनि मह किया।

पद्मावती की केश राशि ऐसी है कि जूड़े को खोलकर छितराने पर सारे संसार में अन्धकार छा जाता है। पद्मावती के सौंदर्य वर्णन में आलौकिकता का पुट होने के सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना है कि वह सृष्टि के सारे सुंदर पदार्थों में उसी का (ईश्वर का) प्रतिबिम्ब देखता है।

अप्रस्तुत अर्थ में पद्मावती परम सत्ता की प्रतीक है और जायसी का लक्ष्य पद्मावती के रूप वर्णन द्वारा उसी परम ज्योति के अपरिमित सौंदर्य का वर्णन करना है। उस परम सत्ता के अतिरिक्त उसके दृष्टिकोण में नारी सौंदर्य की कोई निश्चित मूर्ति नहीं है इसी कारण पद्मावती का कोई निश्चित आकार पाठकों के मन में नहीं जमता। जायसी के सौंदर्य वर्णन की प्रशंसा करते हुए डॉ श्री निवास शर्मा ने उचित ही कहा है कि नारी के लौकिक और आलौकिक, भौतिक और लोकोत्तर दोनों दृष्टियों से जितने मोहक, रमणीक, सजीव, मादक, जीवन्त सौंदर्य–चित्र जायसी में मिल जाते हैं उतने अन्य में नहीं।

वास्तव में जायसी ने रत्नसेन और पद्मावती की प्रेम कहानी के माध्यम से जीवात्मा द्वारा परमात्मा की उपलब्धि के मार्गों का उद्घाटन किया है। उन्होंने संसार की नश्वरता, उसकी सृष्टि, उसकी क्षणभंगुरता, आत्मा परमात्मा का सम्बन्ध आदि उन तथ्यों पर प्रकाश डाला है, जो विश्व के प्रायः सभी देशों के अंतर्मन को मथते रहते हैं।

पद्मावत की कथा में लौकिक प्रेम के द्वारा आध्यात्मिकता की ओर संकेत किया गया है। जायसी का उद्देश्य लौकिक प्रेम कहानी कहना नहीं है। उन्होंने रत्नसेन को साधक, पद्मावती को ईश्वर, हीरामन तोते को गुरु, नागमती को दुनिया धंधा, राघवचेतन को शैतान, अलाउदीन को माया का प्रतीक मानते हुए आध्यात्मिक कथा कही है। और आत्मा और परमात्मा के मिलन और उसमें आने वाले व्याघातों का चित्रण किया है।

जायसी का मूलोद्देश्य सूफी–साधना पद्धति के माध्यम से ईश्वर की प्राप्ति के मार्ग का उद्घाटन करना है। आलोचकों ने भी पद्मावत में आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना स्वीकार की है।

'पद्मावत' के कथा प्रसंगों का लौकिक अर्थ के साथ–साथ आलौकिक अर्थ भी है। इस तथ्य की ओर कवि ने अपनी ओर से भी संकेत कर दिया है कि इस ग्रंथ में जिस प्रेम कहानी को कह रहा हूं, उसका वास्तविक मर्म कोई सिद्ध ज्ञानी ही समझ सकता है पद्मावती के जन्म प्रसंग में ही यह आध्यात्मिक संकेत विद्यमान है कि वह ईश्वर का अवतार है अथवा उसमें ईश्वरीय तेज विद्यमान है

'सिंघलद्वीप राजपरवारीं महा सरूप दई औतारी'।

इस पंक्ति में 'औतारी' और 'महासरूप' दोनों शब्द आलौकिक ब्रह्म के अवतरण की ओर संकेत करते हैं। पद्मावती के रूप में ईश्वरीय सत्ता को समझ कर ही मानसरोवर का जल उसके चरण–स्पर्श के लिए उत्कंठित हो उठता है। तोता हीरामन भी राजा के हृदय में पदमावती रूपी ईश्वर के प्रति अगाध प्रेम–भाव उत्पन्न कर देता है। कवि ने सिंहलगढ़ के वर्णन में 'नव पंवरी बाकी' नव खण्डों में हठयोगी–साधना का वर्णन किया है और 'नवौ खण्ड नव पौरी' कह कर सूफी साधना के चारों मुकामों शरीयत, तरीकत, हकीकत, मारिफत की ओर संकेत किया है।

पद्मावती के सौन्दर्य का वर्णन सुनकर रत्नसेन का मूर्छित होना, फिर पद्मावती के सौन्दर्य की झलक पाकर मूर्छित होना और पद्मावती द्वारा उसकी मूर्च्छना को भंग करना उसकी भावाविष्टावस्था या हाल की दशा है।

रत्नसेन रूपी साधक पद्मावती रूपी परम ज्योति के सामीप्य की आनंदमयी अनुभूति कर रहा है। रत्नसेन की ये दशाएं सूफी साधना के चारों मुकाम हैं। इसके अतिरिक्त अनेक अन्य घटनाएं, संवाद हैं और शब्दावली है जिनसे आध्यात्मिक सत्ता की व्यंजना होती है। सांसरिक प्रपंचों से मुक्ति मिलने को सूफी मत में फना कहा जाता है। फना के उपरान्त बका अर्थात् ईश्वर प्रेम की स्थिति आती है। जायसी ने जोगी खण्ड में फना की स्थिति को चित्रित किया है– तजा राज, राजा जा जोगी। औ किंग्गी कर गहै वियोगी। जायसी ने ईश्वर की प्रतिरूप पद्मावती के सौंदर्य का जो वर्णन किया है, उसमें बार–बार उन्होंने ऐसे निर्देश दिए हैं, जो किसी सामान्य नारी पर चरितार्थ न होकर अध्यात्मिक सत्ता की व्यंजना करते हैं। डॉ रामकुमार वर्मा ने ठीक ही कहा है कि 'जायसी के पद्मावत में' कहीं रूपक द्वारा, कही कथा प्रसंगों के माध्यम से, कहीं घटनाओं, वर्णनों और संवादों के माध्यम से, तो कहीं प्रेम और सौंदर्य के अलौकिक वर्णन द्वारा कवि ने आध्यात्मिक व्यंजना का समावेश किया है।

समासोक्ति के मूलभूत तत्व के संदर्भ में पद्मावत।

सूफी कवियों ने अपने प्रेम कथानकों की प्रेमिका को परमात्मा का प्रतीक माना है। पद्मावत में पद्मावती को परमात्मा और रत्नसेन को आत्मा के रूप में कल्पित करके अनेक लौकिक प्रसंगों से आलौकिक पक्ष की ओर संकेत किया है। जायसी ने जगत के समस्त पदार्थों को ईश्वरीय छाया से उद्भासित कहा है। उनके काव्य में समस्त प्रकृति उस प्रियतम के समागम के लिए उत्कंठित दिखाई पड़ती है। पद्मावती के नखशिख के सौंदर्यपूर्ण वर्णन को सुनकर रत्नसेन बेसुध हो जाता है, उस अवस्था में उसे परम ज्योति के आनंद की अनुभूति होने लगती है, जिसके भंग होने पर उसे ऐसा लगता है जैसे कोई बावला, जाग्रत अवस्था को प्राप्त हो गया है।

अप्रत्यक्ष की ओर संकेत के आधार पर पद्मावत को अन्योक्ति कहा जा सकता है परन्तु यहां पद्मावती का सौंदर्य इतना स्पष्ट और प्रत्यक्ष है और रत्नसेन की विरह अनुभूति इतनी तीखी और प्रत्यक्ष है कि दोनों का प्रेम लौकिक दिखता है अतः यहां इसे समासोक्ति कहा जा सकता है। आचार्य शुक्ल ने ठीक ही कहा है कि इन्होंने कथा के बीच समासोक्ति द्वारा कई स्थलों पर परोक्ष सत्ता की ओर संकेत किए हैं।

जायसी के लिए जगत तथा प्रकृति मिथ्या नहीं है, इसके लिए प्रकृति के कण–कण में ब्रह्म व्याप्त है और प्रकृति में प्रतिबिम्बित अपने प्रियतम के मिलन को विरहातुर है। समासोक्ति के आधार पर इन्होंने प्रयत्न और मिलन के अति मनोरम चित्र उतारे हैं। वस्तु वर्णन में इन्होंने कई प्रसंगों में ऐसे विशेषणों का प्रयोग किया है जिनके प्रस्तुत अर्थ के साथ अप्रस्तुत अर्थ का बोध अनायास हो जाता है। जैसे सिंहलगढ़ के वर्णन में नौ पौरी, तथा दसवें दरवाजे वाले नगर का संकेत पाठक को अपने नौ छिद्रों और दसवें ब्रह्मरंध्र वाले शरीर का बोध करा देता है।

समासोक्ति एक अलंकार है, जिसमें समान विशेषणों के बल पर अप्रस्तुत से प्रस्तुत की व्यंजना की जाती है, इसमें अभिधेयार्थ तथा व्यंग्यार्थ दोनों को मुख्यता दी जाती है इसे विशेषण–विशेष्य– विच्छत्ति–मूलक अलंकार कहा

गया है। यह अन्योक्ति और श्लेष दोनों से भिन्न है।

अन्योक्ति में व्यंग्यार्थ को मुख्यता दी जाती है। समासोक्ति में दोनों पक्ष–अभिधेयार्थ और व्यंग्यार्थ प्रधान रहते हैं जैसे रत्नसेन को बंदी बनाकर दिल्ली भेजने के प्रसंग में, जहां दिल्ली का अप्रस्तुत अर्थ परलोक लिया जाएगा। वहां इसके प्रसंगत घटनात्मक अर्थ को छोड़ा नहीं जा सकता। श्लेष और समासोक्ति में भी अंतर है, श्लेष में कवि दो अर्थ बताने के लिए वचनबद्ध होता है, किंतु समासोक्ति में यह आवश्यक नहीं कि कवि आदि से अंत तक दोनों अर्थों का निर्वाह करता जाए, जहां उसे मौका मिले, वह विशेषणों के प्रयोग से अप्रस्तुत अर्थ की भी अभिव्यंजना कर देता है, जायसी ने 'पद्मावत' में इसी समासोक्ति पद्धति को अपनाया है – 'तन चितउर मन राउर कीन्हा' में जो लोग पद–पद पर 'पद्मावत' में रूपक–निर्वाह की बात सोचते हैं, वे गलती करते हैं।

13.3.3 तृतीय विषय–वस्तु भाग – इस भाग में 'पद्मावत' को 'अन्योक्ति और समासोक्ति' कहने वाले विद्वानों के विचारों को उजागर करके इनके आधार पर बनने वाली उनकी सहमति की व्याख्या की जाएगी और छात्रों को प्रेरित किया जाएगा कि वे अपना मत स्थापित करें और अपने मत की व्याख्या करें। ताकि उनकी विकसित हुई समझ का मूल्यांकन हो सके और जाना जा सके कि अध्याय का उद्देश्यपूर्ण हुआ कि नहीं।

पद्मावत अन्योक्ति है या समासोक्ति यदि प्रस्तुत अर्थ के साथ–साथ किसी अन्य अर्थ की भी व्यंजना की गई है और वह अर्थ गौण है तो पद्मावत समासोक्ति कहलाएगा। परन्तु यदि प्रस्तुत के साथ–साथ अप्रस्तुत अर्थ की व्यंजना अर्थात् आध्यात्मिक अर्थ की व्यंजना प्रधान सिद्ध होती तो पद्मावत की गणना अन्योक्ति परक काव्य में की जानी चाहिए। 'पद्मावत' में प्रधानता प्रस्तुत अर्थ की है या अप्रस्तुत अर्थ की, इस संदर्भ में कुछ विद्वान मानते हैं कि पद्मावत का कोई निश्चित आध्यात्मिक अर्थ नहीं है, कवि ने केवल अपनी लौकिक भावनाओं पर आध्यात्मिकता का आवरण देने के लिए कथा के अंत में एक विस्तृत अन्योक्ति का क्रम देने की चेष्टा की है। कुछ विद्वान कहते हैं कि पद्मावत विशुद्ध अन्योक्ति काव्य है, जिस की सम्पूर्ण कथा में एक व्यवस्थित प्रस्तुत अर्थ है और वर्णित कथा पूरी तरह अप्रस्तुत है।

कुछ विद्वान यह कहते हैं कि पद्मावत समासोक्ति काव्य है क्योंकि सब प्रस्तुत वर्णनों में यत्र–तत्र एक आध्यात्मिक अर्थ की व्यंजना की गई है, जो प्रस्तुत है।

कुछ विद्वान यह मानते हैं कि पद्मावत में यत्र तत्र अन्योक्ति और यत्र–तत्र समासोक्ति का निर्वाह हुआ है।

वास्तव में यहां अन्योक्ति के साथ–साथ समासोक्ति का भी सफल नियोजन हो गया है। अध्यात्म प्रिय पाठकों के लिए पद्मावत अन्योक्ति है, उनकी दृष्टि में इसका लौकिक अर्थ अप्रस्तुत कहा जाएगा तथा आध्यात्मिक अर्थ प्रस्तुत होगा परन्तु लौकिक व्यक्तियों के लिए पद्मावत एक लौकिक काव्य है तथा उसका कथापरक अर्थ ही प्रस्तुत अर्थ है। उसमें बीच–बीच में कवि ने केवल अपनी आध्यात्मिकता व्यंजित कर दी है, अंततः समासोक्ति के सहारे अप्रस्तुत अर्थ की व्यंजना कर दी है। इस दृष्टि भेद के कारण पद्मावत अन्योक्ति भी है और समासोक्ति भी है। समासोक्ति और अन्योक्ति दोनों की प्रकृति परस्पर एक दूसरे से भिन्न होती है पर एक ही काव्य में इन दोनों काव्य–शैलियों की अवस्थिति हो सकती है, यही काम जायसी ने किया है, दोनों शैलियों को अपनाकर पद्मावत को अन्योक्ति भी और समासोक्ति भी बना दिया है।

13.4 सारांश – इस भाग में 'पद्मावत' को अन्योक्ति के रूप में भी और उसे समासोक्ति के रूप में भी स्थापित करने का यत्न किया जाएगा।

अन्योक्ति के रूप मेंरू डॉ० गोविंद त्रिगुणायत के अनुसार पद्मावत में अन्योक्ति के तीन पक्षों की व्यंजना मिलती है– (1) प्रस्तुत प्रत्यक्ष पक्ष, जो पण्डितों द्वारा दिया गया अर्थ है। (2) प्रस्तुत अप्रत्यक्ष पक्ष; जो सूफी साधना से सम्बन्धित अर्थ है। (3) अप्रस्तुत पक्ष जो कथा के वास्तविक वर्णन से सम्बधित है।

पद्मावत में रूपक तत्व का निर्वाह एक स्थान पर द्विविध स्तरों पर करने के प्रयास का ही यह परिणाम निकला है कि जायसी किसी भी पक्ष का सम्यक प्रकारेण निर्वाह नहीं कर सके हैं, इनके रूपक–निर्वाह में बिखराव आ गया है। फिर भी रत्नसेन की मूर्छावस्था, भावाविष्टावस्था और सिंहलगढ़ वर्णन में रूपक तत्व का अपेक्षाकृत अच्छा निर्वाह हुआ है। अतः अध्यात्म प्रिय पाठकों के लिए पद्मावत अन्योक्तिपरक कृति है। वे लौकिक कथा पर, इस कथा द्वारा सांकेतिक आध्यात्मिक कथा का रस–चर्वण करते हैं जबकि सामान्य पाठकों के लिए पद्मावत की लौकिक कथा ही प्रधान है, अतः उनके लिए यह समासोक्ति परक कृति है।

पद्मावत समासोक्ति के रूप में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पद्मावत को समासोक्ति माना है और कहा है कि यदि कवि के स्पष्टीकरण के अनुसार व्यंग्य अर्थ को ही प्रधान या प्रस्तुत मानें, तो जहां जहां दूसरे अर्थ भी निकलते हैं, वहां वहां अन्योक्ति माननी पड़ेगी पर ऐसे स्थल अधिकतर कथा के अंग हैं और पढ़ते समय कथा के अप्रस्तुत होने की धारणा किसी पाठक को हो ही नहीं सकती। अतः इन स्थलों के वाच्यार्थ को अप्रस्तुत नहीं कह सकते। इस प्रकार वाच्यार्थ के प्रस्तुत होने से ऐसी जगह सर्वत्र समासोक्ति ही माननी चाहिए।

पद्मावत के सारे वाक्यों के दोहरे अर्थ नहीं हैं, सर्वत्र अन्य पक्ष के व्यवहार के आरोप नहीं हैं। केवल बीच–बीच में कहीं–कहीं दूसरे अर्थ की व्यंजना होती है। अतः इन स्थलों में वाच्यर्थ से अन्य अर्थ जो साधना–पक्ष में व्यंग्य रखा गया है, वह प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से अप्रस्तुत ही कहा जा सकता है।

डॉ० माता प्रसाद गुप्त के अनुसार 'जायसी का संकेत विशेष–विशेष स्थानों पर ही है, सारी कथा का घटना–पक्ष अध्यात्मवाद से नहीं मिल सका है।'

एक अन्य विद्वान के अनुसार– ''पद्मावत में जिन विशेष स्थलों पर जायसी आध्यात्मिकता की व्यंजना कर सकते हैं या जिसमें प्रस्तुत अर्थ के साथ–साथ अप्रस्तुत अर्थ का भी महत्वपूर्ण स्थान है, उनमें से कुछ स्थल ये हैं– सिंहल द्वीप वर्णन खण्ड, मानसरोदक खण्ड के वर्णन, सिंहलगढ़–वर्णन, पद्मावती का नख–शिख वर्णन, प्रेम खण्ड के वर्णन आदि। ये सारे वर्णन और प्रसंग सूफी भावात्मक प्रेम और ईश्वरीय साधना के अनुकूल हैं।''

पद्मावती के नख–शिख सौंदर्य का कवि ने समासोक्ति परक वर्णन किया है, उसमें पद्मावती के सौंदर्य के साथ–साथ परम सत्ता के सौंदर्य की भी झलक मिलती रहती है। मानसरोदक खण्ड में सरोवर द्वारा पदमावती को पारस बताते हुए उसके चरणों को स्पर्श करने की लालसा व्यक्त करना इस अर्थ की व्यंजना करता है कि वह ईश्वर का प्रतिरूप है। पद्मावती के सौंदर्य वर्णन को सुनकर राजा रत्नसेन का मूर्छित हो जाना समासोक्ति की दृष्टि से उल्लेख योग्य प्रसंग है। पद्मावती रूपी परम सत्ता के अलौकिक सौंदर्य के वर्णन सुनने से रत्नसेन उसी प्रकार मुग्ध हो जाता है जिस प्रकार भक्त परमात्मा के सौंदर्य पर मुग्ध होता है। जब किन्हीं पंक्तियों का अप्रस्तुत अर्थ ब्रह्म साक्षात्कार की अनुभूति की व्यंजना होता है तो समासोक्ति शैली ही है।

13.5 स्व–मूल्यांकन

प्रिय विद्यार्थियों !

इस अध्याय में आपने पद्मावत में अभिव्यक्त अन्योक्ति और समासोक्ति का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिह्न द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन

करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

प्र) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए:–

1) काव्यशास्त्रियों ने अलंकार शास्त्र के अंतर्गत कितने प्रकार के अलंकारों का वर्णन किया है?

(क) दो (ख) तीन (ग) चार (घ) पाँच

2) पद्मावत के रचयिता कौन हैं?

(क) कबीरदास (ख) मलिक मुहम्मद जायसी (ग) विद्यापति (घ) तुलसीदास

3) जायसी ने पद्मावत में रत्नसेन को किस रूप में प्रस्तुत किया है?

(क) साधक (ख) साध्य (ग) गुरु (घ) शैतान

4) जायसी ने पद्मावत में पद्मावती को किस रूप में प्रस्तुत किया है–

(क) गुरु (ख) माया (ग) साध्य (घ) साधक

5) मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावत में नागमती को किस रूप में प्रस्तुत किया है–

(क) साध्य (ख) साधक (ग) गुरु (घ) माया

प्र2) रिक्त स्थान भरो:–

क) 'अन्योक्ति' और 'समासोक्ति' अलंकारों के रूप में काव्य का ––––––––––––बढ़ाते हैं।

ख) जायसी ने पद्मावती को चाँद और रत्नसेन को –––––––––– का प्रतीक माना है।

ग) पद्मावत की कथा में लौकिक प्रेम के द्वारा –––––––––––– की ओर संकेत किया गया है।

घ) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल दने पद्मावत को ––––––– –––––––– माना है।

प्र3) सही/गलत:–

क) पद्मावत में अलाउद्दीन खिलजी को शैतान के रूप में प्रस्तुत किया है। ( )

ख) अन्योक्ति अलंकार को अप्रस्तुत प्रशंसा भी कहते हैं। ( )

ग) समासोक्ति अलंकार में अप्रस्तुत का ज्ञान तथा प्रस्तुत का भी वर्णन मिलता है। ( )

घ) पद्मावत में हीरामन तोता माया का प्रतीक है। ( )

ङ) सूफी कवियों ने अपने प्रेम कथानकों की प्रेमिका को परमात्मा का प्रतीक माना है। ( )

13.6 कठिन शब्द

प्रिय विद्यार्थियो!

अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर देने से पहले निम्नलिखित कठिन शब्दों के अर्थ शब्दकोश से ढूंढे और अपने शब्द भंडार को विकसित करें।

1. साक्षात्कार––––––––––––––––

2. अनुभूति–––––––––––––––––

3. व्यंजना–––––––––––––––––––––

4. अध्यात्मवाद–––––––––––––––

5. लौकिक–––––––––––––––––

6. सर्वत्र––––––––––––––––––––––

7. भावाविष्टावस्था–––––––––––––

8. प्रतिबिम्बित––––––––––––––––

9. प्रत्यक्ष–––––––––––––––––––––––

10. रहस्यवाद––––––––––––––––

13.7. अभ्यासार्थ प्रश्न –

(1) पदमावत् अन्योक्ति है कि समासोक्ति अपने विचार स्पष्ट कीजिए?

(2) पदमावत् अन्योक्ति है, क्या आप इस विचार से सहमत हैं? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

(3) पदमावत् समासोक्ति है, क्या आप इस विचार से सहमत हैं? उदाहरण सहित अपने विचार स्पष्ट कीजिए।

13.7 उत्तर कुंजी

- बहु विकल्पीय प्रश्न

1. दो	2. मालिक मुहम्मद जायसी	3. साधक	4. साध्य	5. माया

- रिक्त स्थान

1. सौंदर्य	2. सूर्य	3. आध्यात्मिकता	4. समासोक्ति

- सही या गलत

1. सही	2. सही	3. सही	4. गलत	5. सही

13.9 पठनीय पुस्तकें

– इस अध्याय के विस्तृत अध्ययन के लिए निम्नलिखित पुस्तकें पढ़ी जा सकती हैं।

1. पद्मावत– डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल – लोकभारती प्रकाशन, 2007।
2. जायसी ग्रन्थावली – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – वाणी प्रकाशन, 2021।

नागमती का विरह वर्णन

रूपरेखा

14.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

14.2 प्रस्तावना

14.3 नागमती का विरह वर्णन

14.3.1 प्रथम विषय वस्तु–भाग

14.3.2 द्वितीय विषय–वस्तु भाग

14.3.3 तृतीय विषय–वस्तु भाग

14.4 सारांश

14.5 स्व–मूल्यांकन

- बहु विकल्पीय प्रश्न
- रिक्त स्थान
- सही या गलत

14.6 कठिन शब्द

14.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

14.8 उत्तर कुंजी

14.9 पठनीय पुस्तकें

14.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रिय विद्यार्थियो! प्रत्येक अध्ययन का, प्रत्येक कर्म का कोई न कोई उद्देश्य होता है। इस नाते नागमती के विरह वर्णन के अध्ययन का भी कोई उद्देश्य है। जैसे युवा हो चुके छात्रों को हृदयस्थ स्थायी भावों और संचारी भावों से परिचित करना, इन भावों, विभावों, अनुभावों की परस्पर संयुक्ति से होने वाले रस संचार की अनुभूति और अभिव्यक्ति से परिचित करवा कर उनकी चित्तवृत्तियों का संशोधन और संयमन करना और उन्हें सभ्य समाज का हिस्सा बनकर अपनी सामाजिक जिम्मेवारी के निर्वाह के योग्य बनाना।

श्रृंगार रस प्राचीन काल से ही रसराज के पद पर आसीन रहा है। काव्यशास्त्रियों ने मनोयोग से इसकी शास्त्रीय व्याख्या और कवियों ने काव्यात्मक अभिव्यक्ति की है। मध्य युगीन कवि जायसी ने पद्मावती और नागमती दो नायिकाओं के प्रति रतनसेन की आसक्ति और प्रेम का वर्णन किया है। दोनों ही नायिकाएं रत्नसेन के हृदय में उठे प्रेम की अनुभूति की पोषक रही हैं। पद्मावती के प्रति रत्नसेन का प्रेम अध्यात्म से जुड़ा प्रेम है और पद्मावती आलौकिक सत्ता का प्रतिबिम्बित रूप है जबकि नागमती उसकी पत्नी है, माया का जाल है जो रत्नसेन रूपी आत्मा को अधिक देर तक अपने माया जाल में उलझा नहीं पाती, वह सांसारिक सुख–सौंदर्य का प्रतीक है। जो पद्मावती के गुण गरिमा और

सौंदर्य के प्रति हीरामन द्वारा जगायी जिज्ञासा के कारण रत्नसेन के चितौड़ से सिंहलद्वीप की ओर चले जाने से वियोग से पीड़ित है। उसकी विरह जनित पीड़ा की अभिव्यक्ति से परिचित करवाना ही इस अध्याय का उद्देश्य है।

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त नागमती के विरह के अंतर्गत संयोग और वियोग दोनों प्रकार की मनःस्थिति को समझ पाएंगे।

14.2 प्रस्तावना

विरह वर्णन शृंगार रस का एक पक्ष है, दूसरा पक्ष संयोग वर्णन का है। संयोग और वियोग दोनों प्रकार की मनःस्थिति के मूल में स्थाई भाव रति है। रति भाव की ही विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के परस्पर संयुक्त होने से शृंगार रस के रूप में निष्पत्ति होती है। पद्मावत' में संयोग और वियोग आदि शृंगार रस के दोनों पक्षों का चित्रण हुआ है। पद्मावत' में पदमावती से विवाह और संयोग के चित्रण को अलौकिक सत्ता से आत्मा के संयोग के रूप में देखा गया है जबकि नागमती से रत्नसेन के संयोग और वियोग को सांसारिक प्रेम की अभिव्यक्ति के रूप में देखा गया। नागमती के विरह वर्णन के अंतर्गत यहां हमने लौकिक शृंगार के सौंदर्य की परख करना है।

14.3 नागमती का विरह वर्णन

14.3.1 प्रथम विषय वस्तु–भाग

इस भाग में शृंगार रस क्या है, इसके स्थायी भाव, संचारी भाव, विभाव, अनुभाव क्या हैं आदि का परिचय दिया जाएगा। यद्यपि यह काव्य शास्त्र से सम्बद्ध विषय है तदपि छात्रों को इस विषय की जानकारी दिए बिना नागमती के विरह वर्णन को नहीं समझा जा सकता। विशेष कर लौकिक आलौकिक सत्ता के प्रति जो भेदक अनुभूति रहती है, उसे नहीं समझा जा सकता क्योंकि विभाव अनुभाव आदि के आलम्बन तो समान ही रहते हैं। इसे समझाने के लिए निम्नलिखित उपविभागों को ध्यान में रखा जाएगा –

स्थायी भाव रति के बारे समझा कर रति भाव में विक्षोभ पैदा करने वाले विभाव अनुभाव आदि का वर्णन करते हुए शृंगार के दोनों पक्षों के बारे समझाया जाएगा।

शृंगार रस का स्थायी भाव रति है, जिसमें भिन्न लिंगी के रूप, रंग, आकार गुण आदि और उसकी प्रतिभा, साहस, शौर्य के प्रति आकर्षण पैदा होता है, उससे मिलने की आकांक्षा पैदा होती है, जो यत्न से बढ़ती हुई फलागम तक पहुंचती है और रति भाव में पैदा हुआ विक्षोभ अपनी चरमस्थिति तक पहुंच कर फल प्राप्ति के सुख से शान्त होने लगता है। इस प्रक्रिया में संचारी भाव, विभाव, अनुभाव आलम्बन और वातावरण का भोक्ता मानसिक धरातल पर ऐसा प्रभाव पड़ता है कि रस निष्पत्ति की प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है।

काव्य शास्त्रियों ने शृंगार रस के दो पक्ष बताए हैं 1. संयोग पक्ष 2. वियोग पक्ष। जब नायक–नायिका साथ रहते हुए जीवन की विभिन्न क्रियाओं का आनंद लेते हैं तो उन अनुभूति क्षणों के हास–विलास, चुम्बन, आलिंगन की क्रियाओं को संयोग पक्ष के अन्तर्गत रखा जाता है। जब नायक–नायिका किसी कारण वश दूर रहते हैं और परस्पर वार्तालाप नहीं कर पाते संयोग पक्ष से जुड़ी कोई क्रिया संभव नहीं हो पाती तो अतीत हो चुके वार्तालाप, हंसी ठिठोली, चुम्बन, आलिंगन का स्मरण कर संतप्त होते हैं, इसे वियोग पक्ष कहते हैं।

वियोग को काव्यशास्त्रियों ने चार प्रकार का माना है –

(क) **पूर्व राग जन्य वियोग** – जिसमें नायक या नायिका अचानक किसी एक को देखते हैं, चौंक जाते हैं, आकर्षित हो जाते हैं और कुछ क्षणों बाद ही बिछुड़ जाते हैं, अभी उनमें राग उत्पन्न नहीं हुआ होता और कुछ ही दिनों

में वे उस क्षणिक आकर्षण को भूल जाते हैं पर भूलने से पूर्व वे उन मिलन क्षणों के स्फुरण का स्मरण करते रहते हैं। यह पूर्वराग जन्य वियोग अधिक देर तक नहीं रहता यह आकर्षण और प्रेम अधूरा होता है।

(ख) **मानजन्य वियोग** – यह वियोग नायक नायिका में किसी बात को लेकर रूठ जाने से पैदा होता है, दोनों रहते तो साथ–साथ हैं परन्तु परस्पर वार्तालाप नहीं करते, दूसरे को देख कर भी नहीं देखते और चाहते हैं कि दूसरा पक्ष उसे मनाए, उसकी चिरौरी करे। जब चिरौरी आदि से मनौवल आदि से रूठा पक्ष मान जाता है तो फिर श्रृंगार का संयोग पक्ष आरम्भ हो जाता है। मान मनोबल के क्षणों के बीच की जो पीड़ा और संताप झेला जाता है और काव्य–शास्त्री उसे ही मानजन्य वियोग कहते हैं।

(ग) **प्रवासजन्य वियोग** – यह वियोग तब पैदा होता है जब नायक नायिका में स्थानगत दूरी पैदा हो जाती है, जैसे पुराने जमाने में नायक नौकरी पर परदेश चला जाता था और नायिका घर में सास, ननद, जेठानी, देवरानी के ताने सुनती थी और जब घर के कामकाज से फुर्सत मिलती थी तो नायक के साथ बीते पलों, क्रियाओं, वार्तालाप, खानपान, सैरसपाटे का स्मरण करती हुई संतप्त होती थी, रोती थी, आंसू बहाती थी। प्रवासजन्य वियोग में नायक नायिका दोनों दुखी और संतप्त रहते हैं और मिलने के लिए यत्न करने के बावजूद स्थानगत दूरी के कारण मिल नहीं पाते, सुखद प्रकृति और ऋतुएं भी उन्हें दुख पहुंचाती हैं।

(घ) **चिरवियोग** – यह वियोग न समाप्त होने वाला वियोग है। इस वियोग का कारण है नायक नायिका में से किसी एक की मृत्यु। यह वियोग श्रृंगार रस की अपेक्षा करुण रस का पक्ष कहा जा सकता है, जिसमें शोक संतप्त नायक या नायिका अपने हृदय को रो–रो कर मना लेने का यत्न करता है कि अब पुनः मिलन नहीं होने वाला। इस स्थिति में भी वह अतीत हो चुके सहवास संयोग की क्रियाओं का स्मरण करता हुआ रोता है और उसे देखने वाले के हृदय में करुणा पैदा होती है। चिरवियोग का चित्रण भारतीय कवि शांत रस के रूप में करते हैं श्रृंगार रस के रूप में चिरवियोग का वर्णन अत्यल्प हुआ है।

संयोग पक्ष के अंतर्गत कवियों ने नायक नायिका में परस्पर रूपाकर्षण, पूर्वानुराग प्रियतम मिलनातुरता, आगत पतिका का हर्षोल्लास, प्रथम समागम भी नवोढ़ा की लज्जा, रस रंग में एकात्मकता, स्वकीया का सहज दर्प, अभिसारिका की मिलनोत्कंठा, वासकसज्जा की प्रियप्रतीक्षा आदि सभी का हृदयावर्जक वर्णन किया है।

वियोग पक्ष में प्रवत्स्यत पतिका का प्रिय को विदेश–गमन से रोकना, विरह जनित कामदशाओं का वर्णन और प्रेषित पतिका का काग आदि के द्वारा प्रियतम को संदेश भेजना आदि का वर्णन उल्लेखनीय रहा है।

प्रेममार्गी कवियों में संयोग और वियोग दोनों पक्षों के चित्रण में अनुपम रस है। अपने लौकिक रूप में जहां वह गृहस्थियों के लिए आह्लादक है, वहां आलौकिक रूप में वह मोक्ष के इच्छुक पाठकों के लिए उतना ही आनंददायक है। एक ओर यह श्रृंगार रस अपने परिष्कृत मर्यादित व शील सम्पन्न रूप में लोक मर्यादा को छूता है, दूसरी ओर उर्ध्वप्रयाण की बलवती प्रेरणा देता है। इस श्रृंगार रस में दिव्य रस की आर्द्रता है।

सूफी कवियों का प्रेमी, प्रेयसी की प्राप्ति के लिए वन–वन भटकता है, जोगी बना फिरता है। यह साध्य तो प्रेयसी है और साधक प्रेमी है। यहाँ साधक को साध्य को प्राप्त करने के लिए भरपूर यत्न करना पड़ता है। इस स्वछन्द श्रृंगार में नायक की अच्छी परीक्षा होती है जिसमें उत्तीर्ण होने पर ही साधक को साध्य उसके (प्रेमिका–ईश्वर) उपहार स्वरूप मिलता है। सूफी काव्य की प्रेमिकाएं और प्रेमी प्रेम–पथ पर आने वाली बाधाओं तथा विकट से विकट विघ्नों को तृणवत समझते हैं और सिद्धिपथ पर बढ़ते रहते हैं।

इन कवियों ने अपने प्रेमाख्यानों में प्रेम पात्र के सौंदर्य को किसी ऐसे प्रकाश या ज्योतिपुंज के रूप में चित्रित किया है कि प्रत्येक जीव उसकी ओर आकर्षित होकर अपना सर्वस्व प्रेम–पथ पर न्यौछावर करने के लिए उद्यत हो जाता है।

इन कवियों ने कथा के सूत्रपात में नायक या नायिका के देश, कुल, आचार आदि का उल्लेख रागोत्पति के लिए कर दिया है। नायक और नायिका दूर देश के लोग होते हैं परन्तु रूप गुण कथन सुनकर नायक नायिका की प्राप्ति के लिए सर्वस्व त्याग कर आंधी–तूफानों का सामना करते हुए घर से चल पड़ता है और उसमें अपूर्व क्रियाशीलता आ जाती है।

कथा में गति लाने के लिए सूफियों ने भारतीय काव्यों में प्रयुक्त हुई काव्य रूढ़ियों–जैसे चित्र दर्शन या स्वप्न दर्शन द्वारा नायिका का रूप देखकर अथवा शुक सारिका द्वारा कहे नायिका के रूपगुण को सुनकर उस पर आसक्त होना, पशु–पक्षियों की बातचीत में भावी घटना का संकेत पाना, मंदिर, रंगशाला, उपवन, अथवा किसी अन्य गुप्त स्थान पर प्रेमी युगल का मिलना आदि रूढ़ियों द्वारा दोनों में रागोत्पति होना और प्रेम–प्रक्रिया में तीव्रता लाने का यत्न किया है।

सूफियों ने ईरानी काव्य–रूढियों का भी व्यवहार किया है, जैसे प्रेम व्यापार में देवों और परियों का सहयोग। प्रेमी युगल में प्रेमासक्ति के भाव जाग्रत होने के पश्चात उन्हें कड़ी से कड़ी परीक्षा में डाला जाता है। नायक को अन्य सुंदरियों का प्रलोभन देकर आकर्षण तथा मोहपाश में डाला जाता है, किन्तु वह इस परीक्षा में सफल रहता है।

सूफी कवि विरह दशा का विस्तृत वर्णन करते समय प्रेम तत्व का निरूपण भी करते चलते हैं। कथा के बीच में प्रतिनायक और प्रतिनायिका की भी सृष्टि कर ली जाती है ताकि प्रेमी प्रेमिका के प्रेम की परख होती रहे।

सूफी कवियों ने प्रेम के वियोग पक्ष को अत्यधिक महत्व दिया है, प्रेम का असली रूप विरह में ही निखरता है, मिलन में नहीं, विरह में क्रियाशीलता बनी रहती है जबकि मिलन में जड़ता आ जाती है। विरह अवस्था का वर्णन करते हुए उन्होंने बारहमासे के वर्णन को बहुत महत्व दिया है। यहां उन्होंने भारतीय पद्धति के अनुसार पत्र–व्यवहार भी किया है, परन्तु जहां कहीं फारसी साहित्य की प्रचलित रूढियां आई हैं वहा वर्णन अतिरंजित हो गए हैं।

इन कवियों के संयोग अवस्था के वर्णन कभी–कभी अश्लीलता को स्पर्श करने लगते हैं, इन्होंने संयोग अवस्था को या तो भोग विलास के लिए उपयुक्त वातावरण–मान लिया है या कभी उसका रहस्यात्मक अर्थ कर डाला है।

सूफी कवियों का नखशिख वर्णन काम शास्त्र से प्रभावित है, जिसमें प्रसंगानुसार भारतीय ज्योतिष, रसायन शास्त्र तथा आयुर्वेद के ज्ञान का भी परिचय दिया गया है। सूफी प्रेमाख्यानों के नायक–नायिका के दैनिक व्यापार, वातावरण तथा उनके सिद्धांत व संस्कृति में कोई परिवर्तन नहीं लाया गया बल्कि घटनाओं को ऐसा क्रम दे दिया जाता है कि सूफी प्रेम साधना से मेल बैठ जाए।

इन प्रेमाख्यानों में श्रृंगार रस की व्यंजना हुई है। सर्वप्रथम नायक नायिका के प्रति आकर्षित होते हैं उनकी प्राप्ति के लिए विरह–वेदना तथा नाना अन्य संकटों को झेलते हैं। पूर्वराग को जाग्रत करने के लिए गुण–श्रवण, प्रत्यक्ष–दर्शन तथा चित्र दर्शनादि उपायों का आश्रय लिया जाता है। उद्दीपन विभाव के अंतर्गत सूफियों ने सखा–सखी, वन, उपवन, ऋतु परिर्वतन तथा भारतीय साहित्य में वर्णित अन्य उपकरणों का उल्लेख किया है। प्रासंगिक रूप से इन्होंने अनेक अनुभावों का भी दिग्दर्शन करा दिया है परन्तु संयोग श्रृंगार के वर्णन में इन्होंने इतनी रूचि नहीं दिखाई जितनी रूचि विप्रलम्भ श्रृंगार (विरह) में दिखाई है और न ही इन्होंने नायक एवं नायिकाओं के भेदों की उद्धरणी प्रस्तुत की है। इनके श्रृंगार वर्णन पर काम–शास्त्र का भी प्रभाव है।

14.3.2 द्वितीय विषय–वस्तु भाग

इस भाग में श्रृंगार रस के वियोग पक्ष की अभिव्यक्ति का विशेष अध्ययन किया जाएगा। वियोग के क्षणों में नायक–नायिका को प्रकृति और अपना परिवेश कैसे प्रभावित करता है, उनकी मनोदशा किस प्रकार प्रकृति के सान्निध्य के प्रति प्रतिक्रियाएं करती है, विभिन्न ऋतुएं उसके हृदय को कैसे संतप्त करती हैं और कवियों और काव्य शास्त्रियों ने इस प्रकार की मनःस्थितियों को कैसे परिभाषित और व्याख्यायित किया है आदि परिचय दिया जाएगा। यहीं वियोग से पीड़ित नायक–नायिका की दसों काम दशाओं का वर्णन किया जाएगा।

पद्मावत' में श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का अच्छा परिपाक हुआ है, किन्तु उसमें प्रधानता वियोग पक्ष की है। नागमती के माध्यम से वर्णित विप्रलम्भ (वियोग) श्रृंगार विशेष महत्वपूर्ण है, जिसमें विरह जनित प्रेम में एक विलक्षण तीव्रता अनिर्वचनीय क्रियाशीलता तथा निराली तड़प है। विरह जनित कामदशाओं का वर्णन इस भाग का वर्ण्य–विषय रहेगा। नारी के नख–शिख वर्णन द्वारा सूफी कवियों ने नायक (साधक) को नायिका (साध्य) के प्रति आकर्षित किया है, जायसी ने भी अपने काव्य में सौंदर्य–चित्रण के अन्तर्गत उन्हीं वस्तुओं को उपमान के रूप में चुना है, जिनके द्वारा सौंदर्यानुभूति की तीव्रतम अभिव्यंजना की जा सके।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने जायसी के रूप वर्णन के सम्बंध में उचित ही कहा है कि केशों की दीर्घता, सघनता और श्यामलता के वर्णन के लिए परम्परा से प्रचलित पद्धति के अनुसार केवल सादृश्य पर जोर न देकर कवि ने उसके सृष्टि व्यापी प्रभाव की ओर संकेत किया है। जायसी ने पदमावती की शिख से लेकर उसके नखों तक का मसनवी शैली में वर्णन किया है। इस वर्णन प्रणाली के अन्तर्गत जायसी ने पदमावती के सौंदर्य का बहुत अच्छा हृदयग्राही वर्णन किया है। यहां पद्मावती की बंकिम भवों के सौंदर्य को तने हुए धनुष से उपमित किया गया है, मांग ऐसी लगती है जैसे कि मेघों में विद्युत चमक रही हो, या यमुना की नीले रंग की धारा में सरस्वती आ मिली हो। इसी प्रकार पदमावती के भवों, ग्रीवा, कलाइयों, वक्षस्थल, उदर, पीठ, कमर, नाभि और नितम्बों के सौंदर्य का आकर्षक वर्णन किया गया है।

डॉ श्री निवास शर्मा ने उचित ही कहा है कि जायसी ने श्रृंगार के आलम्बन के रूप में नारी शरीर की मोहक और रमणीक, लौकिक और आलौकिक अनेक प्रकार की भव्य झांकियां प्रस्तुत की हैं। जायसी के सौंदर्य चित्र एक ओर तो पाठक को सौंदर्य की लोकोत्तर कल्पना में मग्न करने वाले हैं तो दूसरी ओर वे रमणी के कलेवर के मादक और उत्तेजक चित्र भी बन पड़े हैं।

'पद्मावत' के कवि ने कृति में संयोग और वियोग पक्ष की बड़ी सुंदर अभिव्यंजना की है, अलौकिक प्रणय की प्रतिष्ठा के लिए लौकिक प्रणय के संसार से विराग लेकर ब्रह्म की ओर उन्मुख होना ही अपेक्षित मनोवृत्ति है। रत्नसेन भी अलौकिक सत्ता पदमावती रूपी ईश्वर का नखशिख वर्णन सुनकर अपने राजपाट, पत्नी भ्राता, परिजन आदि को त्याग कर योगी हो जाता है। जब तक वह पदमावती से नहीं मिलता, उसमें वैराग्य की भावना ही प्रधान रहती है।

डॉ. शम्भुनाथ सिंह ने ठीक ही कहा है ''पद्मावत का समग्र प्रभाव शांत रस समन्वित है, श्रृंगार रस वाला नहीं, अतः लौकिक कथा की दृष्टि से पद्मावत में विप्रलम्भ श्रृंगार अंगी है और आध्यात्मिक दृष्टि से यह शांत रस प्रधान काव्य है।'' यदि आध्यात्मिकता के संकेत को छोड़ दिया जाए तो रत्नसेन का राजपाट और पत्नी, प्रियजन को छोड़ कर योगी के वेश में पदमावती की खोज में घर से निकल पडना प्रियतमा की प्राप्ति के उद्देश्य का ही अंग है। जिसको शांत रस के स्थान पर श्रृंगार रस के अंतर्गत परिगणित किया जाना चाहिए। वास्तव में नायक रत्नसेन द्वारा नायिका पद्मावती की प्राप्ति श्रृंगार रस के अन्तर्गत ही आती है, नख–शिख वर्णन प्रकारन्तर से श्रृंगार रस का ही अंग है।

'पद्मावत' में श्रृंगार के दोनों पक्षों का चित्रण है, पदमावती के विषय में रत्नसेन के हृदय में प्रेम का स्फुरण गुण–श्रवण पर आधारित है, हीरामन तोते द्वारा पदमावती के नख–शिख का विस्तृत वर्णन सुन लेने पर रत्नसेन उसके प्रति प्रेम–सागर में डूबने–उतारने लगता है। जायसी ने रत्नसेन के विरह का सुन्दर वर्णन किया है। साधक के रूप में रत्नसेन पद्मावती रूपी ईश्वर का सौंदर्य–वर्णन सुनकर ही उसके वियोग में मूर्छित हो जाता है। रत्नसेन के रोम–रोम में पद्मावती से मिलन की कामना झंकृत हो उठती है। उसकी दृष्टि में पद्मावती से विरह भोगने की अपेक्षा सूली पर चढ़ना वरेण्य है, वह सूली पर चढने के लिए सहर्ष प्रस्तुत हो जाता है। पदमावती भी रत्नसेन के विषय में हीरामन से सूचना पाकर उत्साहपूर्वक उससे मिलने के लिए शिव मण्डप में आती है, जब रत्नसेन उसको देख कर मूर्छित हो जाता है, तो वह उस के हृदय पर चन्दन लगाकर उसे होश में लाने का प्रयास करती है। रत्नसेन को दूल्हे के रूप में आते देखकर पद्मावती के हर्षोल्लास और प्रेमातिशयता का जायसी ने उत्तम वर्णन किया है।

पद्मावत' में कवि को जितनी सफलता वियोग–पक्ष के चित्रण में मिली है, उतनी सफलता संयोग–चित्रण में नहीं मिली, फिर भी इनका संयोग पक्ष चित्रण भी सजीव बन पड़ा है, यद्यपि उस में इतनी व्यापकता, तीव्रता और गंभीरता नहीं जितनी कि विप्रलम्भ (वियोग) श्रृंगार के चित्रण में है।

संयोग श्रृंगार के अन्तर्गत उन्होंने षड्ऋतु का अच्छा वर्णन किया है। रत्नसेन तथा पद्मावती के प्रथम समागम का बड़ा विराट वर्णन है, जिसमें हास्य विनोद का विधान भी है। परन्तु समागम के समय के हावभावों के वर्णन में कहीं कहीं ऐसी छेड़छाड़ है जो फटकार और अश्लीलता की कोटि में पहुंच जाती है, उनके संयोग में एक–एक अंग का अलग–अलग बिखरा हुआ सौंदर्य भले ही हो, पर वह किसी समन्वित प्रभाव की सृष्टि नहीं कर पाता, इनके संयोग में इतनी मार्मिकता नहीं कि वे पाठक को संयोग के मधुर वातावरण में डुबो सके। फिर भी पति रत्नसेन से मिलनोत्सुक पद्मावती का चित्र हृदयाग्राही है–

''हुलसे नैन दरस मदमाते हुलसे अधर रंग रस राते
हुलसे कुच कसनीबंद टूटे। हुलसी भुजा वलय कर फूटे
आज चाँद घर आबा सूरु। आजु सिंगार होई सब चूरू।''

जायसी ने रत्नसेन और पद्मावती के विवाहोपरान्त उनकी सुहागरात का बड़ा मनोरम चित्रण किया है। नवपरिणीता या नवोढ़ा की भय और आह्लाद मिश्रित भावनाओं को भी जायसी ने बखूबी चित्रित किया है। पति के समीप आने में संकोच करती पद्मावती को सखियां समझाती हैं परन्तु पद्मावती इस शंका से ग्रस्त खड़ी रह जाती है कि जब प्रियतम उसका हाथ पकड़ेगा तब वह क्या कहेगी? नवोढ़ा की आशंका और भय–मिश्रित आह्लाद को देखिए–

''हौं बारी औ दुलहिनी, पीव तरुन, यह सेज।
न जानों कस होइहि, चढ़त कंत कै सेज।''

संयोग श्रृंगार में आलम्बन की सुंदरता का अत्यधिक महत्व होता है। कवि ने यौवन के भार से झुकी हुई पद्मावती के सौंदर्य का मनोहारी चित्रण किया है।

रत्नसेन और नागमती के बीच के संयोग को भी कवि ने चित्रित किया है, परन्तु नागमती लम्बे वियोग के बाद आए रत्नसेन से रूठी हुई है। यहां उसके मानयुक्त संयोग का सुंदर चित्रण देखें वह मुंह फेर कर बैठ जाती है–

''काह हंससि तू मोंसो, किए जो और सो नेह।
तोहि मुख चमके बीजुरी, मोहि मुख बरसै मेह।''

परन्तु रत्नसेन मान मनौवल करता हुआ रूठी पत्नी के ताने सुनने के बाद उसे कण्ठ लगा कर मना ही लेता है–

''कंठ लाई कै नारि मनाई। जरी जो बेलि सींचि पलुहाई।''

पद्मावती और नागमती के मध्य सपत्नी–भाव के कारण कलह होता है, तो राजा दोनों को समझाते हुए साथ–साथ रहने और संभोग (संयोग) का सुख भोगने की सलाह देता है।

''तुम गंगा जमुना दुइ नारी, लिखा मुहम्मद जोग
सेव करहु मिलि दुनहूं, और मानहु सुख भोग''

14.3.3 तृतीय विषय–वस्तु भाग

इस भाग में विरह में ग्रस्त नागमती का वर्णन किया जाएगा। उसकी विभिन्न काम जनित मनोदशाओं और प्रकृति–परिवेश के प्रति नागमती की प्रतिक्रियाएं इस उपभाग का विषय रहेगा।

नागमती का विरह वर्णन– किसी आलोचक ने उचित ही कहा है कि पद्मावत' में शृंगार के संयोग पक्ष की अपेक्षा वियोग पक्ष के प्रसंगों में प्रेमभाव की अपेक्षाकृत अधिक मार्मिक व्यंजना मिलती है। परन्तु पद्मावत' में वियोग वर्णन की दृष्टि से पद्मावती की अपेक्षा नागमती का वियोग वर्णन ही विशेष महत्वपूर्ण है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी नागमती के वियोग वर्णन की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि ''नागमती के वियोग वर्णन में वेदना का अत्यन्त निर्मल और कोमल स्वरूप, हिन्दू दाम्पत्य जीवन का अत्यन्त मर्मस्पर्शी माधुर्य अपने चारों ओर की प्राकृतिक वस्तुओं तथा व्यापारों का अलंकृत स्निग्ध, सरल, मृदुल और प्राकृत प्रवाह देखने योग्य है।''

पति के चितौड़ लौटने के मार्ग को जोहती हुई नागमती की हार्दिक व्यथा देखने वाली है

''नागमती चित उर पंथ हेरा। पिउ जो गए फिर कीन्ह न फेरा''

उसे लगता है मानो हम सारसों की जोड़ी बिछुड़ गई है और उसका शरीर अस्थि–पंजर मात्र रह गया है–

''झुरि झुरि पाँज रिधनि भई बिरह कै लागी अग्गि।''

आषाढ़ के महीने में घन–घटाए गर्जन करती हुई आकाश पर छा जाती हैं तो उसे प्रतीत होता है मानो उस पर कामदेव की सेना ने आक्रमण कर दिया है।

सावन के महीने में वह अन्य गृहणियों को अपने पतियों के साथ हिंडोले पर झूलते देखती है, तो उसका हृदय कसमसा उठता है। वह सोचती है कि उसके पंख होते तो वह भी उड़कर पति के समीप जा पहुंचती।

भाद्रमास में बेचारी नागमती अपनी शैय्या की पाटी को जकड़े हुए जैसे–तैसे अपने हृदय को फटने से रोकने का प्रयास करती है, जबकि उसके नेत्रों से अश्रुधार प्रवाहित होती रहती है–

''बरिसै मघा झकोरी झकोरी। मोर दुई नैन चुवहि जस ओरी''

कार्तिक मास में दीवाली के त्यौहार पर तो बेचारी विरिहणी नागमती की दशा अत्यन्त दयनीय हो उठती है और वह अपने सिर में खाक डालने लगती है–

''हौं का खेलौ कंत बिन तेहिं रही छार सिर मेलि।''

अगहन महीने में शीतागमन के कारण विरिहनी नागमती की मनोव्यथा और भी अधिक बढ़ जाती है–

''सियरि अगिनि विरहिन हिए जाए। सुलगि सुलगि दगधै भै छाए।''

कहा जा सकता है कवि जायसी ने छः ऋतुओं और उनसे जुड़े त्यौहारों में नागमती के मन की विरह व्यथा का सुंदर और हृदयाग्राही वर्णन किया है, पति के बिन ये त्यौहार फीके और हृदय को संताप देने वाले हो जाते हैं।

आलोचकों ने उचित ही कहा है कि नागमती के विरह–वर्णन से संबंधित कुछ दोहे हिन्दी साहित्य में अमर हैं, विरह–वेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से कुछ बेजोड़ ये दोहे देखिए–

''रकत ढरा माँ गरा हाड़ भए सब संख
धनि सारस होइ ररि मुई आई समेटहु पंख।''
''यह जन जारौ छार कै कहौं पवन उड़ाउ
मकु तेहि मारग हाइ परौं, कंत धरै जहं पान्हं।''
''हाड़ भए सब किंगुरी, नसैं भई सब तांति
रोवँ रोवँ तैं धुनि उठे, कहौं बिथा केहि भांति।''

विरहनुभूति के ये मार्मिक उद्‌गार नागमती की विरह–पीड़ा की अनूठी अभिव्यक्ति हैं। जायसी ने नागमती के विरह को भारतीय चिंतन और जीवन स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में सुंदर अभिव्यक्ति प्रदान की है।

14.4 सारांश –

इस भाग में पद्‌मावत' में 'नागमती के विरह वर्णन' के सार तत्व को दिया जाएगा

14.5 स्व–मूल्यांकन

प्रिय विद्यार्थियों !

इस अध्याय में आपने जाना कि जायसी ने पद्‌मावत में नागमती के विरह को भारतीय चिंतन और जीवन स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में सुंदर अभिव्यक्ति प्रदान की है। इसी परिप्रेक्ष्य में अब आप निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिह्न द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

प्र1) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिएः–

1) प्राचीन काल से कौन–सा रस रसराज के पद पर आसीन रहा हे?

क) श्रृंगार ख) शांत ग) अद्‌भुत घ) करुण

2) श्रृंगार रस का स्थायी भाव है'

क) विस्मय ख) रति ग) शोक घ) हास

3) वियोग के काव्यशास्त्रियों ने कितने प्रकार माने हैं–

क) दो ख) तीन ग) चार घ) पाँच

4) कवि जायसी ने नागमती के मन की विरह व्यथा को कितनी ऋतुओं में वर्णित किया है–

क) छः ख) तीन ग) चार घ) पांच

5) संचारी भावों की संख्या कितनी मानी जाती है–

क) 33 ख) 34 ग) 32 घ) 35

प्र2) रिक्त स्थान भरोः–

क) ––––––––––– कभी न समाप्त होने वाला वियोग है।

ख) पद्मावत में शृंगार के दोनों पक्षों संयोग और ––––––––– का चित्रण है।

ग) सूफी कवियों का प्रेमी, प्रेयसी की प्राप्ति के लिए –––––––––––– भटकता है।

घ) ––––––––––––द्वारा पद्मावती के नख–शिख का विस्तृत वर्णन सुन लेने पर रत्नसेन उसके प्रति प्रेम–सागर में डूबने–उतरने लगता है।

प्र3) सही या गलत

प्रिय विद्यार्थियो!

निम्नलिखित के उत्तर सही या गलत चिह्न द्वारा देकर आप अभी तक प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें।

क) पद्मावती के हर्षोल्लास और प्रेमातिशयता का जायसी ने उत्तम वर्णन किया है। ( )

ख) सूफी कवियों ने प्रेम के संयोग पक्ष को अत्यधिक महत्व दिया है। ( )

ग) विरह वर्णन शृंगार रस का एक पक्ष है, दूसरा पक्ष संयोग वर्णन का है। ( )

घ) विरहनुभूति के मार्मिक उद्‌गार नागमती की विरह–पीड़ा की अनूठी अभिव्यक्ति हैं। ( )

14.6 कठिन शब्द

1. शृंगार –––––––––––––––––––
2. संयोग–––––––––––––––––
3. प्रेयसी–––––––––––––––––––
4. संचारी––––––––––––––––––
5. भाव–––––––––––––––––––
6. शीतागमन––––––––––––––––
7. उन्मुख–––––––––––––––––
8. स्वरूप––––––––––––––––

14.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पद्मावत में नागमती के विरह वर्णन के स्वरूप की व्याख्या कीजिए।

   ———————————————————————————————

   ———————————————————————————————

   ———————————————————————————————

   ———————————————————————————————

2. नागमती के विरह वर्णन की विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।

   ———————————————————————————————

   ———————————————————————————————

   ———————————————————————————————

   ———————————————————————————————

3. नागमती के विरह वर्णन में नागमती की कामजनित व्यथा का वर्णन कीजिए। उसकी कामदशाओं का उदाहरण दीजिए।

   ———————————————————————————————

   ———————————————————————————————

   ———————————————————————————————

   ———————————————————————————————

14.8 उत्तर कुंजी

- बहु विकल्पीय प्रश्न

  1. श्रृंगार   2. रति   3. चार   4. छः   5. 33

- रिक्त स्थान

  1. चिरवियोग   2. वियोग   3. वन–वन   4. हीरामन तोते

- सही या गलत

  1. सही   2. गलत   3. सही   4. सही

14.9 पठनीय पुस्तकें

1. पद्मावत – डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल – लोकभारती प्रकाशन, 2007।
2. जायसी ग्रन्थावली – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – वाणी प्रकाशन, 2021।

पद्‌मावत का महाकाव्यत्व

रूपरेखा

15.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
15.2 प्रस्तावना
15.3 पद्‌मावत का महाकाव्यत्व
15.4 सारांश
15.5 स्व–मूल्यांकन
- बहु विकल्पीय प्रश्न
- रिक्त स्थान
- सही या गलत

15.6 कठिन शब्द
15.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
15.8 उत्तर कुंजी
15.9 पठनीय पुस्तकें

15.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रिय विद्यार्थियो! प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य है –

– महाकाव्य के लक्षणों से परिचित होना।

– जायसी द्वारा रचित पद्‌मावत महाकाव्य की पूर्ण पहचान करना।

– हिन्दी साहित्य में पद्‌मावत का क्या स्थान है, इसका ज्ञान प्राप्त करना।

इस अध्याय के अध्ययनोपरान्त विद्यार्थी महाकाव्य के लक्षणों से परिचित होंगे। जायसी द्वारा रचित पद्‌मावत महाकाव्य की पूर्ण पहचान कर हिन्दी साहित्य में पद्‌मावत का क्या स्थान है इससे अवगत होंगे।

15.2 प्रस्तावना

भारतीय आलंकारिक भामह ने लम्बे कथानक वाले महान चरित्रों पर आश्रित नाटकीय पंचसंधियों से युक्त, उत्कृष्ट और अलंकृत शैली में लिखित तथा जीवन के विविध रूपों और कार्य का वर्णन करने वाले सर्वबद्ध सुखान्त काव्य को महाकाव्य की संज्ञा दी है।

आचार्य दण्डी (छठी शताब्दी) जिन्होंने महाकाव्य के स्थल बाह्य लक्षणों पर ही विशेष बल दिया है इन की परिभाषा भी भामह से कुछ अधिक भिन्न नहीं है। इनके अनुसार ''महाकाव्य वह है जिसका कथानक इतिहास या कथा से उद्‌भूत हो जिसका नायक चतुर और उदात्त हो, जिसका उद्देश्य चतुर्वर्गा फल प्राप्ति हो, जो अलंकृत भावों और रसों से भरा

हुआ हो और जो बड़े आकार का सर्गबद्ध और पंच संधियों से युक्त काव्य हो।'' जहां महाकाव्य के प्रारम्भ, वर्णनीय वस्तु व्यापार तथा सर्ग और छन्द के संबंध में विशेष ध्यान दिया गया हो।

रूद्रट की मान्यता उल्लेखित दो मान्यताओं तथा उनके परवर्ती अनेक अन्य आचार्यों की मान्यताओं से कहीं अधिक व्यापक है। उन्होंने संस्कृत के परवर्ती महाकाव्यों के अतिरिक्त रामायण– महाभारत तथा प्राकृत, अपभ्रंश और संस्कृ त के पौराणिक रोमांसिक महाकाव्यों को भी ध्यान में रखकर महाकाव्य के लक्षण निर्धारित किये हैं। रूद्रट ने पद्यबद्ध कथा के उत्पाद्य तथा महत् और लघु ये दो प्रकार के भेद करके केवल महाप्रबंध को ही महाकाव्य कहा है चाहे उसकी कथा उत्पाद्य हो अथवा अनुत्पाद्य उन्होंने अवान्तर कथाओं की आवश्यकता के साथ युग–जीवन के विविध रूपों, पक्ष और घटनाओं को चित्रित करने की बात बहुत स्पष्ट रूप में सविस्तार कहीं है। उनके अनुसार महाकाव्य का नायक द्विजकुलोत्पन्न, सर्वगुण सम्पन्न, महान वीर, शक्तिवान, नीतिज्ञ कुशल राजा होता है और अन्त में उसी की विजय होती है। साथ ही महाकाव्य में प्रतिनायक और उसके कुल का भी वर्णन रहता है। महाकाव्यों में रूद्रट के मत से प्रारम्भ में सन्नगरी वर्णन और नायक के वंश की प्रशंसा होती है। और उसमें अलौकिक और अतिप्राकृत तत्त्वों का भी समावेश रहता है। ये बातें प्राय कथा आख्यायिकाओं में मिलती है। अतः रूद्रट ने कथात्मक महाकाव्यों की स्थिति भी स्वीकार की है जिसे अन्य आचार्यों ने नहीं माना है। इस तरह पद्यबद्ध कथा का, जिसे पाश्चात्य देशों में रोमांसिक कथा–काव्य कहा जाता है, महाकाव्य पर जो प्रभाव पड़ा है उसे केवल रूद्रट ने ही समझा–समझाया है और इस परिधि में जायसी का महाकाव्य भी समाविष्ट किया जा सकता है केवल अन्त–विषयक लक्षण को छोड़ कर जिसमें विजयी नायक की समानता व्यक्त की गई है। पद्मावत में कथानायक रत्नसेन कुम्भलनेर के राजा देवपाल के हाथों मारा जाता है और दुर्ग पर अलाउद्दीन खिलजी का अधिकार हो जाता है। पद्मावत कथा के अन्त में नायक की विजय का विधान नहीं करता तो इसके अनेक कारण होने पर इसे महाकाव्यीय लक्षण–त्रुटि कहना ठीक न होगा जबकि वहां सब प्रकार की शेष गरिमा महाकाव्य–धर्म के पूर्णरूपेण अनुकूल है। जायसी के अनुसार पद्मावत मे मुख्य प्रतिपाद्य प्रेमी या साधक रत्नसेन के लिए प्रियतमा अथवा साध्य पद्मावती है जिसे वह प्राप्त कर लेता है और यह नायक की विजय है अर्थात् भारतीय दृष्टि से महाकाव्य–लक्षण की संपूर्ति फलस्वरूप पद्मावत सब प्रकार से महाकाव्य की कसौटी पर खरा कंचन है। जायसी के पद्मावत काव्य का कथानक लम्बा है, शैली उत्कृष्ट एवम् अलंकृत है, जीवन के विविध रूपों और कार्यों का वर्णन भी है और खण्ड़नाम्नी सर्गबद्धता भी प्रयत्नपूर्वक नाटकीय पंचसधियाँ भी ढूंढी जा सकती है।

आधुनिक युग के पाश्चात्य आलोचकों का दृष्टिकोण अपेक्षतया अधिक व्यापक बनने का इच्छुक जान पढ़ता है। डब्ल्यु पी के मतानुसार महाकाव्य में चरित्रों की कल्पना बहुत ही स्पष्ट और सम्पूर्ण रूप में की जाती है। समग्र जीवन के कार्य कलाप जीवनगाथा का रूप धारण कर लेते हैं. एवर क्रॉम्बी ने लिखा है कि बड़े आकार के कारण ही कोई काव्य महाकाव्य नहीं हो जाता। जब उसकी शैली महाकाव्य की शैली होगी तभी उसे महाकाव्य माना जाएगा और यह शैली कवि की कल्पना विचारधारा तथा उसकी अभिव्यक्ति में जुड़ी रही है। इस शैली के काव्य हमें एक ऐसे लोक में पहुंचा देते हैं जहां कुछ भी महत्त्वहीन और असारगर्भित नहीं होता। महाकाव्य में एक पुष्ट स्पष्ट और प्रतीकात्मक उद्देश्य होता है जो उसकी गति का आद्यन्त संचालन करता है। स्वच्छन्दतावाद के प्रवर्तक वाल्टेयार की परिभाषा, जिसे मैकनील टिक्सन ने सर्वाधिक व्यापक और समीचीन माना है इस प्रकार है ऐसे काव्य ग्रन्थ ही महाकाव्य नाम के अधिकारी हैं जिनमें किसी महती घटना का वर्णन होता है और जिन्हें समाज, महाकाव्य मानने लगता है। इसके बावजूद कोई महाकाव्य तब तक महाकाव्य कहा जाता रहेगा जब तक आप उसके गुणों के अनुरूप उसका कुछ और नामकरण नहीं कर देते। वाल्टेयार की इस परिभाषा में हमारा विवेच्य पद्मावत भी आ जाता है।

15.3 पद्मावत का महाकाव्यत्व

पद्मावत हिन्दी का महाकाव्य है। महाकाव्य के सभी लक्षणों का इस ग्रन्थ में सम्यक निर्वाह हुआ है। इसमें एक महाकाव्योचत कल्पना आन्तरिकता तथा बाह्य अनुभूतियां और विचारों का अत्यन्त कलात्मक प्रकाशन हुआ है। महाकाव्य के ये लक्षण निर्धारित किये जा सकते हैं जिनके आधार पर हम महाकाव्य पद्मावत का अध्ययन प्रस्तुत कर रहें है

1. **कथात्मक काव्य (प्रबंध काव्य)** भारतीय काव्यशास्त्र में मुक्तक और प्रबन्ध काव्य के दो भेद (स्वरूप) किये गये हैं। मुक्त शब्द में 'कन' प्रत्यय के योग से मुक्त शब्द बनता है जिसका अर्थ अपने आप में सम्पूर्ण या अन्य निरपेक्ष वस्तु होता है। ध्वन्या लोक के अनुसार जिस काव्य में पूर्वाध प्रसंग निरपेक्ष रस – चर्वण का सामार्थ्य होता है वही मुक्तक कहलाता है। इस प्रकार मुक्तक में कथात्मक प्रबन्ध या विषयगत बहुत लम्बे निबन्ध की योजना नहीं रहती। इसके विपरीत प्रबन्ध काव्य एक सुसंबद्ध पूर्वापर–क्रम–विनिष्ट काव्य रचना होती है. इसमें एक अक्षुण अनिवार्य सम्बन्ध निर्वाह होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है, ''प्रबन्ध काव्य में मानव जीवन का पूर्ण है उनमें घटनाओं की और स्वाभाविक क्रम के ठीक–ठीक निर्वाह के साथ हृदय को स्पर्श करने वाले उसे नाना–भावों के रसात्मक अनुभव करने वाले प्रसंगों का समावेश होना चाहिए। इति वृत्तमात्र के निर्वाह से रसानुभाव नहीं कराया जा सकता। इन लक्षणों के संदर्भ में देखने पर यह स्पष्ट ही है कि पद्मावत एक प्रबन्ध काव्य है। पद्मावत को महाकाव्य ही माना जाता है जो कथात्मक काव्य का महत्तम कृतरूप भेद है। पद्मावत में आद्यन्त एक विशाल कथानक का आयोजन है, साथ अन्य प्रासंगिक वृत्तान्त भी इसी महती कथा के उपाश्रित हैं। यह प्रबन्धात्मकमता महाकाव्य का सर्वप्रथम लक्षण है जो 'पद्मावत' में है।

2 **छन्दो–बद्धताः**– शपद्मावत की सम्पूर्ण कथा एक निश्चित क्रमानुसार आद्यन्त दोहा – चौपाई छन्द में कही गई है। यह भी महाकाव्य का लक्षण है।

3. **विनिबद्ध कथा प्रवाहः**– कथा प्रवाह से तात्पर्य होता है कि मुख्य कथानक बिखरता हुआ न चले उसकी एक व्यवस्थित गति हो। सामान्यता यह लक्षण भी 'पद्मावत' में है, यद्यपि बीच में आये हुए अवान्तर प्रसंगों के वर्णनों में 'पद्मावत' का कवि प्रायः अनावश्यक देरी लगा कर थोड़ी देर को कथानक का मुख्य सूत्रपाठक की दृष्टि से ओझल – सा कर देता है।

'पद्मावत' में चितौड़ नरेश राजा रत्नसेन और सिंहलद्वीप की पद्मावती की प्रणयाधारिणी मिलन कथा है। पूर्वार्ध में यह कहानी ही प्रमुख है जिसमें क्रमशः पद्मिनी के जन्म, यौवन, मिलन और विवाह का वर्णन किया गया है और उत्तरार्द्ध में अलाउद्दीन की चित्तौड़ पर चढ़ाई और अन्त में रत्नसेन की मृत्यु तक की कथा है। इन उभय भागों में एक महाकाव्योचित जीवन सुसंगठितता विद्यमान है। इतनी लम्बी कहानी में रोचकता की नित्य नियोजना जायसी की कथा प्रभाव सामर्थ्या का बड़ा भारी गुण है। प्रारम्भ से लेकर पद्मावती के विवाह तक की घटनाएं कथा का आरम्भ भाग है. राघव चेतन देश निकाला खण्ड तक, मध्य भाग है और शेष अन्त भाग है। इस प्रकार कथा का सांगोपांग सानुपातिक विन्यास प्रत्यक्ष और सुस्पष्ट है।

'पद्मावत' का पूर्वाद्ध प्रायः कल्पित है जिसे उत्तरार्द्ध के ऐतिहासिक कथा–प्रसंगों से कवि ने बड़ी योग्यता पूर्वक मिला दिया है। यह कथात्मकता बेजोड़ है, जायसी की यह प्रबन्ध कल्पना और संबंध–निर्वाह क्षमता अद्भुत कार्व्य–प्रतिभा कौशल की प्रतीक है। डॉ शिवसहाय पाठक ने लिखा है, 'पद्मावत' का कथानक पूर्णतः सुसंगठित और सुश्रृंखलित है। इस प्रकार अरस्तु की कार्यन्विति और पाश्चात्य देशीय कार्यावस्थाओं की कसौटी पर 'पद्मावत' पूर्णतः खरा उतरा है। 'पद्मावत' में कोई भी घटना कथात्मता की दृष्टि से अनावश्यक नहीं है। सभी घटनाएं और प्रसंग एक दूसरे से

कार्य–कारण श्रृंखला में बंधे हैं। प्रत्येक घटना कथा–प्रवाह में योग देती है। पद्मावत का कथानक पूर्णतः सुसंगठित, कलात्मक और अन्वति युक्त है।

4. अलंकृत वर्णनः– अलंकृत वर्णन महाकाव्य की अगली महत्त्वपूर्ण विशेषता है जिसका आशय, वर्णन की उस ललित परिपाटी पद्धति से है जिसमें कलात्मकता का वह सर्वांगीण समावेश महाकाव्यीय वर्णनों के लिये उपयुक्त माना जाता है। जिसके द्वारा अपने गौरव के अनुकूल गाम्भीर्य एवम् सौष्ठव महाकाव्य कही जाने वाली कृति को प्राप्त हो सके। वर्णनों की यह अलंकृत शैली और विषय को अतिसामान्य होने से रोकने के लिये आवश्यक है। पद्मावत में स्थान–स्थान पर इस प्रकार की उक्तियां और अभिव्यक्तियां 'तेहि दुख भये पलास निपाते' 'उन्ह बानन अस को जो न मारा' 'ससि मुख अंग मलयोगरी वासा' 'बेनी छोरी झार जौं बारा। सरग पतार होहि अंधियारा'। इसी अलंकृतता के अन्तर्गत है जिनके श्रवण मात्र से रसज्ञ पाठक की कल्पना में एक दिव्य भव्यतता की सृष्टि होती है। अगर सहानुभूतिपूर्वक विचार करें तो हम जायसी की ऊहा को भी इसी के अन्तर्गत ले सकते हैं। अलंकृत वर्णन–शैली के सबसे अधिक भव्य दर्शन, हिन्दी में, पूज्य गोस्वामी तुलसीदास जी के रामचरितमानस में ही होते हैं। विषय तो महत्व का होना ही चाहिए साथ ही गुरूता और महत्ता के लिए हम शैली–विलास को महाकाव्य में कम महत्त्वपूर्ण नहीं ठहरा सकते।

5. सुनियोजित सांगोपांगताः– पद्मावतकार ने लिखा है आदि अंत जस गाथा अहै। लिखि भाखा – चौपाई कहै इसे व्यापक अर्थ में लेकर हम यह जायसी के महाकाव्य की प्रतिष्ठात्री वाणी कह सकते हैं। साहित्य को समाज का या जीवन का चित्र कहा जाता है इस रूप में यदि हम साहित्य की विधाओं और स्वरूप पर इस दृष्टि से विचार करें कि जीवन का अधिकतम पूर्णत्व–समवेत चित्र– विधान साहित्य के किस प्रकार में संभव है तो उत्तर केवल महाकाव्य होगा। तुलसी के रामचरितमानस में जिस प्रकार राजा प्रजा धनी–निर्धन, कुलीन–अकुलीन, खल–राक्षस, इहलोक – परलोक की सुविनियोजित सांगोपांग व्यंजना हुई उसी प्रकार जायसी ने अपने पद्मावत में भी जहां एक और लोकपक्ष की सम्यक् मीमांसा और विवृति की है वही दूसरी और आध्यात्मिक सत्यों की भी विनियोजित विवेचना की है। किस प्रकार निष्ठावान प्रेमी अपनी प्रियतमा को प्राप्त करने के लिये सारे विघ्न–बाधाओं पर विजय प्राप्त कर सात समुद्र पार जाकर भी सफलता प्राप्त करता है। किस प्रकार आत्म–निष्ठता की सीमा का त्याग कर चराचर में परिव्याप्त परमांशी परमात्मा से साधक साक्षात्कार कर स्वयं वही हो जाता है, यह सब पद्मावत में है। मातृ प्रेम, स्वदेश–प्रेम, पत्नी – प्रेम, गुरु–शिष्य–प्रेम, सपत्नी – ईर्ष्या, गुरू की महत्ता खल की विघ्न–वृति, विविध कुटिलता समाज के तत्कालीन स्वरूप के परिवेश में होते हुए भी जीवन और जगत का शाश्वत स्वरूप निर्धारित करने वाली कल्पनायें और यर्थाथताएं सारी की सारी अपने पूरे अस्तित्व के साथ पद्मावत में समुपस्थित हैं। यह उसकी सुनियोजित सांगोपांगता का उदाहरण है।

6. महत्त्वपूर्ण नायकः– सर्वप्रथम भारत के नाट्यशास्त्र में नाटक के प्रमुख तत्वों के रूप में नायक के भेदों का उल्लेख नाटक की कथावस्तु के आधार पर किया गया है और इसी नायक स्वरूप एवम नायक–भेद को परवर्ती नाट्यशास्त्रियों के अतिरिक्त काव्यशास्त्रियों ने भी स्वीकर एवं तदनुसार ही महाकाव्य के नायक के लक्षण भी निर्धारित कर लिये। 'दशरूप' में नायक के सामान्य गुणों को गिनते हुए उसे नेता, विनीत, मधुर त्यागी, दक्ष, प्रियवद, रक्तालोक वाग्मी, रुढ़वेष तथा स्थिर माना गया है। उसे बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा तथा कलावान स्वीकार किया गया है। वह शूर, दृढ़ता, तेजस्वी शास्त्र–दृष्टि वाला और धार्मिक कहा गया है। ये सभी विशेषतायें पद्मावत के नायक रत्नसेन में भी हैं, प्रत्येक गुण की प्रमाणदात्री उक्तियां और घटनाएं पद्मावत में संकलित की जा सकती हैं। इनके अतिरिक्त नायक की प्रकृति प्रवृत्ति के अनुसार उसके धीर ललित, धीर प्रशांत, धीरोदाप्त भेद भी किये गये हैं। इससे इतना तो स्पष्ट ही है कि इस प्रकार 'घृतिः' को नायक का अनिवार्य लक्षण माना गया है और आगे निश्चिन्त कलासक्त, सुखी तथा कोमल स्वभाव नायक धीर ललित होता है। पद्मावत का रत्नसेन, धीर ललित नायक है।

रत्नसेन में धीरोदात्त नायक के सभी गुण पाए जाते हैं। उसमें साहस, वीरता, क्षमाशीलता, जातीय गौरव विनयशीलता, प्रेम में दृढ़ता आदि सभी गुण है। इस दृष्टि से रत्नसेन महाकाव्योचित नायक सिद्ध होता है। परन्तु भारतीय काव्यशास्त्र की दृष्टि से वह धीरोदात्त नायक के आदर्श को पूर्ण नहीं कर पाता। वह राम, युधिष्ठिर, विक्रमादित्य आदि धीरोदात्त नायकों के समान ऊँचा नहीं उठ पाया है और हमारे सम्मुख एक आदर्श उपस्थित न कर एक सामान्य मानव का ही प्रतीक रह जाता है। वह समाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में कोई आदर्श नहीं उपस्थित कर पाता। राजनीतिज्ञता के क्षेत्र में उसके सरदार गोरा–बादल उससे अधिक दूरदर्शी और बुद्धिमान हैं। इसके अतिरिक्त उसमें कुछ ऐसे दुर्गुण भी हैं। जो सामान्य मनुष्यों में प्रायः पाए जाते हैं, जैसे द्रव्य लोभ, धन का गर्व, अदूरदर्शिता, उतावलापन आदि। नायक तथा अन्य पात्रों की इसी चरित्रगत अपूर्णता एवं निर्बलता को लक्ष्य पर शुक्ल जी ने लिखा है कि 'पद्मावत' में हम न तो किसी व्यक्ति के ही स्वभाव का ऐसा प्रदर्शन पाते है जिसमें कोई व्यक्गित विलक्षणता पूर्ण रूप में लक्षित होती है और न किसी वर्ग या समुदाय ही की विशेषताओं का विस्तृत प्रत्यक्षीकरण हमें मिलता है।

मनुष्य प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण का प्रमाण हमें जायसी के प्रबंध के भीतर नहीं मिलता। संभवतया जायसी की इन्हीं सीमाओं को देख शुक्ल जी ने 'पद्मावत' को कहीं भी महाकाव्य की संज्ञा देकर उसे प्रबन्धकाव्य ही कहा है जायसी की चरित्र योजना न तो आदर्शवाद पर आधारित है और न यथार्थवाद पर ही। इसी कारण वह रत्नसेन को न तो मध्यकालीन आदर्श समान्तों के रूप में अंकित करा सके हैं और न रत्नसेन की वैयक्तिक, जातिगत या सामान्य मानवीय विशेषताओं का ही अंकन हो सका है। इसका कारण यह है कि जायसी उक्त दोनों काव्य दृष्टियों के प्रति पूर्णतः निरपेक्ष थे। रत्नसेन के न चरित्र में उनका एकमात्र उद्देश्य था उसे एक आदर्श प्रेमी के रूप में चित्रित करने का। काव्य शास्त्र की दृष्टि से ऐसा प्रेमी नायक धीरललित माना जाता है, जो स्वभाव से कोमल, विलासप्रिय तथा ललित कलाओं में रूचि रखने वाला होता है परन्तु इस दृष्टि से आदर्श प्रेमी होते हुए भी रत्नसेन को धीरललित नायक नहीं माना जा सकता। उसके चरित्र में धीरोदात्त नायक के लगभग सभी अपेक्षित गुण मिल जाते हैं। उसके चरित्र की यह बहुमुखी विशेषता ही उसे एक महान् चरित्र बना देती है इसी कारण उसे महाकाव्य के नायक पद का अधिकारी माना जा सकता है।

इस सब का अर्थ यही है कि महाकाव्य द्वारा किसी महत् एवम् उदात् चरित्र की प्रतिष्ठा होनी चाहिए यही कारण है कि प्रायः सभी महाकाव्य चरित्र काव्य होते रहे है। इसी नायक तत्त्व के अन्तर्गत नायिका तथा अन्य पात्र की और चरित्र चित्रण आदि बातें भी आ जाती हैं। सामान्य लक्षणों की दृष्टि से महाकाव्य के उपयुक्त ही इसमें नायक अथवा अन्य पात्रों के चरित्र हैं। परन्तु जिसे एक जीवन्त व्यक्ति चरित्र कहते हैं ऐसे इसमें अलाउद्दीन को छोड़कर किसी भी एक पात्र का नहीं है। नारी पात्रों में हम एक ही हिन्दू नारी के रूप देखते हैं और रत्नसेन का चरित्र सम दृष्टियों से अत्यन्त निर्बल प्रतीत होता है इसके अतिरिक्त कि इस कथा का नायक है और इस नाते सर्वत्र उसकी चर्च अपेक्षित अनिवार्य है। परन्तु पद्मावत को एक आध्यात्मिक काव्य मानकर हमारी इस दोष–दृष्टि का स्थान नहीं रह जाता।

7. उद्देश्यः– उद्देश्य की दृष्टि से इस ग्रन्थ का उद्देश्य महान है। इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से 'काम' की प्राप्ति ही प्रधान लक्ष्य है। इसमें काम ही साध्य है। पद्मावत न तो धर्म–सिद्धान्त–प्रचारक ग्रन्थ है न अर्थोपार्जन उसका लक्ष्य है और न मोक्ष की प्राप्ति ही। कुछ आलोचकों ने मोक्ष को ही इसका प्रधान लक्ष्य माना है परन्तु वह तभी स्वीकार किया जा सकता है जब हम पद्मावत को अन्योक्ति स्वीकार कर लें। अतः इसका प्रधान लक्ष्य काम की प्राप्ति ही माना जायेगा। और इस लक्ष्य की प्राप्ति होती है नायक की प्रेम मार्ग में दृढ़ता और एक निष्ठता द्वारा ही जायसी ने अपने इस महान लक्ष्य द्वारा उदार मानवता का व्यापक प्रसार और मानव हृदय का विस्तार दिखाया है इस प्रेम कथा को पढ़ते समय पाठक जाति, धर्म राष्ट्र आदि के भेदों से ऊपर उठ कर विशुद्ध मानव बन जाता है। उसके हृदय का यह परिष्कार प्रेम की महानता और उदात्तता की स्थापना कर जाता है। इस हृदय परिष्कार का कारण

बताते हुए शुक्ल जी ने लिखा है कि, ''एक ही गुप्त तार मनुष्य मात्र के हृदय से होता हुआ गया जिसे छूते ही मनुष्य सारे बाहरी रूप रंग के भेदों की ओर से ध्यान हटा एकत्व का अनुभव करने लगता है। जायसी ने मानव मात्र के उसी गुप्त तार को झंकृत कर उसके का महान कार्य किया है। और देश को इस कौशल एवं प्रभविष्णुता के साथ पूरा करना सामान्य प्रतिभा वाले कवि का कार्य नहीं था। इसके लिए महान काव्य प्रतिभा अपेक्षित होती है जो जायसी में पूर्ण रूप से विद्यमान थी। जायसी की इसी महान काव्य प्रतिमा का विवेचन करते हुए। डॉ० शम्भुनाथ सिंह ने लिखा है– ''जायसी की प्रतिभा के दर्शन सबसे अधिक मत के रूप सौन्दर्य और विरही वर्णन में होते हैं। जिनमें परम सत्य के चिरन्तन, अनन्त और अनिर्वचनीय सौन्दर्य को मानव जगत में प्रतिबिम्बित करके भी उसकी विराटता और अनन्तता को नहीं नष्ट होने दिया, साथ ही उस अनिर्वचनीय वर्ण्य वस्तु की आभा को पूर्णतः झलक भी दिया है उसी तरह विरह वर्णन मानवीय विरह के आवरण में परमात्मा से युक्त जी की और वर्जन है। इस प्रकार के समासोक्ति पूर्ण वस्तु वर्णन और प्रतीकात्मक शैली की अभिव्यक्ति विराट काव्य चेतना की ही देन हो सकती है।.... जायसी में वह काव्य शक्ति समुचित मात्रा में विद्यमान है जिसके कारण 'पद्मावत' में विविध प्रकार के सम्बन्धों का निर्वाह, विचारों और भावनाओं, कथात्मकता और वर्णनात्कता, गीतितत्व और नाट्यतत्व, बौद्धिकता और भावकुता आदि का सुन्दर सामंजस्य दिखाई पड़ता है।

जायसी के इस महान् उद्देश्य और महती काव्यशक्ति का रहस्य उनकी उस महान प्रेरणा में छिपा हुआ है जिससे प्रेरित होकर उन्होंने पद्मावत की रचना की थी। जायसी प्रेम के दिव्य स्वरूप की स्थापना करना चाहते थे। वे उसे भौतिक प्रेम के सामान्य स्तर से ऊपर उठाकर उसे दिव्य रूप प्रदान करने के इच्छुक थे। इसी कारण उन्होंने ''शारीरिक शक्ति और भौतिक अवरोधों के ऊपर उस अनन्य प्रेम की विजय'' दिखाई है। ''जो अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच कर परम शान्ति का जनक होता है।'' उद्देश्य की महानता, महती काव्य प्रतिभा एंव महान प्रेरणा ने ही पद्मावत में गुरुता, गम्भीरता और महत्व का समावेश कर उसे महाकाव्य पद का योग्य अधिकारी बना दिया है।

8. काव्य शैली एंव रस व्यंजनाः– महाकाव्य की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता उसमें चित्रित युग जीवन के विविध रूपों के विस्तार एंव व्यापकता में भी मानी जाती है। इस दृष्टि से भी 'पद्मावत' एक सफल महाकाव्य सिद्ध होता है। इसमें विस्तृत कार्य क्षेत्र चित्तौड़ से लेकर सिंहल और दिल्ली तक फैला हुआ है। शैली की दृष्टि से भी विद्वानों ने इसे महाकाव्य माना है। इसकी शैली उदात्त और आकर्षक है। उसमें पर्याप्त गरिमा के दर्शन होते है। यद्यपि शैली की दृष्टि से इसमें अनेक दोष मिलते है, जैसे– काव्य– दोष छन्द – दोष, न्यूनपदत्त्व दोष, अनपेक्षित और अरोचक प्रसंगों का सन्निवेश आदि परन्तु इसकी शैली इतनी अकृत्रिम सरल प्रवाहपूर्ण और सरस है कि उसके सम्मुख इन दोषों की ओर अधिक ध्यान नहीं जा पाता। इसकी सहज स्वाभाविक सरलता मन को मुग्ध बनाए रखती है। डॉ० शम्भुनाथ सिंह के शब्दों में किसी शैली सरल किन्तु गम्भीर सहज किन्तु उदात्त माधुर्यपूर्ण किन्तु गरिमामयी है।'' इस व्यंजना की दृष्टि से इस काव्य में किस रस को प्रधान माना जाये इस सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। इस काव्य में प्रारम्भ से लेकर लगभग अन्त तक रति– भाव पूर्ण व्यंजना हुई है अतः शुक्ल जी इसमें श्रृंगार रस को प्रधान मानते हैं। अन्त में 'करुण' और 'शान्त' रस का विचित्र परन्तु अत्यन्त आकर्षक सम्मिश्रण मिलता है।

7. अन्य वर्णनः– महाकवि जायसी ने पद्मावत में महाकाव्य के अनुरूप ही अन्य वर्णन भी किया है चरित्र नायक और नायिका के वर्णन में उन्होंने कोई कसर नहीं उठा रखी। जहां उन्होंने रत्नसेन के रूप सौंदर्य, पराक्रम साहस और तेजस्विता का खुल कर वर्णन किया है वहीं पद्मिनी के वर्णन में नख–शिख वर्णन की परम्परा का पूरा लाभ उठाया है। यही नहीं उन्होंने उसके अंग–प्रत्यंग की मोहक छवि भी प्रस्तुत की है। नायक नायिका के अतिरिक्त कवि ने पद्मावत में विविध वर्णन की परम्परा को भी अक्षुण्ण रखा है। उन्होंने बनखंड तथा समुद्रों का व्यापक वर्णन किया

है। मास, दिन, तिथि और प्रकृति के अन्य स्वरूप की अवतरणा भी उन्होंने की है। इन सब बातों से स्पष्ट हो जाता है कि पद्मावत को एक पूर्ण महाकाव्य बनाने में कवि ने कोई कसर उठा नहीं रखी।

15.4 सारांश वास्तव में पद्मावत अपनी काव्यगत विशेषताओं एवं लक्षणों के कारण हिन्दी साहित्य का एक अलौकिक महाकाव्य है। अन्योक्तिपरक होने के कारण तथा प्रतीकात्मक शैली का पूर्ण निर्वाह न होने के कारण भले ही उसके महाकाव्यत्व को संदेह की दृष्टि से देखा गया हो परन्तु अन्य गुणों की व्यापकता के कारण उसके महाकाव्य पर कोई आंच नहीं आने पाती वह महाकाव्यत्व की कसौटी पर खरा उतरता है।

व्यापक प्रभाव और लोकप्रियता की दृष्टि से पद्मावत को रामचरितमानस के उपरान्त मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में अद्वितीय स्थान का अधिकारी महाकाव्य माना जा सकता है। यह ग्रन्थ सूफियों में अत्यधिक लोकप्रिय रहा है। इसकी सबसे अधिक हस्तलिखित प्रतियों का मिलना इस बात का प्रमाण है। पद्मावत का जीवन–दर्शन सर्वभौम और सर्वकालिक है। इसमें मानव की मूल भावना 'काम' का परिष्कार और उन्नयन कर निर्वेद का वह अमर सन्देश दिया गया है जिसकी आज के संघर्षपूर्ण युग में मानव के लिए सबसे अधिक आवश्यकता है। यदि आज हम 'पद्मावत' के अन्तिम सन्देश–निर्वेद में अनन्त शान्ति की प्राप्ति को स्वीकार कर अपना लें आज के युग जीवन की अनेक समस्याओं का स्वतः ही निराकरण हो जाएगा। यहाँ रत्नसेन और पदमावती का जीवन व्यापी संघर्ष वरेण्य न होकर उसकी शान्त परिगति ही वर्तमान विश्वव्यापी अशान्ति के समाधान का एकमात्र साधन मानी जा सकती है।

15.5 स्व–मूल्यांकन

प्रिय विद्यार्थियों !

इस अध्याय में आपने जाना कि वास्तव में पद्मावत अपनी काव्यगत विशेषताओं एवं लक्षणों के कारण हिन्दी साहित्य का एक अलौकिक महाकाव्य है। आपने यह भी समझा कि पद्मावत हिन्दी का महाकाव्य है और उसमे महाकाव्य के सभी लक्षणों का सम्यक निर्वाह हुआ है। अब आप निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिह्न द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

प्र) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिएः–

1) पद्मावत के नायक राजा रत्नसेन कहाँ के निवासी थे?

क) दिल्ली ख) चितौड़ ग) राजस्थान घ) अजमेर

2) पद्मावत की नायिका पद्मावती कहां की निवासी थी?

क) सिंहलद्वीप ख) दिल्ली ग) अजमेर घ) राजस्थान

3) पद्मावत हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत सूफी परम्परा का प्रसिद्ध कहा जाता है।

क) खण्डकाव्य ख) मुस्तक काव्य ग) महाकाव्य घ) प्रबन्ध काव्य

4) मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत किस भाषा में लिखा गया है?

क) ब्रजभाषा ख) खड़ी बोली ग) फारसी घ) अवधी

5) मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावत की रचना कब की ?

क) 1540 ख) 1620 ग) 1534 घ) 1574

प्र2) रिक्त स्थान भरोः–

प्रिय विद्यार्थियो!

अभी तक प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन आप निम्नलिखित रिक्त स्थान भरकर करें।

क) रत्नसेन में ––––––––– नायक के सभी गुण पाए जाते हैं।

ख) पद्मावत का विस्तृत कार्य क्षेत्र चितौड़ से लेकर सिंहल और –––––––––– तक फैला हुआ है।

ग) रत्नसेन में साहस वीरता तथा––––––––––––– आदि सभी गुण हैं।

घ) पद्मावत की शैली उदात्त और ––––––––––––– है।

प्र3) सही / गलतः–

क) 'पद्मावत' का पूर्वाद्ध प्रायः कल्पित है, जिसे उतरार्द्ध के ऐतिहासिक कथा–प्रसंगों से कवि ने बड़ी योग्यतापूर्वक मिला दिया है। ( )

ख) 'पद्मावत' का कथानक पूर्णतः सुसंगठित और सुश्रृंखलित है। ( )

ग) 'पद्मावत' हिन्दी का खण्डकाव्य है। ( )

15.6 कठिन शब्द

क) निरपेक्ष – निराश्रित

ख) सर्वांगीण – समस्त षरीर में व्याप्त

ग) रसज्ञ – रस का ज्ञाता

घ) अर्थोपार्जन – रोजगार

15.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्नः1 महाकाव्यगत लक्षणों के आधार पर पद्मावत के महाकाव्यत्व की समीक्षा कीजिए।

उ01 –––––––––––––––––––––––––––––––––

प्रश्नः2 जायसी द्वारा रचित 'पद्मावत' के महाकाव्यत्व की समीक्षा कीजिए।

उ02 ————————————————————————————————

____

____

____

____

____

15.8 उत्तर कुंजी

- बहु विकल्पीय प्रश्न

  1. चितौड़ 2. सिंहलद्वीप 3. महाकाव्य 4. अवधी 5. 1540

- रिक्त स्थान

  1. धीरोदात्त 2. दिल्ली 3. क्षमाशीलता 4. आकर्षक

- सही या गलत

  1. सही 2. सही 3. गलत

15.9 पठनीय पुस्तकें

1. पद्मावत का काव्य वैभव– मनमोहन गौतम, माई कमिलाना कंपानी आपा इंडिया, 1974।
2. मलिक मोहम्मद जायसी और उनका काव्य– शिव सहाय पाठक, साहित्य भवन इलाहाबाद, 1989।

भ्रमरगीत की परम्परा में सूरदास का स्थान

रूपरेखा

16.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

16.2 प्रस्तावना

16.3 भ्रमरगीत परम्परा में सूरदास का स्थान

16.4 भ्रमरगीत की विशेषताएँ

16.5 सारांश

16.6 स्व—मूल्यांकन

- बहु विकल्पीय प्रश्न
- रिक्त स्थान
- सही या गलत

16.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

16.8 कठिन शब्द

16.9 उत्तर कुंजी

16.1 पठनीय पुस्तकें

16.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

1. प्रिय विद्यार्थियो! प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य आपको भ्रमरगीत परम्परा में सूरदास के स्थान से अवगत करवाना है।

2. भ्रमरगीत की विशेषताओं से परिचित होना।

अपेक्षित परिणाम

– अध्ययनोपरान्त इस अध्याय में विद्यार्थी जान पायेंगे कि सूरदास पहले कवि थे जिन्होंने भागवत् के भ्रमर—गीत —प्रसंग को लेकर रचना की थी। उन्होनें भ्रमर गीत प्रंसग को लेकर एक विशिष्ट परम्परा का सूत्रपात किया।

– सूरदास का भ्रमरगीत प्रसंग भागवत की भित्ति पर आधारित होते हुए भी अपने विशिष्ट उद्देश्य को लेकर चला है। उसको उन्होंने अपनी मौलिकता के द्वारा सर्वथा एक रुप में प्रस्तुत किया।

– आप साथ ही यह जान सकेंगे कि यहाँ पर उद्धव को प्रतीक बनाकर निर्गुण भक्ति पर सगुण भक्ति की विजय दिखलाना सूर का अभीष्ट रहा है। इसलिए उनके उद्धव निर्गुण ब्रह्म के ज्ञान से भरपूर दिखलाये गये हैं।

16.2 प्रस्तावना

भ्रमरगीत भारतीय काव्य की पृथक काव्य परम्परा है। सूरसागर सूरदासजी का प्रधान एवं महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस में प्रथम नौ अध्याय संक्षिप्त है, पर दशम स्कन्ध का बहुत विस्तार हो गया है। इसमें भक्ति की प्रधानता है। इसके दो प्रसंग 'कृष्ण की बाल लीला' और भ्रमरगीत–प्रसंग' अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। इसके विषय में आचार्य शुक्ल कहते हैं, ''सूरसागर का सबसे मर्मस्पर्शी और वाग्वैदग्ध्यपूर्ण अंश भ्रमरगीत है।'' आचार्य शुक्ल ने लगभग 400 पदों को सूरसागर के भ्रमरगीत से छांट कर उनको 'भ्रमरगीत सार के रुप में' संग्रह किया था। भ्रमरगीत में सूरदास ने उन पदों को समाहित किया है जिनमें मथुरा से कृष्ण द्वारा उद्धव को ब्रज संदेश ले कर भेजते हैं।

16.3 भ्रमरगीत परम्परा में सूरदास का स्थान

भ्रमरगीतः स्वरूप और परम्परा

'भ्रमरगीत' का अर्थ

'भ्रमरगीत' शब्द भ्रमर' एवं 'गीत' दो शब्दों से मिलकर बना हैं। भ्रमर काले रंग का उड़नेवाला जन्तु होता है, जिसे मधुप, मधुकर, अलि, अलिन्द, भुंग, सारंग आदि विविध नामों से पुकारा जाता है। दूसरा शब्द 'गीत' है, जिसका सामान्य अर्थ 'गाना' होता है। इस प्रकार 'भ्रमरगीत' का शाब्दिक अर्थ 'भौंरे का गीत' अथवा 'भ्रमर से सम्बन्धित गीत' हुआ।

साहित्य में 'भ्रमर गीत' शब्द अपने विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इस सन्दर्भ में इसका संबंध कृष्ण तथा इनके मित्र ज्ञानी उद्धव से है। कृष्ण जब मथुरा में चले गए तो उन्होंने वियोगिनी गोपिकाओं को समझाने के लिए उद्धव को भेजा। उद्धव के समक्ष गोपियों ने भ्रमर को सबोधित कर अपने भावों को मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया। यही कारण है कि इस प्रसंग को 'भ्रमर गीत' की संज्ञा से अभिहित किया गया।

भ्रमरगीत–परम्परा

''भ्रमरगीत''–परम्परा का मूलाधार श्री कृष्ण की कथा है। उस समय प्रेम और भक्ति, ज्ञान व योग के संघर्ष के समुचित समाधानार्थ ही भ्रमरगीत की कल्पना की गई थी। इसका सर्वप्रथम उल्लेख हमें श्रीमद्भागवत पुराण में देखने को मिलता है। उसके दशम् स्कन्ध के पूर्वार्द्ध में अध्याय 47 के 12 से 21 श्लोक तक भ्रमर को लक्ष्यकर गोपियों द्वारा उपालम्भ दिऐ गये हैं। इससे भी पूर्व महाकवि कालिदास कृत 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में भी भ्रमर का उल्लेख हुआ है, जहाँ भ्रमर शकुन्तला के शरीर पर बैठ गया तो ईष्यालु स्वर में दुष्यन्त ने उससे कहा कि उसके बार–बार निषेध करने पर भी तू उसके अधरों के मधुर रस को पी रहा है। वास्तव में रस–तत्व का भोग करके सफल तो तू ही हुआ, हम तो यों ही भटकते रहे। (अंक 1) भागवत में भ्रमर को रसिक प्रेमी के अर्थ में ही प्रस्तुत किया गया है भागवत में गोपियों की विरह–व्यथा को दृष्टि में रखकर कृष्ण ने उन्हें सांत्वना देने–हेतु उद्धव को गोकुल भेजा। वहाँ उद्धव सर्वप्रथम नन्द –यशोदा से

1. भक्ति–काल
2. रीति–काल
3. आधुनिक–काल

1. भक्ति–काल

भक्ति काल में भ्रमरगीत –परम्परा के दर्शन हमें सगुण भक्ति की कृष्ण भक्ति शाखा के कवियों की रचनाओं में मिलते हैं, जिनमें महाकवि सूर, नन्ददास, परमानन्ददास, वृन्दावनदास तथा रामभक्त तुलसी आदि प्रमुख हैं।

सूरदासः– सूरदास ने श्रीमद्भागवत के दशम् स्कन्ध की कथा का आधार ग्रहणकर भ्रमरगीत की रचना की। पौराणिक बिन्दुओं से जो रेखाएँ अंकित हुई, उनमे कवि ने रंगों का सुन्दर एवं मौलिक संयोजन किया , जिससे सूर का भ्रमरगीत हिन्दी–काव्य की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निधि बन गया।

सूर ने अपने 'सूरसागर' मे तीन भ्रमरगीतों की रचना की–

1. प्रथम रूप में कवि ने भागवत के भ्रमरगीत को अपने रूप से प्रस्तुत कर दिया। इसकी रचना दोहा–चौपाई छन्द में की गई।
2. दूसरा भ्रमरगीत केवल एक ही पद में मिलता है। इसमें गोपियों को उद्धव का उपदेश, गोपियों का उपालम्भ, उद्धव का मथुरा लौटकर कृष्णा के समक्ष गोपियों के विरह का मार्मिक वर्णन कृष्ण का मूर्च्छित होना आदि सारे प्रसंग एक ही पद में उल्लिखित हुए हैं। वस्तुतः इसे सूर के तीसरे भ्रमरगीत की भूमिका माना जा सकता है।
3. तीसरा भ्रमरगीत अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत बना है। 'सूरसागर' के 4078 वें पद से लेकर 4710 वें पद तक इसका विस्तार हुआ है। यह अधिक सरस एवं काव्यमय बन सका है। इसमें उद्धव व गोपियों के वार्तालाप के बीच में प्रथम बार भ्रमर उड़कर आया। उसी भ्रमर के माध्यम से गोपियों ने जी भरकर उद्धव और कृष्ण के प्रति व्यंग्य–बाणों के प्रहार किये। सूर का यह भ्रमरगीत हिन्दी–काव्य के इतिहास का गौरव–बिन्दु कहा जा सकता है। इसमें कवि ने निर्गुण–भक्ति का विरोधकर सगुण–भक्ति की विजय बतलाई है।

नन्ददासः– सूर के पश्चात् नन्ददास कृत 'भँवरगीत' इस परम्परा की दूसरी महत्त्वपूर्ण कृति के रूप में सामने आता है। इसमें केवल 75 पदों की रचना की गई है। इसमें 28 वें पद तक केवल दार्शनिक विवाद प्रस्तुत हुए हैं, इसके उपरान्त 26 वें पद में गोपियों के समक्ष कृष्ण का रूप स्पष्ट किया गया है। 44 वें पद तक गोपियों का मर्म–स्पर्शी विरह–वर्णन मिलता है। इसी समय भ्रमर का प्रवेश हुआ है, इसी के साथ उपालम्भ प्रारम्भ किया गया है। इन पदों में से गोपिकाओं के रुदन का उल्लेख मिलता है। तदनन्तर 69 वें पद तक उद्धव का मनोद्वन्द्व एवं विचार परिवर्तन व्यक्त हुआ है।

इसके आगे कृष्ण व उद्धव की संवाद–योजना की गई है, जिसमें उद्धव के कृष्ण–रूप के दर्शन के साथ भ्रमरगीत को समाप्त कर दिया गया है। नन्ददास ने 'भँवरगीत' में श्रीमद्भागवत के परम्परागत तथ्यों की समुचित रक्षा करते हुए अपने मौलिक विचार–बिन्दुओं की भी प्रतिष्ठा की है।

परमानन्ददासः– परमानन्ददास अष्टछाप के कवियों की परम्परा में भ्रमरगीत के विकास में सहायक माने जा सकते है। उन्होंने अपने भ्रमर–गीत की रचना चौपाई व साखी छन्दों में की है। यहाँ भ्रमर का प्रवेश नहीं कराया गया है, किन्तु 'मधुकर' शब्द का संबोधनात्मक प्रयोग अवश्य हुआ है, इस रूप में स्पष्टतः कवि ने भ्रमरगीत के प्रतीकार्थ को ही ग्रहण किया है। परमानन्ददास ने सूर व नन्द की भाँति ही ज्ञान का खण्डन कर सगुण भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन किया है। यहाँ उद्धव का ज्ञान गोपियों की मार्मिक विरह–व्यथा को देखकर चूर–चूर हो गया है। वस्तुतः यह कवि की अपनी कल्पना है।

अष्टछाप के इन तीन कवियों के अतिरिक्त अन्य अष्टछाप के कवियों ने भ्रमर–गीत की रचना में कहाँ तक योगदान दिया, इस विषय पर कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं होती। कृष्णदास के कुछ पद इस सम्बन्ध में मिलते हैं, पर ठोस प्रमाण नहीं मिल पाए हैं। चतुर्भुजदास ने भी दो–तीन पद लिखे, ऐसा माना गया है। इनके अतिरिक्त कुम्भनदास, गोविन्द स्वामी, छीतस्वामी आदि की रचनाओं में भ्रमरगीत नहीं मिलता।

वृन्दावनदासः— भक्तिकालीन कवियों में वृन्दावनदास सूर व नन्द की परिपाटी के ऐसे कवि हैं, जिन्होंने भ्रमरगीत–परम्परा को विकासोन्मुख किया। उन्होंने छन्दों में दो प्रकार के भ्रमरगीतों की रचना की है–

1. प्रथम भ्रमरगीत सूर की भाँति एक ही पद में लिखा गया।
2. दूसरा भ्रमरगीत विस्तृत रूप में प्रस्तुत हुआ है। इसमें यशोदा के मातृ–स्नेह तथा गोपियों की विरह–वेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। उद्धव के निर्गुण– प्रतिपादन तथा गोपियों द्वारा उसके खण्डन के प्रसंग में कवि सूर व नन्द का ही अनुगमन करता दिखाई पड़ता है। यहाँ गोपियों ने उद्धव के समक्ष अपने मनोभावों को सहज रूप में प्रस्तुत किया है तथा कृष्ण– मिलन न होने को वे अपने ही दुर्भाग्य का कारण मानती हैं। उद्धव के सारे उपदेश उनके लिए वृथा सिद्ध हुए। वे तो बार–बार कृष्ण के आगमन की संभावनाओं पर ही उद्धव से प्रश्न करती हुई दिखाई गयी है।

तुलसीदासः— राम–भक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि तुलसी ने भी 'कृष्ण गीतावली' में भ्रमरगीत का प्रयोग किया है। गोपियों के विरह–प्रसंग में कवि की दृष्टि प्रेम की आलौकिकता की ओर उन्मुख हुई है। ज्ञान –मूढ़ उद्धव के समक्ष ज्ञान के खण्डन के सन्दर्भ में कवि ने 'मधुप' 'मधुकर' आदि सम्बोधनों के साथ भक्ति के स्वरूप को स्पष्ट किया है। यहाँ भ्रमर का प्रवेश नहीं हो सका। इस रचना में तुलसी की मर्यादा–स्थापन की मौलिक विशिष्टता के दर्शन मिलते हैं। सूर व नन्द की गोपियों की भाँति तुलसी की गोपियाँ लज्जा का त्याग नहीं करती। वे अत्यन्त विनम्रता, शील, मर्यादा तथा भक्तिभावों से युक्त हैं। उनमें नन्द की गोपियों की भाँति तर्क करने की प्रवृत्ति भी नहीं दीखती। उन्होनें अपने सहज प्रेम, विनय एवं भक्ति से उद्धव के ज्ञान–गर्व को पराजित किया।

भतिकाल के उक्त कवियों के अतिरिक्त कुछ और कवियों ने भी भ्रमर– गीतों की रचना की, जिसमें हरिराय, मलूकदास, मुकुन्ददास, रसखान आदि की चर्चा की जा सकती है। इनमें भी हरिराय की 'स्नेह–लीला' मलूकदास की 'ऊधौ पचीसी' तथा रसखान के कवित्त विशिष्ट महत्व के हैं साथ ही नीतिकार रहीम ने बरवै छंद में मुक्तक रूप से भ्रमरगीत की रचना की। यहाँ कृष्ण के प्रति गोपियों की तन्मयता जिस रूप में मुखर हुई है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है।

रीतिकाल

भक्तिकाल में प्रवाहित भ्रमरगीत की यह परम्परा रीतिकाल में भी उसी भाँति विकासोन्मुखी बनी रही। इस काल में जिन कवियों ने भ्रमरगीतों की रचना की, उनमें मतिराम, देव, घनानन्द, पद्‌माकर, सेनापति आदि प्रमुख हैं।

मतिरामः— रीतिकाल के पोषक कवियों में मतिराम को विस्मृत नहीं किया जा सकता। उन्होनें यद्यपि स्वतंत्र रूप से भ्रमरगीत की रचना नहीं की, किन्तु गोपियों के विरह की अभिव्यक्ति में भ्रमरगीत को सहज ही अभिव्यक्ति मिल गई है। कवि ने कहीं पर परम्परा को ग्रहण किया है तो कहीं परम्परा की लीक छोड़कर उसने मौलिक उद्‌भावनाएँ भी की हैं। मतिराम की गोपियों में कृष्ण के प्रति झुँझलाहट तथा उद्धव के प्रति आदर एवं बौद्धिकता विशेष रूप से मुखर हुई है। वे स्पष्टवादी तथा चंचल प्रवृत्तियों से युक्त देखी जा सकती हैं।

देवः— मतिराम की भाँति ही देव ने भी गोपियों की विरह–पीड़ा को अपनी सरस एवं मार्मिक उक्तियों के माध्यम

से वाणी प्रदान की है। यहाँ भक्ति की अपेक्षा गोपियों के द्वारा प्रेम–पक्ष का आलंकारिक चित्रण अधिक मुखर हुआ है। यहाँ कुब्जा के प्रति व्यंग्योक्तियाँ कही गई हैं। कहना ही होगा कि देव की गोपियाँ रीतिकालीन प्रभाव से युक्त हैं, अतः वे सपत्नी अर्थात् कुब्जा के प्रति प्रियतम कृष्ण की अत्यधिक आसक्ति एवं गोपियों के र्प्रति उपेक्षा भला कैसे सह सकती थी। इस प्रसंग में देव सगुण–निर्गुण के स्थान पर राग एवं विराग की संघर्ष –योजना में उलझ गए। वस्तुतः भ्रमरगीत–परम्परा की विकासोन्मुखी धारा में यह एक नवीन कड़ी मानी जा सकती है।

घनानन्दः– मुक्तक–रूप में भ्रमरगीत की रचना करने वाले कवियों में घनानन्द का उल्लेखनीय स्थान है। उनकी रचनाओं में भ्रमरगीत संबधी छंद एक ही स्थान पर नहीं मिलते, र्प्रत्युत बिखरे पड़े हैं। घनानन्द ने गोपियों के सम्मुख सगुण व निर्गुण का संघर्ष प्रस्तुत कर सगुण की ही प्रतिष्ठा की। भाव, भाषा व अलंकार संबंधी रीतिकालीन विशेषताएँ हमें घनानन्द के भ्रमरगीत संबंधी छन्दों में देखने को मिलती हैं यहाँ गोपियों ने कृष्ण के प्रति अपने एकनिष्ठ प्रेम को व्यक्त करते हुए भ्रमर को स्वार्थान्ध बतलाने का प्रयास किया है। उनकी वेदना में निराशा का समावेश हुआ है।

पद्माकरः– पद्माकर ने भी स्फुट रूप में भ्रमरगीत की रचना कर इस परम्परा को आगे बढ़ाने का प्रयास किया। उनकी गोपियों में कृष्ण के प्रति जैसी तन्मयता देखने को मिलती है, वह प्रेम के भावुक, सहज एवं शाश्वत स्वरूप को प्रस्तुत करती है। उनकी तन्मयता का एक छवि–चित्र देखिए–

''नैनन बसे हैं, अंग–अंग हुलसे हैं, रोमनि रसे हैं, निकसे हैं, कौतूहल है।
ऊधौ, वे गोविन्द कोऊ और, मथुरा में, यहाँ मेरे तो गोविन्द मोहि माहि में रमत हैं।''

पद्माकर ने भी गोपियों के द्वारा कुब्जा के प्रति मार्मिक एवं कटु व्यंग्यों की बौछार करवाई है–

''जैसे को तैसो मिले, तबहि जुरत सनेह।
ज्यों त्रिभंग तन स्याम को, कुटिल कूबरी देह।।''

सेनापतिः– रीतिकाल के अन्य कवियों की भाँति सेनापति ने भी भ्रमरगीत की रचना करते समय अपनी गोपियों में बौद्धिकता का सहज समाहन किया है। श्लेष अलंकार की सहायता से कवि के भाव मुखर हुए हैं। कृष्ण और ब्रह्म को दृष्टि में रखकर सेनापति की गोपियाँ भक्ति की अपेक्षा प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन करती दिख पड़ती हैं। यहाँ कृष्ण को महत्वपूर्ण स्थान मिला है।

इनके अतिरिक्त रीतिकाल के अन्य कवियों में, जिन्होंने भ्रमरगीत लिखे, कुछ और भी कवियों का उल्लेख किया जा सकता है। डॉ. स्नेहलता श्रीवास्तव ने ''हिन्दी में भ्रमरगीत–काव्य और उसकी परम्परा'' में इस सन्दर्भ में बख्शी हंसराज, बृजनिधि, रसनायक, भिखारीदास, कालिदास, पाजनकुँवर आदि की चर्चा की है।

आधुनिक काल

आधुनिक काल में आकर भ्रमरगीत–परम्परा में एक नवीन मोड़ आया। युगीन चेतना, नवीन भावना आदि का उस पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। इस रूप में आधुनिक काल को भ्रमरगीत–परम्परा के लिए पुनरुत्थान–युग के रूप में देख सकते हैं। इस अवधि में फुटकर एवं स्वतन्त्र– दोनों ही रूपों में भ्रमरगीत रचे गए।

भारतेन्दुः– भारतेन्दु आधुनिक काल के प्रथम ऐसे कवि हैं, जिन्होंने रीतिकालीन विशिष्टताओं को ग्रहण करते हुए मौलिकता के समन्वित रुप में भ्रमरगीत–परम्परा का विकास किया। सूर की भाँति ही भारतेन्दु ने भी उद्धव को ब्रज भेजा उसी भाँति ब्रज में उद्धव का सत्कार भी हुआ। उद्धव से योग का उपदेश सुनकर वे प्रेम–बालाएँ क्रोधाभिभूत हो उठीं। भारतेन्दु, की गोपियाँ भाग्यवादी आस्था से ग्रस्त हैं। वे तो केवल मात्र उद्धव से यही कहती दिख पड़ती

हैं–

"तुम ऊधौ, यहै कहियो उनसौं, हम और कुछ नहिं जानत हैं।
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना, अखियाँ दुखिया नहिं मानत हैं।।"

भारतेन्दु ने इसी प्रसंग में ज्ञान और भक्ति की चर्चा भी की है। उनकी अभिव्यक्ति पारम्परिक ही रही है।

प्रेमघनः– भारतेन्दु के उपरान्त आधुनिक काल में इस परम्परा के दूसरे प्रमुख कवि के रूप में प्रेमघन का नाम आता है। उनके पदों में सूर का प्रभाव स्पष्टतः देखने को मिलता है। इन्होंने इस प्रसंग–विशेष को आधार बनाकर जो पद लिखे, उनमें कुब्जा के प्रति व्यंग्योक्तियों को भी स्थान मिला है, इसे हम कवि पर रीतिकालीन प्रभाव मान सकते हैं। उद्धव के ज्ञान व योग के उपदेश को सुनकर प्रेमघन की गोपियाँ खीझ–खीझ उठी हैं, कवि ने उनकी झुँझलाहट का बहुत सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। यहाँ उद्धव गोपियों के सरल व सहज तर्कों के समक्ष पराजित हो जाते हैं।

सत्यनारायण कविरत्नः– आधुनिक काल में भ्रमरगीत–प्रसंग को लेकर स्वतन्त्र काव्य की सृष्टि करनेवाले प्रथम कवि के रूप में श्री सत्यनारायण कविरत्न हमारे समक्ष आते हैं। आपने अपने 'भ्रमर दूत' ग्रंथ में भ्रमरगीत छंद को पुनः जीवित किया है। कवि की उद्भावनाओं पर युग के अनुकूल परिस्थितियों का परिवर्तित प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। 'भ्रमर–दूत' काव्य में कवि ने स्वदेश की निराशाजनक परिस्थिति को प्रस्तुत कर भ्रमर–गीत परम्परा के इतिहास–क्रम में सचमुच एक नया मोड़ प्रदान किया है। इसमें उद्धव, गोपियाँ, ज्ञान व भक्ति–योग, सगुण–निर्गुण विषयक विवाद आदि कुछ भी नहीं मिलता। यशोदा भ्रमर को दूत बनाकर कृष्ण के पास भेजती है। यहाँ कवि ने यशोदा को भारतमाता के रूप में चित्रित किया है, देखिए–

"विलपति अति कलपति जबे लखी जननि निज स्याम।
भगत–भगत आये तबै भाये मन अभिराम भ्रमर के रूप में!"

कविरत्नजी के अनुसार कृष्ण का मथुरा–प्रवास कुब्जा–प्रेम के फलस्वरूप न होकर लोक कल्याण पर आधारित था। यहाँ भ्रमर का आगमन उद्धव के रूप में नहीं हुआ, वरन् स्वयं कृष्ण ही भ्रमर के रूप में आ गए। यशोदा की व्यथा सम्पूर्ण ब्रज–प्रदेश की व्यथा बनकर मुखर हुई है।

अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध– अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध का 'प्रियप्रवास' एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है इस ग्रंथ के प्रणयन की जहाँ और अनेक विशेषताएँ हैं वहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि इसमें श्रीकृष्ण की कथा का नवीन रूप प्रस्तुत हुआ है। श्री कृष्ण के काव्यों को सामाजिकता के दायरे में घुमाकर इस ग्रन्थ में आधुनिकता का सराहनीय प्रभाव है। कृष्ण के प्रवास की इस कथा में भ्रमरगीत का प्रंसग भी आ गया है। इसलिए यह ग्रंथ भी भ्रमरगीत–परम्परा की एक कड़ी है। साथ ही यह भी बात है कि अपने नवीन दृष्टिकोण को रखने के कारण इस ग्रन्थ का भ्रमरगीत प्रसंग भी अपने आप में नवीन है।

'प्रियप्रवास' का लगभग आधे से अधिक भाग इस प्रसंग से सम्बन्धित है। इसमें न तो ज्ञान पर प्रेम की विजय की चर्चा है, न उद्धव और गोपियों के तर्क–विर्तक है और न उद्धव का ज्ञान–मार्ग का 'लेक्चर'। इस ग्रंथ का दृष्टि–कोण सामाजिक भावों की व्यंजना करना है। इस प्रसंग का प्रारम्भ प्रिय प्रवास में कृष्ण द्वारा ब्रज की स्मृति करने पर होता है–

एकाकी ब्रजदेव एक दिन थे बैठे हुए गेह में।

उत्सन्ना ब्रजभूमि के स्मरण से उद्विग्नता थी बड़ी।।
ऊधौ संज्ञक ज्ञानवद्ध उनके जो एक सन्मित्र थे।
वे आये इस काल ही सदन में आनन्द से मग्न से।।

श्री कृष्ण के आदेश से उद्धव ब्रज जाते हैं। वहाँ सबसे पहले यशोदा और नन्द से वार्तालाप करते हैं। अगले दिन गोपियों से कृष्ण–सम्बन्धी चर्चा होती है। कुछ दिन बाद गोपियों से बातें है और अन्त में राधा से उद्धव की बातें होती हैं। इन सभी वार्तालापों में विरह की अनुभूति होते हुए भी वह 'हाय–हाय'! नहीं है जो भ्रमरगीत प्रंसगों में देखी गई है। कृष्ण के विरह का कष्ट होते हुए भी परिस्थितिजन्य विवेक के कारण सान्त्वना की धारणा बनी हुई है।

वैसे कृष्ण के किसी प्रिय व्यक्ति को आता देखकर ब्रज के समाज की उत्सुकता आतुरता आदि में कोई कमी नहीं है। उद्धव के आगमन पर क्या दशा वहाँ हो गई है यह ईक्षणीय है–

निकालती जो जल कूप से रही।
सरज्जु सो भी तज कूप में घड़ा।।
अतीव हो आतुर दौड़ती गई
ब्रजांगना बल्लभ को विलोकने।
तजा किसी ने जल से भरा घड़ा।
उसे किसी ने सिर से गिरा दिया।
अनेक दौड़ीं सुधि गात की गवा।
सरोज–सा सुन्दर श्याम देखने।।

'प्रिय प्रवास' में यशोदा द्वारा अपने पुत्र की स्मृति में विलाप बड़े विस्तार के साथ आया है जब कि अन्य भ्रमरगीतों में नाममात्र को ही यशोदा का इससे सम्बन्ध जोड़ा गया है। गोप आदि ने श्रीकृष्ण के सामाजिक लाभ के कार्यों की ओर संकेत करके उनकी स्मृति की है। सामाजिकता का भाव इस ग्रंथ के इस प्रसंग की सबसे बड़ी विशेषता है। उदाहरण के लिए केवल इन चार पंक्तियों से ही उनके इस रूप का अनुमान लगाया जा सकता है कि कृष्ण ने कितनी समाज सेवा की–

रोगी दुखी विपद आपद में पड़ों की।
सेवा सदैव करते निज हस्त से थे।
ऐसा निकेत ब्रज में न मुझे दिखाया।
कोई जहाँ दुखित हो पर वे न होवें।।

उद्धव जब राधा से वार्तालाप करते हैं तब वे भी इस तरह के समाज–सेवा के भावों की ही अभिव्यक्ति करते है। हरिऔध ने राधा को भी आसुओं की नदी बहाते हुए नहीं दिखलाया। वे भी एक समाज सेविका है। सब के दुःखों का उन्हें ध्यान रहता है उद्धव से बातें करते समय राधा ने श्रीकृष्ण के लिए जो कहला भेजा है उससे उनके हृदय के समाज सेवा के भावों का अच्छी तरह से पता चलता है। वे उद्धव से कहती हैं–

जाके मेरी विनय इतनी नम्रता से सुनावें।
मेरे प्यारे कुँवर वर को आप सौजन्य द्वारा।।
मैं ऐसी हूँ न दुख से कष्टिता शोकमाना।

हा ! जैसी हूँ व्यथित ब्रज के वासियों के दुखों से।।

सारांश यह है कि हरिऔध द्वारा जो भ्रमरगीत प्रसंग प्रस्तुत किया गया है वह अपने–आप में बिल्कुल नवीन है। आधुनिक युग की सामाजिकता को ध्यान में रखकर इस ग्रन्थ की रचना हुई है। कृष्ण और राधा पक्के समाज सेवी के रुप में चित्रित किये गये हैं। समय और युग के प्रभाव के अनुसार ऐसा परिवर्तन इस परम्परा के विकास का द्योतक है। यह ग्रन्थ इस परम्परा की श्रेष्ठ रचना है।

मैथिलीशरण गुप्त – भ्रमरगीत परम्परा के प्रसंग में मैथिलीशरण गुप्त की भी एक रचना आती है उन्होंने अपनी पुस्तक 'द्वापर' में इस प्रंसग का संयोजन किया है। वहाँ उड़ते हुए एक अलि को लक्ष्य करके गोपियों द्वारा उद्धव के लिए वचन कहलवाये गये हैं। इस प्रसंग की यहां पर अधिक विस्तार के साथ अवतारणा नहीं की गई है पर इसमें व्यक्त उपालम्भ पठनीय हैं राधा की स्थिति का कथन करते हुए गोपियाँ उद्धव पर व्यंग्य करती हैं–

''अभी विलोक एक अलि उड़ता, उसने चौंक कहा था।
सखि वह आया इस कलिका में क्या कुछ शेष रहा था।''
पर तत्क्षण ही गरज उठी वह, भौंह चढ़ाकर वाँकी–
''सावधान अलि! हर कर लेना, तुम प्यारी की झाँकी।"

इनके इस प्रसंग में अभिव्यक्त उपालम्भ चापल्यपूर्ण ढंग से व्यक्त नहीं किये गये हैं। उद्धव के ज्ञानमार्ग की बातों की ओर भी उनके कथनों से ध्वनि निकलती है। ब्रह्म तो घट–घट में एक ही है इस पर गोपियों का सुन्दर भाव किस तरह व्यक्त हुआ है–

इसमें तुममें एक ब्रह्म पर, वह कैसा नटखट है,
बोल दो घटों में दो बाते करा रहा खटपट है।

मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में भ्रमरगीत प्रसंग अधिक विस्तार के साथ वर्णित नहीं है। यह प्रसंगतः आ गया है पर प्रतिभावान कवि ने थोड़े से शब्दों में ही कुछ महत्व प्रदर्शित करके इस परम्परा के प्रवाह में योग दिया है।

आधुनिक युग में और भी कुछ रचनाएँ भ्रमरगीत को लेकर हुई हैं। ऐसे कवियों में द्वारिकाप्रसाद मिश्र, डॉ. रमाशंकर शुक्ल 'रसाल', हरदेव सहाय और जगन्नाथ सहाय आदि के नाम लिये जाते हैं। इनके काव्यों में भी प्रसंगतः ही यह वर्णन हुआ है अतः उनका स्थान गौण है।

भ्रमरगीत प्रसंग की प्राचीन परम्परा आधुनिक काल तक चली आयी है। इस परम्परा का आधार श्रीमद्भागवत ग्रन्थ ही रहा है। सूरदास के वर्णन की व्यापकता ने भावों की अभिव्यक्ति के लिए और नया मार्ग प्रशस्त कर दिया था। आधुनिक काल में आकर उसका परिवर्तित रूप दृष्टिगत हुआ है। सत्यनारायण कविरत्न और हरिऔध के विचार युग– प्रभाव से अनुप्रमाणित है। यह प्रसंग अपने–आप में अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण रहा है। एक ओर तो कवियों के ध्यान को प्रसंग ने अपनी ओर आकृष्ट किया है और दूसरी ओर सहृदय समाज को अपनी मार्मिकता से लुभाया है। ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रसंग की सुदीर्घ परम्परा सर्वथा स्वाभाविक है।

वास्तव में हिन्दी–साहित्य के अन्तर्गत शुद्ध 'भ्रमर–गीत' के प्रणेता सर्वप्रथम सूरदास ही हैं। सूर ने अपने भ्रमरगीत–में न तो केवल गोपियों के उपालम्भ एवं विरह–व्यथा का वर्णन किया है, अपितु नन्द एवं यशोदा के वात्सल्य की भी अद्भुत झाँकी अंकित की है। सूर के इस भ्रमर–गीत में व्यंग्य–विनोद, हास–परिहास एवं उपालम्भ के साथ विरह–व्यथा का जो सरस वर्णन मिलता है वैसा अन्यत्र कहीं दिखाई नहीं देता। यह भ्रमर–गीत उक्ति–वैचित्र्य एवं विनोदशीलता

के साथ–साथ विरह की समस्त अन्तर्दशाओं से परिपूर्ण होने के कारण सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

इस प्रकार 'श्रीमद्भागवत' से लेकर आज तक 'भ्रमर–गीत' की जो पयस्विनी प्रवाहित हुई है, उसका अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि सूरदास ने अपने 'भ्रमर–गीत' में मानव–हृदय के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों का जो मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है तथा व्यंग्य एवं उपालम्भ के साथ विरह–वेदना की जो मार्मिक अभिव्यंजना की है, वैसा कार्य कोई अन्य कवि नहीं कर सका है। सूर का 'भ्रमर–गीत' वास्तव में विरह एवं प्रेम के जल की एक अगाध पयोधि है, जिसमें व्यंग्य एवं उपालम्भ की लघु लहरें हैं, उद्धव–सन्देश के झंझावात से आलोड़ित वेदना एवं व्यथा की तरंगें हैं और भक्ति की बड़वाग्नि है। इसी लिये सूर के 'भ्रमर गीत' का प्रत्येक पद मार्मिकता एवं सहजीवता में अन्य सभी कवियों से अधिक उत्कृष्ट है और परवर्ती सभी कवि 'सूर की जूठन' से जान पड़ते हैं। सूर के भ्रमर–गीत में निःसन्देह वियोग–शृंगार का उत्कृष्ट रूप विद्यमान है, उसमें निर्गुण–साधना पर सगुण–साधना की विजय दिखाई गई है और गोपियों के उत्कृष्ट प्रेम, दृढ़ विश्वास एवं उत्कृष्ट भक्ति–भाव की सुन्दर एवं सजीव झाँकी प्रस्तुत की गयी है, जिसे देखकर ज्ञान के प्रकाण्ड आगार उद्धव भी अपना सम्पूर्ण ज्ञान भूल जाते हैं और निर्गुण ब्रह्म का उपदेश छोड़कर सगुण ब्रह्म के उपासक हो जाते हैं। यही कारण है कि 'भ्रमर–गीत' की इस सुदीर्घ परम्परा में सूरदास का 'भ्रमर–गीत' हिन्दी की आरम्भिक रचना होकर भी सर्वश्रेष्ठ है।

16.4 सूर के 'भ्रमर–गीत' की विशेषतायें

(1) अन्य सभी 'भ्रमर–गीतों' की अपेक्षा सूर का 'भ्रमर–गीत' कहीं अधिक व्यवस्थित एवं शृंखला–बद्ध है, क्योंकि इसके आरम्भ में कृष्ण की गोकुल सम्बन्धी चिन्ता, उद्धव का ज्ञान सम्बन्धी अहंकार, कृष्ण का उद्धव के अंहकार को दूर करने के बारे में विचार, उद्धव को ही सन्देश लेकर गोकुल भेजने का उपक्रम, नन्द–यशोदा और गोप–गोपिकाओं के लिए पत्र, कुब्जा द्वारा पत्र की व्यवस्था, उद्धव की ब्रज–यात्रा, उद्धव का ब्रजागमन, ब्रज–युवतियों का उन्हें कृष्ण जानकर उनके पास आगमन तथा उनका भ्रम–निवारण, तत्पश्चात् उद्धव का उपदेश तथा गोपियों का व्यंग्य एवं उपालम्भ द्वारा उस उपदेश का खण्डन और अन्त में निर्गुणोपासक उद्धव का सगुणोपासक बन जाने की व्यवस्था आदि प्रसंग क्रम–बद्ध रूप में वर्णित हैं।

(2) सूर के भ्रमरगीत में मनोवैज्ञानिक चित्रों द्वारा गोपियों के प्रेम एवं भक्ति–भाव को अंकित किया गया है।

(3) सूर का भ्रमर–गीत विप्रलम्भ शृंगार का अक्षय भण्डार है। उसमें विरह की उत्कृष्ट भावना एवं वियोग की समस्त काम–दशाओं का बड़ी ही सजीवता एवं मार्मिकता के साथ निरूपण किया गया है।

(4) सूर के भ्रमर–गीत में मानव–मनोभावों का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण मिलता है, क्योंकि यहाँ सूर के उद्धव के सन्देश द्वारा यशोदा, नन्द, गोप गोपीजन आदि पर जो भिन्न–भिन्न प्रभाव पड़ते हैं उनका बड़ा ही मार्मिकता एवं दक्षता के साथ निरूपण किया गया है।

(5) इस भ्रमर–गीत में उद्धव के मौखिक सन्देश के अतिरिक्त कृष्ण के लिखित सन्देश एवं कुब्जा के लिखित पत्र द्वारा ब्रज–जन पर विशेषकर कृष्ण के प्रेम में विकल गोपियों पर क्या–क्या प्रभाव पड़ते हैं, इसका बड़ा ही सजीव चित्रण किया गया है।

(6) उद्धव का उपदेश सुनकर गोपियों ने उद्धव की मीठी चुटकियाँ ली हैं अथवा कृष्ण पर उपालम्भ किए हैं या अपने विनोदी स्वभाव द्वारा कृष्ण एवं कुब्जा पर जो सपत्नी भाव–मिश्रित तीक्ष्ण व्यंग्य किए हैं। ये सभी प्रसंग सूर के भ्रमर–गीत की विशिष्टता के सूचक हैं।

(7) सूर का भ्रमर–गीत सूर की मौलिक उद्भावना–शक्ति का द्योतक है, क्योंकि इसमें उद्धव के ज्ञान–गर्व को खंडित करने का प्रयत्न, उद्धव की सहृदयता, राधा के चरित्र का विकास आदि सूर की मौलिक उद्भावनाओं का द्योतक है।

(8) सूर ने अपने भ्रमर–गीत में सरलता एवं भावकुता के साथ तर्क एवं बौद्धिकता से युक्त गोपियों की जो सृष्टि की है, वह सर्वथा अद्वितीय है, क्योंकि ऐसी तर्कशील एवं सहृदय गोपियाँ ही उद्धव जैसे प्रकांड ज्ञानी को परास्त कर सकती हैं।

(9) सूर ने कृष्ण के प्रेम में पगली हुई गोपियों के आत्म–विश्वास, अनन्य प्रेम, उपहास, उपालम्भ, असमर्थता, विरहजन्य तीव्र संताप आदि का जो निरूपण किया है, वह सर्वथा अनुपम एवं अद्भुत है।

(10) सूर ने भ्रमर–गीत में नारी–हृदय की शंकालु प्रवृत्ति, ईर्ष्या, डाह, सपत्नीभाव की उत्पत्ति होते ही अपने प्रिय पर निर्दयता के साथ उपालम्भों का प्रहार, सपत्नी का मजाक आदि का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है। इसलिए गोपियाँ खीझती हुई कुब्जा का मजाक उड़ाती हैं और 'साखी री काके मीर अहीर' कहकर श्रीकृष्ण पर भी तीक्ष्ण प्रहार करती हैं।

(11) सूर ने अपने भ्रमर–गीत में प्रकृति के उद्दीपन रूप के माध्यम से वियोगिनी की विरह व्यथा का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है, जिसमें कहीं वे अपने उजड़े हुए जीवन की हरे–भरे मधुवन से तुलना करती हुई असहनीय पीड़ा अनुभव कर रहीं हैं, तो कहीं उन्हें चादँनी रात भी साँपिनी–सी लग रही है जो डसकर उलटी हो गई है।

(12) सूर ने अपने भ्रमर–गीत में मुख्यतः प्रेमा–भक्ति का ही प्रतिपादन किया है। इसीलिए यहाँ ज्ञान पर प्रेमा–भक्ति की विजय है तथा 'कृपाण की धार' के समान विभिन्न आडम्बरों में परिपूर्ण ज्ञानमार्ग से बचने के लिए सरस एवं मधुर प्रेममयी भक्ति का उपदेश दिया गया है।

(13) सूर का भ्रमर–गीत उक्ति वैचित्र्य एवं वाग्विदग्धता की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि इसमें उक्तियों की वक्रता एवं कथन की आलंकारिता के साथ–साथ लोकोक्तियों एवं मुहावरों सहित साहित्यिक ब्रजभाषा का चमत्कार भी विद्यमान है।

(14) सूर का सम्पूर्ण भ्रमर–गीत विरहिणी ब्रजबालाओं के करूण–क्रन्दन के मधुर गूँज से आप्लावित है। इसलिए इसमें भग्न–हृदय की दयनीय स्थिति, विरह–जन्य कातरता, प्रियतम की निष्ठुरता, दुर्भाग्य, निराशा, उन्माद, प्रलाप, निरन्तर अश्रु–वर्षा, शारीरिक साज–शृंगार एवं सौन्दर्य के प्रसाधनों की उपेक्षा आदि का बड़ा ही सुन्दर एंव मर्मस्पर्शी वर्णन होता है।

(15) सूर के भ्रमर–गीत की भाषा हृदय के गतिशील भावों के प्रवाह की तीव्रता से भरी हुई है, उसमें कहीं भी बोझिल एवं कृत्रिम शब्द नहीं मिलते और न कहीं उसकी धारावाहिकता ही भग्न हुई है, अपितु सरल अलंकारों की योजना एवं वक्रोक्ति की मुखरता ने उसे भावानुकूल प्रवाहित होने में सहयोग प्रदान किया है और वह प्रकृत एवं अकृत्रिम रूप में होकर भी साहित्यिक बन गई है।

16.5 सारांश

इस प्रकार सूर का भ्रमर–गीत मानव–हृदय का एक आकर्षक चित्रफलक है, जिस पर हृदयस्थ विभिन्न भावों के मनोरम चित्र अंकित हैं, ''जिनमें गति है, जीवन है, सरसता है, मधुरिमा है, सौन्दर्य है और है एक शाश्वत कला,

जिसमें विरह–विधुरा नारी की मूक वेदना को मुखरित करके पाषाण से पाषाण हृदय को भी द्रवीभूत करने की अपूर्व क्षमता है। कृष्ण भक्ति शाखा के कवियों में सूर का स्थान अग्रगण्य है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में ''जिस प्रकार रामचरित गान करने वाले भक्त कवियों में गोस्वामी तुलसीदास जी का स्थान सर्वश्रेष्ठ है उसी प्रकार कृष्ण चरित गान करने वाले भक्त कवियों में महात्मा सूरदास जी का। वास्वत में ये हिन्दी काव्य–गगन के सूर्य और चन्द्र हैं। जो तन्मयता इन दोनों भक्त शिरोमणि कवियों की वाणी में पाई जाती है वह अन्य कवियों में कहां ? हिन्दी काव्य इन्हीं के प्रभाव से अमर हुआ, इन्हीं की सरसता से उसका स्त्रोत न सूखने पाया।

16.6 स्व–मूल्यांकन

प्रिय विद्यार्थियों !

इस अध्याय में आपने भ्रमरगीत परम्परा में सूरदास का स्थान, भ्रमरगीत की विशेषताएँ का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिह्न द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

प्र) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए:–

1) ''सूरसागर का सबसे मर्मस्पर्शी और वाग्वैदग्ध्यपूर्ण अंश भ्रमरगीत है।'' भ्रमरगीत के विषय में किसका कथन है?

क) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ख) नामवर सिंह ग) रामकुमार वर्मा घ) नामवर सिंह

2) भ्रमर के अन्य क्या नाम है?

क) मधुप ख) मधुकर ग) अलि घ) उपर्युक्त सभी

3) सूरदास ने श्रीमद्भागवत के किस स्वरूप की कथा का आधार ग्रहणकर भ्रमरगीत की रचना की?

क) दूसरे स्कन्ध ख) दशम् स्कन्ध ग) पाँचवे स्कन्ध घ) छठे स्कन्ध

4) सूरदास ने 'सूरदास' में कितने भूमरगीतों की रचना की?

क) दो ख) तीन ग) चार घ) पाँच

5) भंवरगीत के रचयिता कौन है?

क) सूरदास ख) परमानन्ददास ग) नन्ददास घ) वृन्दावनदास

6) 'कृष्णगीतावली' के रचयिता कौन हैं?

क) नन्ददास ख) सूरदास ग) वृदावनदास घ) तुलसीदास

प्र2) रिक्त स्थान भरो:–

क) मुक्तक–रूप में भ्रमरगीत की रचना करने वाले कवियों में ———————— का उल्लेखनीय स्थान है।

ख) रीतिकालीन कवि पद्माकर की गोपियां प्रेम के भावुक, सहज एवं ———————— स्वरूप को प्रस्तुत करती है।

ग) राम–भक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि तुलसी ने भी ———————— में भ्रमरगीत का प्रयोग किया है।

घ) ———————— ने भ्रमरगीत की रचना करते समय अपनी गोपियों में बौद्धिकता का सहज समाहन किया है।

ङ) सूर की भाँति ही ———————— ने भी उद्धव को ब्रज भेजा उसी भाँति ब्रज में उद्धव का सत्कार भी हुआ।

प्र3) सही / गलतः–

क) 'भ्रमरदूत' सत्यनारासण कविरत्न की रचना है। ( )

ख) 'प्रियप्रवास' अयोध्यासिंह उपाध्याय की रचना है। ( )

ग) भ्रमरगीत परम्परा के प्रसंग में मैथिलीशरण गुप्त की रचना 'यशोधरा' का संयोजन किया है। ( )

घ) सूर ने अपने भ्रमर–गीत में मुख्यतः प्रेमा–भक्ति का ही प्रतिपादन किया है। ( )

16.7 कठिन शब्द

प्रिय विद्यार्थियो! अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर देने से पहले निम्नलिखित कठिन शब्दों के अर्थ शब्दकोश से ढूंढे और अपने शब्द भंडार को विकसित करें।

1. सत्कार ————————————
2. प्रतिपादन————————————
3. संयोजन————————————
4. प्रतिनिधि————————————
5. तन्मयता ————————————
6. हृदयस्थ ————————————
7. मधुरिमा————————————
8. सौन्दर्य————————————
9. शाश्वत————————————
10. प्रेमा–भक्ति ————————————
11. आडम्बर————————————
12. वैचित्र्य————————————
13. वाग्विदग्धता————————————

14. मनोभावों—————————————

15. उद्‌भावना———————————————

16.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भ्रमरगीत परम्परा में सूरदास का स्थान निर्धारित कीजिए।

____

____

____

____

____

2. भ्रमरगीत परम्परा में सूरदास किस स्थान पर ठहरते है। स्पष्ट कीजिये।

____

____

____

____

____

16.9 उत्तर कुंजी

- बहु विकल्पीय प्रश्न

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	2. उपर्युक्त सभी	3. दशम् स्कन्ध
4. तीन	5. नन्ददास	6. तुलसीदास

- रिक्त स्थान

1. घनानन्द	2. शाश्वत	3. कृष्ण गीतावली
4. सेनापति	5. भारतेन्दु	

- सही या गलत

1. सही	2. सही	3. गलत	4. सही

16.10 पठनीय पुस्तकें

1. सूरदास और उनका भ्रमरगीत —डॉ. श्रीनिवास शर्मा — राधा प्रकाशन, 2008।

2. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि — डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, अग्रवाल प्रकाशन, 2012।

सूरदास की भक्ति भावना

रूपरेखा

17.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
17.2 प्रस्तावना
17.3 सूरदास की भक्ति भावना
17.4 सारांश
17.5 स्व–मूल्यांकन
- बहु विकल्पीय प्रश्न
- रिक्त स्थान
- सही या गलत

17.6 कठिन शब्द
17.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
17.8 उत्तर कुंजी
17.9 पठनीय पुस्तकें

17.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणामः–

– प्रिय विद्यार्थियो! प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य सूरदास की भक्ति भावना से अवगत करवाना है।

– इससे भी अवगत होंगे कि सूर की भक्ति–भावना में पुष्टिमार्गीय प्रेमालक्षणा शक्ति का ही प्राधान्य है और इसी प्रेमाभक्ति को तीन रूपों में विभक्त कर सूर ने अपने पदों में व्यक्त किया है।

अपेक्षित परिणाम – इस अध्याय के अध्ययनोपरान्त भक्ति काल के प्रमुख कवि सूरदास की भक्ति–भावना के सन्दर्भ में जान पाएंगे।

– सूरदास की भक्ति–भावना सर्वप्रथम उनके विनय के पदों में प्रकट हुई है यह जान सकेंगे

– सूर के पदों में नवधा भक्ति और विनय की प्रधानता है इसके बारे में जान सकेंगे।

17.2 प्रस्तावना

सूरदास गोस्वामी वल्लभाचार्य जी के शिष्य थे। अतः इनकी भक्ति–भावना अधिकांशतः वल्लभाचार्य जी के दार्शनिक सिद्धान्तों पर ही आधारित है। वल्लभाचार्य जी ने ब्रह्मा के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों को स्वीकार किया है पर वे निर्गुण ब्रह्म की उपासना को सुगम एवं श्रेष्ठ मानते हैं निर्गुण ब्रह्म चिन्तन का विषय हो सकता है, उसकी आराधना एवं उपासना कदापि संभव नहीं है। निर्गुण मार्गी भक्त भी भगवान के प्रेम में तन्मय होकर उनमें क्षमा, दया, करूणा, भक्तवत्सलता आदि गुणों का आरोप कर लेते हैं। सूर ने भी इसी तथ्य का समर्थन किया है। उन्होंने सर्वाधिक मर्मस्पर्शी प्रसंग 'भ्रमरगीत' की रचना सगुणोपासना के निरूपण एवं 'निर्गुणोपासना के खंडन के लिए ही की है। निर्गुणोपासक

एवं पूर्ण–ज्ञानी, योगी, कृष्ण–सखा उद्धव को अपने ज्ञान का बड़ा अभिमान था। इसीलिए भगवान् कृष्ण ने उन्हें अपना संदेश देकर अपने विरह में व्याकुल गोपियों के पास भेजा था, जिससे उन्हें अपने ज्ञान की सारहीनता का पता लग जाए और उनके नीरस निर्गुणवाद का अहंकार छूट जाये। गोपियां इस प्रसंग में उद्धव के समक्ष ज्ञान, भोग एवं निर्गुण की निरर्थकता दिखाकर भक्ति, प्रेम तथा सगुण ब्रह्मा की उपासना का प्रतिपादन बड़ी ही कुशलतापूर्वक करती हैं। उनके प्रेम के उच्च आदर्श एवं सच्ची भक्ति–भावना की तन्मयता को देखकर ज्ञान–गर्व से पूरित उद्धव भी उन्हीं के रंग में रंगे जाते हैं। उनके नियम–व्रत छूट जाते हैं। वे कृष्ण का गुण–गान करते हैं। यहां तक कि वे गोपियों के चरणों की धूलि लेने को लालायित हो जाते हैं।

सूरदास का भक्ति–मार्ग ही पुष्टि–मार्ग कहा जाता है। इसमें भगवान की कृपा से भक्त उनके आनंदधाम में प्रवेश पाता है। वस्तुतः पुष्टि–मार्ग भगवान के अनुग्रह से ही संभव है। इसमें भक्त को किसी साधन की अपेक्षा नहीं रहती है। वह परमात्मा की कृपा पर ही पूर्णतया अवलंबित रहता है। इसीलिए सूरदास परमात्मा की कृपा के लिए लालायित हैं। वे प्रभु कृपा की याचना एवं अभिलाषा करते हैं पर अपने को विषय वासना में लीन देखकर वे भयभीत हैं कि कदाचित् प्रभु उन पर कृपा न करें। फिर भी वे उनको पतित–पावन जानकर उनकी शरण में जाने का साहस करते हैं।

17.3 सूरदास की भक्ति–भावना

पुष्टिमार्गी भक्ति का सीधा संबध भगवान की लीला में भाग लेकर उनकी सेवा करने से है। यह मार्ग प्रधान रूप से भगवान की सेवा को ही महत्त्व प्रदान करता है। सूरदास ने 'सूरसागर' में इसका विशद् विवेचन किया है। पुष्टिमार्ग में वर्ण एवं आश्रम की मर्यादा की कुछ भी मान्यता नहीं है। इसमें सभी वर्णों के लोगों को भगवान की भक्ति, पूजा एवं कीर्तन करने का अधिकार प्राप्त है। सूरदास ने अपने अनेक पदों में जाति–पाति की निरर्थकता का प्रतिपादन किया है। उन्होंने ज्ञान, कर्म, उपासना आदि साधनों को भी भ्रमात्मक माना है। अपने गुरू स्वामी बल्लभाचार्य से हरिलीला के रहस्य को अवगत कर लेने के बाद वे समस्त साधनों को तिलांजलि देकर हरि–लीला के गायन में ही तल्लीन हो गए थे और इस तल्लीनता की स्थिति में ही उन्होंने अपनी यह आस्था व्यक्त की थी कि गोपाल श्रीकृष्ण के गुणों के गायन में जो सुख मिलता है, वह बहुत से जप–तप आदि साधनों के संपन्न करने तथा करोड़ों तीर्थों में स्नान करने से नहीं मिलता।

सूर की भक्ति–भावना सर्वप्रथम उनके विनय के पदों में प्रकट हुई है। उन पदों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि वल्लभाचार्य से दीक्षित होने से पूर्व सूर भारतवर्ष में प्रचलित अन्य भक्ति पद्धतियों एवं उपासना प्रणालियों से प्रभावित थे। इसीलिए उनके कुछ पद हठयोग एवं शैवसाधना से प्रभावित जान पड़ते हैं और कुछ पदों में वे निर्गुण भक्ति के भी समर्थक दिखाई देते हैं, जिससे वे जाति–पाति का विरोध, वेद शास्त्र की निन्दा, ज्ञान और वैराग्य की महत्ता आन्तरिक साधना का महत्त्व, सतगुरू की महत्ता, मूर्तिपूजा के विरोधी सन्तों का गुणगान आदि का वर्णन करते दिखाई देते हैं। इसीलिए कहीं वे "जौ लौ सतस्वरूप नहिं सूझत" कहकर सत्यपुरूष की प्रशंसा करते हैं तो कहीं 'अपुनपौ आपुन ही में पायौ' कहकर निर्गुण मार्गी कबीर की तरह अन्तःसाधना एवं सतगुरू के उपदेश आदि का महत्त्व आदि प्रतिपादित करते दिखाई देते हैं। इतना ही नहीं सूर के ऐसे पद भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं जिनमें रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, रामानन्द आदि के विचारों का भी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसीलिए सूर के पदों में नवधा भक्ति और विनय की प्रधानता है। विनय की सातों भूमिकाएं–दीनता, मानमर्षता, भयदर्शन, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य और विचारणा विद्यमान हैं तथा वैष्णव सम्प्रदाय के छः नियमों का पालन दिखाई देता है जिससे यहां (1) अपने इष्टदेव की अनुकूलता का संकल्प (2) प्रतिकूल वार्ता का परित्याग (3) इष्टदेव में दृढ़ विश्वास (4) इष्टदेव का गुणगान (5) सर्वस्व अर्पण की भावना एवं (6) दैन्य का निरूपण मिलता है। यह सभी पद इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं कि

वल्लभाचार्य के पुष्टि–मार्ग में दीक्षित होने से पहले सूर एक सन्त–महात्मा थे जिन पर किसी विशेष भक्ति–सम्प्रदाय का प्रभाव न था, अपितु जो सभी उपासना पद्धतियों, भक्ति प्रणालियों एवं भगवद् भजन संबंधी मान्यताओं को समान दृष्टि से देखते थे।

वल्लभाचार्य के सम्पर्क में आते ही सूर पुष्टिमार्गीय भक्त हो गये। भक्ति के क्षेत्र में वल्लभाचार्य का साधना मार्ग पुष्टि–मार्ग के नाम से प्रसिद्ध है। इस साधना–मार्ग के अन्तर्गत श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में दशम अध्याय के चतुर्थ श्लोक में 'पोषणै तदनुग्रह' के आधार पर वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग की स्थापना की है। इसका तात्पर्य यह है कि एक जीव का उद्धार प्रेम – लक्षणा भक्ति द्वारा ही हो सकता है।

किन्तु उस प्रेम – लक्षणा भक्ति की ओर जीव की प्रवृत्ति उसी समय होती है जबकि भगवान का अनुग्रह होता है। साधारणतयः तीन प्रकार के जीव माने जाते हैं। 1. पुष्टि जीव जो भगवान के अनुग्रह पर ही भरोसा रखते हैं और भगवान की नित्य लीला में प्रवेश पाते हैं। 2. मर्यादा जीव, जो वेद की विधियों का अनुसरण करते हैं और स्वर्ग आदि लोक प्राप्त करते हैं 3. प्रवाह जीव जो संसार के प्रवाह में पड़े सांसारिक सुखों की प्राप्ति में लीन रहते हैं। इनमें से पुष्टि जीव को ही सर्वोपरि बताया गया है तथा कर्म, ज्ञान एवं भक्ति में से भक्ति को ही सर्वोपरि साधन सिद्ध किया गया है क्योंकि भक्ति मार्ग में ही जीव भगवान के विशेष अनुग्रह (पुष्टि) का अधिकारी होता है और अन्त में उसके साथ नित्यलीला में सम्मिलित होता है। श्रीमद्भागवत पुराण में वर्णित गोपियों की प्रेमा भक्ति को ही पुष्टिमार्गीय भक्ति का सर्वोत्तम उदाहरण माना जाता है।

पुष्टिमार्ग में सेवा का बहुत महत्त्व माना गया है। वहां सेवा दो प्रकार की बताई गई है – नाम–सेवा और स्वरूप–सेवा। स्वरूप सेवा भी पुनः तीन प्रकार की मानी गई है तनुजा, वित्तजा और मानसी। शारीरिक सेवा को 'तनुजा' कहते हैं, धन से की हुई सेवा 'वित्तजा' कहलाती है और मन से की हुई सेवा को मानसी कहते हैं। यह मानसी – सेवा भी दो प्रकार की होती है – मर्यादा मार्गीय और पुष्टि मार्गीय। इनमें से मर्यादा मार्गीय मानसी सेवा के लिए शास्त्रोक्त गम्भीर ज्ञान की आवश्यकता होती है। इस सेवा मार्ग में साधक को नाना क्लेश उठाकर पहले आत्मज्ञान प्राप्त करना पड़ता है, फिर वह लोकार्थी के रूप में भगवान श्रीकृष्ण की सेवा और आराधना करता हुआ अपने अहंकार एवं ममत्व का विनाश करता है तब अन्त में उसे अभीष्ट फल की प्राप्ति हो सकती है। किन्तु भगवान के अनुग्रह की आवश्यकता फिर भी बनी रहती है। इसके अतिरिक्त पुष्टिमार्गीय मानसी – सेवा करने वाला साधक आरम्भ से ही भगवान के अनुग्रह की कल्पना करता है। वह शुद्ध प्रेम द्वारा भगवद्भक्ति करता हुआ सहज ही भगवान के अनुग्रह को प्राप्त करके अपने अभीष्ट फल को भी प्राप्त करता है। इस तरह मर्यादा मार्ग की अपेक्षा पुष्टि मार्ग सरल एवं सुगम है। इसमें भगवान कृष्ण को परमब्रह्म माना गया है, वे दिव्यगुण सम्पन्न 'पुरुषोत्तम' कहलाते हैं और गुरु को ही भगवान कृष्ण का स्वरूप माना जाता है। इस भक्ति मार्ग में आने के लिए अपना सर्वस्व भगवान कृष्ण के चरणों में अर्पित किया जाता है, इसीलिये इस मत का अनुभागी प्रत्येक भक्त अपना तन–मन–धन सर्वस्व कृष्ण स्वरूप गुसाईं जी के चरणों में अर्पित करना अपना परम कर्त्तव्य मानता है।

महात्मा सूरदास ने पुष्टिमार्ग प्रेमासक्ति को ही अपनाया है। इसीलिये उनके सूर सागर में प्रेम के विविध रूप – दास्य, वात्सल्य, माधुर्य, दाम्पत्य आदि की छटा विद्यमान है। यहां भगवान श्रीकृष्ण को भी प्रेममय माना गया है। इसमें कृष्ण प्रेम के वशीभूत होकर ही ब्रज में जन्म लेते हैं। इसीलिए सूर ने 'प्रीति के वस नटवर रूप धरयौ' कहकर इसी बात का समर्थन किया है।

सूर ने प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए विरह की तीव्रानुभूति में ही विशुद्ध प्रेम के दर्शन किए हैं और वियोग, विरह–वेदना आदि के अन्तर्गत सच्चे भक्त की अभिलाषा, व्याकुलता एवं विवशता को चित्रित किया है

साधारणतः पाँच प्रकार की भक्ति प्रचलित है– (1) शान्त भाव की भक्ति, जिसमें पूज्य–पूजक भाव रहता है (2) वात्सल्य भाव की भक्ति, जिसमें भगवान के साथ जन्य–जनक भाव रहता है, (3) दाम्पत्य भाव या माधुर्य भाव की भक्ति, जिसमें भगवान के साथ पतिभाव रहता है, (4) दास्यभाव की भक्ति, जिसमें भगवान के साथ सेव्य–सेवक भाव रहता है, (5) सख्य–भाव की भक्ति, जिसमें भगवान के साथ सखा भाव रहता है। सूर की भक्ति दास्य भाव की भक्ति है जिसमें सूर अपने आराध्यदेव श्रीकृष्ण को अपना सखा मानकर अपनी भक्ति–भावना प्रकट करते हैं तथा पुष्टिमार्गीय सेवा भाव को अपनाते हैं जिसके तीनों रूप–गुरू सेवा, सन्त सेवा तथा प्रभु–सेवा सूरदास में विद्यमान हैं। पुष्टिमार्ग में नित्य सेवा–विधि और वार्षिकोत्सव सेवा–विधि का भी बड़ा महत्व है। सूर ने नित्य सेवा विधि का उल्लेख करते हुए प्रातः काल से लेकर शयनपर्यन्त भगवान की सेवा–

विधि का सांगोपांग वर्णन किया है और वार्षिकोत्सव सेवा विधि के अन्तर्गत सूर ने कृष्ण, राम, वामन आदि की जयन्तियों का पूरा–पूरा वर्णन किया है।

पुष्टिमार्ग में तीन आसक्तियाँ प्रमुख मानी गई हैं–स्वरूपासक्ति, लीलासक्ति और भाव–आसक्ति। सूर ने अपने 'सूर–सागर में मुख्यतः लीलासक्ति को ही अपनाया है और 'सूरसागर' में मुख्यतः लीला–पदों का गान करते हुए लीलासक्ति के प्रति अपनी रूचि अधिक दिखायी है। वैसे भी सूर के दीक्षागुरू वल्लभाचार्य ने सूर को लीला पदों का गान करने का ही उपदेश दिया था और इसी कारण सूरदास ने भक्ति–विभोर होकर गोकुल से लेकर मथुरा तक की समस्त कृष्ण लीलाओं का वर्णन किया है।

तुलसी के समान ही सूरदास ने भी भगवान कृष्ण को बार–बार नाथ, प्रभु, ठाकुर एवं स्वामी कहा है और स्वीकार किया है कि आपका यह भक्त पापी है, अपराधों से परिपूर्ण है और आप भक्त वत्सल हैं। इसीलिए इसको आपका ही पूर्ण भरोसा है। इस हेतु ही यह आपकी शरण में आया है।

(क) मेरी कौन गति ब्रजनाथ?
भजन विमुखडरू सरन नाहीं, फिरत विषयनि संग।
हौं पतित, अपराध पूरन भरयो कर्म विकार।
काम क्रोधडरू लोभ चितवौ, नाथ तुमहिं विसार।
उचित अपनी कृपा करिहौं तबै तो बनि जाई।
सोइ करहु जिहि चरन सेवै सूर जूठनि खाइ।

(ख) अनाथ के नाथ प्रभु कृष्ण स्वामी।
नाथ सारंगधर, कृपा करि मोहि पर,
सकल अघ–हरन हरि गरूडगामी।

(ग) सूरदास–स्वामी, यह जन अब करज श्रम हारौ।

सूरदास कहते हैं कि मैं नंदनंदन का खरीदा हुआ दास हूँ। उनकी शरण में आने के कारण यम के फंदे से मुझको छुटकारा मिल जाएगा। तिलक, तुलसी पत्र, वनमाला आदि धारण किए हुए भक्त के वेश में देखकर लोग मुझे कृष्ण का दास कहते हैं। यह सुनकर मैं बहुत खुश होता हूँ। दासवृत्ति के कारण मुझे भगवान की जूठन प्रसाद रूप में खाने को मिलती हैं। यह मेरे लिए सबसे आनंद की बात है:

हमै नंद नंदन मोल लिये।
जम के फंद कारि मुकराए, अभय आजाद किए।
भाल तिलक स्रवननि तुलसीदल मेरे अंक बिये।
मूंडयौ मूंड, कंठ बनमाला, मुद्रा–चक्र दिये।
सब कोउ कहत, गुलाम स्याम को, सुनत सिरात हियै
सूरदास कौ और बडो सुख जूठनि खाई जियै।।

दास्य भाव की भक्ति में प्रभु चरणों की शरणागति पर विशेष बल दिया गया है। भक्त भगवान के चरणों मे जाने और पडे रहने की सदा आकांक्षा करता रहता है। शरणागति ही तो उसका लक्ष्य है। तुलसी के समान सूर में भी यह भाव भरा हुआ है। वह अपनी बुद्धि को प्रबोध देते हैं कि तू रस चाहती है न? तो ले, एक उत्तम रस मैं बताता हूँ:

रे मन, सुमिरि हरि हरि हरि।
सत जज्ञ नाहिन नाम सम,
परतीति करि करि करि।
रस चरण अंबुज बुद्धि भाजन,
लेहि भरि भरि भरि
सूर श्री गोपाल हृदय राखि
धरि धरि धरि।।

भगवान के इन चरणों की शरणागति में सूर का बल तुलसी से कम नहीं है। सूर ने बार–बार भगवान की शरण चाही है। उनके सामने अनेक उदाहरण हैं कि जो भी उनकी शरण में आया, उसके दुख दूर हो गए। उसके भवफंद कट गये।

सूरदास मानते हैं कि इस संसार में अपना जो कुछ है वह सब उस भगवान को अर्पित कर देने से कुछ घटता नहीं है। तन, मन, धन आदि सब उस प्रभु को भी समर्पित करके भक्त सांसारिकता से निवृत्ति प्राप्त करता है। संसार से राग के बंधन को तोड़ना जरूरी है। बिना राग–विनाश के भगवान में आसक्ति असंभव है। वैराग्यपूर्ण भक्ति से ही सांसारिकता दूर होती है। संसार से नाता टूटने पर ही भगवान के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण का भाव पैदा होता है। अभिप्राय यह है कि वैराग्य ही भक्ति का साधन है। संसार से रागात्मक संबंध विच्छेद के लिए यह जरूरी है कि भक्त भगवान के नाम, रूप, गुण आदि के श्रवण, स्मरण एवं कीर्तन में अपने मन को लगा दे। सूरदास मानते हैं कि प्रभु की लीला गान में बड़ा सुख मिलता है:

भरोसौ दृढ़ इन चरनन केरौ
श्री वल्लभ नखचंद छटा बिन्दु
सब जग मांह अंधेरी।

जहां तक दर्शन की बात है वल्लभाचार्य का दर्शन ही सूरदास का दर्शन है किन्तु पुष्टिमार्गीय भक्ति ही 'सूरसागर' नहीं है। एक महाकवि किसी सम्प्रदाय में सीमित नहीं हो सकता। सूरदास की चेतना तो शतधा होकर उस विश्व–चेतना से मिलने के लिए 'सागर' भरती रही है

सीत–उष्ण, सुख दुख नहि मानै,
हर्ष शोक नहीं खांचे।
जाइ समाइ सूर वा निधि मैं,
बहुरि जगत नहीं नाचौ।

17.4 सारांश

इस प्रकार सूर की भक्ति–भावना का विवेचन करने पर ज्ञात होता है कि सूर ने सखा–भाव की भक्ति को अपनाते हुए भी यशोदा–नंद के वात्सल्य भाव राधा एवं गोपियों के माधुर्य एवं दाम्पत्य प्रेम की सुन्दर अभिव्यंजना की है। इसमें अनुभूति की गम्भीरता के साथ–साथ हृदय की तल्लीनता भी दिखाई देती है। सूरदास प्रेम एवं अनुकम्पा के साथ–साथ मधुरा–रति की अभिव्यक्ति में अत्यधिक तल्लीन एवं तन्मय दिखाई देते हैं। उनकी यह तल्लीनता एवं तन्मयता गोपियों की दाम्पत्य भाव की भक्ति के निरूपण में पराकाष्ठा पर पहुंच गयी है। इसीलिए सूर की भक्ति–भावना में पुष्टिमार्गीय प्रेमालक्षणा शक्ति का ही प्राधान्य है और इसी प्रेमाभक्ति को तीन रूपों में विभक्त कर सूर ने अपने पदों में व्यक्त किया है। इसमें पहले कृष्ण के प्रति नन्द–यशोदा तथा अन्य गुरूजनों के ममतापूर्ण स्नेह के रूप में। दूसरे बालसखाओं के सौहार्द के रूप में तथा तीसरे गोपियों एवं राधारानी के दाम्पत्य–भाव के रूप में प्रेमा–भक्ति की अभिव्यंजना हुई है।

17.5 स्व–मूल्यांकन

प्रिय विद्यार्थियों !

इस अध्याय में आपने सूरदास की भक्ति भावना का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिह्न द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

प्र) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए:–

1) सूरदास किसके शिष्य थे?

क) नरहरि दास ख) गोस्वामी वल्लाभाचार्य ग) रामानन्द घ) विट्ठलनाथ

2) पुष्टि में सेवा कितने प्रकार की बताई गई है।

क) दो ख) तीन ग) चार घ) पाँच

3) साधारणतः कितने प्रकार की भक्ति प्रचलित है

क) तीन ख) पाँच ग) चार घ) दो

4) पुष्टि में कितनी आसक्तियाँ प्रमुख मानी गई है–

क) दो ख) चार ग) तीन घ) पाँच

5) सूरदास भक्तिकाल की किस धारा के कवि है–

क) निर्गुण ख) सगुण ग) सूफी घ) संत

प्र2) रिक्त स्थान भरोः–

क) सूरदास का भक्ति मार्ग ही ———————— कहा जाता है।

ख) सूरदास की भक्ति–भावन सर्वप्रथम उनके ——————— के पदों में प्रकट हुई है।

ग) वल्लभाचार्य के सम्पर्क में आते ही सूरदास —————— ——————— भक्त हो गये।

घ) सूरदास ने अपने 'सूर–सागर' में मुख्यतः ————————— को ही अपनाया है।

प्र3) सही / गलतः–

क) सूरदास कहते हैं कि मैं नंदनंदन का खरीदा हुआ दास हूँ। ( )

ख) दास्य भाव की भक्ति में प्रभु चरणों की शरणागति पर विशेष बल दिया गया है। ( )

ग) पुष्टि में दास्य भावना को बहुत महत्व दिया गया है। ( )

घ) महात्मा सूरदास ने पुष्टिमार्ग प्रेमासक्ति दो ही अपनाया है। ( )

17.5 कठिन शब्द

अपरस – अनासक्त

कैतव – छल, कपट

हेम – हिम, पाला

निज – खास

पैंठ – दुकान

17.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1. सूर की भक्ति का स्वरूप स्पष्ट करते हुए प्रेम लक्षणा भक्ति एवं पुष्टिमार्गीय भक्ति का सोदाहरण उल्लेख कीजिए।

प्रश्न 2. सूरदास की भक्ति–भावना सर्वप्रथम उनके विनय के पदों में प्रकट हुई है, स्पष्ट करें।

17.8 उत्तर कुंजी

- बहु विकल्पीय प्रश्न

  1. गोस्वामी वल्लाभाचार्य   2. दो   3. पांच   4. तीन   5. सगुण

- रिक्त स्थान

  1. पुष्टि मार्ग   2. विनय   3. पुष्टिमार्गीय   4. लीलासक्ति

- सही या गलत

  1. सही   2. सही   3. गलत   4. सही

17.9 पठनीय पुस्तकें

1. सूरदास और उनका भ्रमरगीत – डॉ. श्रीनिवास शर्मा – राधा प्रकाशन, 2008।
2. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि– डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना – अग्रवाल प्रकाशन, 2012।

सूर का काव्य सौष्ठव

रूपरेखा

18.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
18.2 प्रस्तावना
18.3 सूरदास का काव्य सौष्ठव
18.4 सारांश
18.5 स्व–मूल्यांकन
- बहु विकल्पीय प्रश्न
- रिक्त स्थान
- सही या गलत
18.6 कठिन शब्द
18.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
18.8 पठनीय पुस्तकें

18.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

– प्रिय विद्यार्थियो! इस अध्याय का उद्देश्य है सूर काव्य में प्रस्तुत शब्द–भण्डार अपरिमित है इससे अवगत करवाना।

– यह भी जानना कि सूर का ब्रज भाषा के विकास की दिशा में कम योगदान न था। वे कवि होने के साथ–ही–साथ भाषा के लिए मार्ग दर्शक भी रहे हैं।

– इससे भी परिचित होना कि भ्रमर गीत में आधिक्य ब्रजभाषा के प्रचलित शब्दों का है।

– इससे अवगत होना कि ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप प्रदान करने के लिए कवि ने भ्रमर गीत में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है।

अपेक्षित परिणाम–प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरान्त विद्यार्थी सूरदास के काव्य सौष्ठव से परिचित होंगे। इससे भी परिचित होंगे कि सूर की रचनाओं में जहां भावों का सहज, सरस एवं मुक्त तेज उमड़ता दिख पड़ता है वहीं दूसरी ओर उन्होंने अपने काव्य –लोक को विभिन्न कला–सौन्दर्य के बिन्दुओं से सज्जित कर प्रस्तुत किया है।

18.2 प्रस्तावना

काव्य को भी कला का, ललितकला का एक विशिष्ट रूप माना जाता है। कला की श्रेष्ठता के लिए विद्वानों ने यह भी बतलाया है कि जिस कला – रूप में जितनी कम मूर्तता होगी, जितने ही कम उपकरणों की आवश्यकता होगी , वह उतना ही श्रेष्ठ होगा। काव्य केवल भावनाओं की कला है, जो सीधे रूप से मानव चित्त का प्रसादन कर उसे प्रभावित करती है। इस आधार पर किसी भी काव्य के सौन्दर्य पर विचार करते समय उसके भाव–पक्ष के साथ ही साथ कला–पक्ष का मूल्यांकन करना भी आवश्यक होगा।

सूर की रचनाओं में हमें जहां भावों का सहज, सरस एवं मुक्त तेज उमड़ता दिख पड़ता है वहीं दूसरी ओर कवि ने अपने काव्य –लोक को विभिन्न कला–सौन्दर्य के बिन्दुओं से सज्जित कर प्रस्तुत किया है। कला पक्ष किसी भी कृति का बाह्य सौन्दर्य होता है आन्तरिक सौंदर्य अथवा भाव–पक्ष के प्रस्तुतीकरण के लिए कला–सौन्दर्य का परिवेश भी उतना ही महत्वपूर्ण होता है।

18.3 सूर का काव्य–सौष्ठव

सूर का काव्य ब्रजभाषा का शृंगार है। उसमें विभिन्न राग–रागनियों के अन्तर्गत एवं भक्त–हृदय के भावपूर्ण उद्‌गार व्यक्त हुए हैं। जिसमें श्रीकृष्ण, गाय, वृन्दावन, गोकुल, मथुरा, यमुना, मधुवन, मुरली, गोप, गोपी आदि की महत्ता के साथ–साथ सम्पूर्ण ब्रज–जीवन, ब्रज–संस्कृति एवं ब्रज–सभ्यता मुखरित होकर गुंजायमान हो रही है। सूर का प्रत्येक पद कृष्ण–भक्ति के दधि–माखन से ओत–प्रोत है और सूर के सभी भाव भावुक हृदय की गहन अनुभूतियों के भण्डार हैं। इसलिए सूर के काव्य में एक अद्‌भुत संजीवनी शक्ति के दर्शन होते हैं, जो मधुर राग–रागनियों के माध्यम से अन्तः–करण के निगूढ़तम प्रदेश में पहुँचकर सहृदयों को ब्रह्मानन्द में लीन कर देती है। इसी कारण सम्पूर्ण ब्रज–साहित्य सूर की जूठन माना जाता है और इसीलिए सूर को सूर्य के समान एक दिव्य आलोक से परिपूर्ण माना जाता है। वास्तव में सूर ने 'तत्व, तत्व' ही कहा है और सूर का वह कथन अनुपम, अद्वितीय एवं आलौकिक है। निःसन्देह सूर के काव्य में अतुलित माधुर्य है, अनुमप सौन्दर्य है तथा अपरिमेय सौष्ठव है, निम्नलिखित शीर्षकों की दृष्टि से सूर के सम्पूर्ण काव्य को छः भागों में विभक्त किया जाता है

1 वस्तु –वर्णनः– वर्ण्य विषय की दृष्टि से सूर के सम्पूर्ण काव्य को छः भागों में विभक्त किया जाता है– (1) विनय के पद (2) बालक कृष्ण से सम्बन्धित मनोवैज्ञानिक पद, (3) कृष्ण का रूप–माधुरी सम्बन्धी पद, (4) श्रीकृष्ण और राधा के रति भाव सम्बन्धी पद, (5) मुरली–सम्बन्धी पद, तथा (6) वियोग–शृंगार सहित भ्रमर–गीत वाले पद।

इसमें से विनय के पदों में सूर ने विनय की सम्पूर्ण भूमिकाओं एवं वैष्णव भक्ति सम्बन्धी समस्त नियमों के अनुकूल विनम्रता निरभिमानता, निष्कपटता, सर्वस्वार्पण, इष्टदेव की महत्ता, भक्त की लघुता आदि का निरूपण बड़ी सजीवता के साथ किया है। इन पदों में सूर ने पतित–पावन एवं दीनबन्धु के सम्मुख अपने हृदय को खोलकर रख दिया है, अपने सम्पूर्ण अपराधों एवं दोषों को स्वीकार किया है तथा एकमात्र भक्ति की ही कामना की है। दूसरे, श्रीकृष्ण के बाल–जीवन सम्बन्धी पदों में तो सूर की अद्‌भुत कला के दर्शन होते हैं, क्योंकि उन पदों में सूर ने बाल जीवन का ऐसा जीता–जागता चित्रण किया है। जिनमें मनोवैज्ञानिकता के साथ–साथ सरसता एवं चिताकर्षकत्ता अत्यधिक मात्रा में विद्यमान है। तीसरे श्रीकृष्ण के रूप–माधुरी सम्बन्धी पदों में सूर ने अपने इष्टदेव–कृष्ण के अनन्त सौन्दर्य की ऐसी मनोहर झाँकी अंकित की है, जिसके सौन्दर्य वर्णन ने ही अनेक कृष्ण–भक्तों को जन्म दिया है क्योंकि भक्ति का ऐसा अद्‌भुत सौन्दर्य–सम्पन्न आलम्बन सूर से पहले और कोई भक्त–कवि नहीं दे सका है। चौथे, श्रीकृष्ण और राधा के रतिभाव सम्बन्धी पदों में भले ही जयदेव और विद्यापति की छाया दृष्टिगोचर होती है, परन्तु यहाँ सूर ने कृष्ण के साथ–साथ राधा को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है और उसे आराध्य देवी के पद पर प्रतिष्ठित करके ब्रह्म की शक्ति के रूप में ही चित्रित किया है। वैसे श्रीमद्‌भागवत् में राधा नहीं है। इसीलिए सूर ने राधा को नायिका का स्थान देकर एक ओर तो शृंगार रस के आलम्बन के द्वारा साहित्यिक आदर्श की रक्षा की है और दूसरी ओर भक्ति एवं उपासना के लिए एक सुन्दर युगल मूर्ति प्रदान करके धार्मिक आदर्श की भी स्थापना की है। पाँचवें, मुरली सम्बंधी पदों में सूर ने मुरली के व्यापक प्रभाव को प्रदर्शित करते हुए उसे एक साधारण मनोमुग्धकारी यन्त्र ही नहीं रहने दिया है, अपितु 'योग्य–माया' का स्थान दे दिया है, जिससे मुरली जीवात्मा रूपी गोपियों को ब्रह्मरूपी श्रीकृष्ण से मिलाने में सहायक बनती है और निरन्तर ब्रह्म के समीप विद्यमान रहती हुई ब्रह्म की अनन्य उपासिका गोपियों के लिए ईर्ष्या का विषय

भी बन जाती है। वास्तव में सूर की मुरली सम्बन्धी उक्तियाँ बड़ी ही मर्मस्पर्शिनी हैं, जिनमें सपत्नी भाव के साथ–साथ उक्ति वैचित्र्य भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। छठे, वियोग–वर्णन के अन्तर्गत आये हुए भ्रमर–गीत सम्बन्धी पदों में सूर की सर्वोत्कृष्ट कला के दर्शन होते हैं। क्योंकि इन पदों में सूर ने सरसता, वाग्वैदग्ध्य एवं माधुर्य के साथ–साथ उद्धव–सन्देश, गोपियों की झुँझलाहट एवं झल्लाहट, प्रेमातिरेक, व्यंग्य–विनोद एवं हास–परिहास, उपालम्भ, उदारता, सहज चपलता, विरहोन्माद, वचन–वक्रता आदि का व्यापक चित्रण किया है। इस प्रकार सूर ने श्रीकृष्ण के बाल–जीवन से लेकर किशोरावस्था तक की सम्पूर्ण क्रीड़ाओं, चेष्टाओं, व्यापारों आदि का मनोहारी चित्रण करके 'सूरसागर' के रूप में अद्भुत काव्य की सृष्टि की है, जिसमें वात्सल्य एवं विप्रलम्भ सम्बन्धी वर्णन सर्वोपरि है और जो सूर की अलौकिक प्रतिभा, उर्वर कल्पना एवं गहन अनुभूति के परिचायक हैं।

(2) प्रकृति–निरूपण – सूर का काव्य ब्रज–प्रदेश की सुरम्य प्रकृति का रमणीय स्थल है। इसमें ब्रज की प्रकृति –सुन्दरी का मनोहारी नर्त्तन पद–पद पर सुनाई पड़ता है, उसकी रूपमाण धुरी स्थान–स्थान पर दिखाई देती है और उसका आनन्दोल्लासपूर्ण मधुर कलरव प्रत्येक पद में गुंजायमान हो रहा है। सूर ने प्रकृति–नटी की रमणीय झाँकी अंकित करते हुए उसके षड्ऋतुओं में परिवर्तित होने वाले दिव्य सौन्दर्य का अच्छा निरूपण किया है। इसीलिए वसन्त–ऋतु में ब्रज के अन्तर्गत सदैव कोकिल शोर मचाती रहती है, सदा मन्मथ चित चुराता रहता है, द्रुम–डालियाँ विविध वर्ण के सुमनों से भर जाती हैं, जिन पर भ्रमरावली उन्मत्त होकर गूँजने लगती है, सर्वत्र हर्ष एवं उल्लास छा जाता है और कोई भी उदास नहीं रहता –

सदा बसन्त रहत जहँ बास। सदा हर्ष जहँ नहीं उदास।।
कोकिल कीर सदा तहँ रोर। सदा रूप मन्मथ चित चोर।।
विविध सुमन बन फूले डार। उन्मत मधुकर भ्रमत अपार।।

ऐसी ही शरद ऋतु में भी ब्रज की प्रकृति एक अद्भुत सौन्दर्य से सुसज्जित हो उठती है, क्योंकि सरोवरों में नए–नए सरोज और कुमुदिनी के फूल खिल उठते हैं, चन्द्रिका में सम्पूर्ण वन–प्रदेश स्नान करने लगता है, आकाश भी स्वच्छ रहता है, पृथ्वी रंग–बिरंगे फूलों से आच्छादित हो उठती है। सूर ने शरद की उस दिव्य आभा का निरूपण करते हुए लिखा भी है –

आजु निसि सोभित सरद सुहाई।
सीतल मन्द सुगन्ध पवन बहे रोम–रोम सुखदाई।।

अथवा –

सरद चाँदनी रजनी सोहे वृन्दावन श्रीकुन्ज।
प्रफुलित सुमन, विविध रंग जहँ–जहँ कूजत कोकिल पुंज।।

सूर ने वर्षा ऋतु में विविध आकृति धारण करने वाली ब्रज–प्रकृति की रमणीय झाँकी भी अंकित की है क्योंकि उस समय वन–उपवन हरीतिमा से भर जाते हैं जलाश्य जल से परिपूर्ण हो जाते हैं, इन्द्रधनुष चमकने लगता है, घन–घटा के बीच वक–पंक्ति दिखाई देने लगती है, चारों और घटायें घिर आती हैं, दामिनी चमकने लगती है, पपीहा पी–पी रटने लगता है, दादुर, पिक और मोर शोर करने लगते हैं और हरी–हरी घास पर अरूण बीरबहूटी चित्त को चुराने लगती है। उस क्षण बादल मदन के हाथी जैसे दिखाई देने लगते हैं, जो अपने बन्धन तोड़कर विरहिणी बालाओं पर आक्रमण करते हुए से जान पड़ते हैं। फिर सावन का महीना तो नई उमंग, नया उल्लास, नई आशा–आकांक्षा एवं नया जीवन लेकर आता है। सूर ने सावन का मनोरम चित्र अंकित करते हुए लिखा है –

कैसे के भरिहैं री दिन सावन के।
हरित भूमि भरे सलिल सरोवर, मिटे मग मोहन आवन के।।
दादुर मोर सोन चातक पिक, निसा सिरावन के।।
गरज चहूँ घन धुमड़ि दामिनी मदन धनुश धन धावन के।
पहिरि कुसुम सारी कुचंकि तन, झुँडनि झुँडनि गावन के।
सूरदास प्रभु दुसह घटत क्यों, सोक त्रिगुन सिर रावन के।।

इतना ही नहीं, सूर ने ब्रज–प्रकृति की रमणीय झाँकी अंकित करते हुए प्रभात, वन, द्रुम, लता पुष्प, यमुना, चन्द्रमा, उषा, सन्ध्या आदि का बड़ा ही सरस एवं सुन्दर वर्णन किया है, परन्तु सूर के काव्य में सर्वत्र प्रकृति के रमणीय रूप की ही झाँकी नहीं मिलती, अपितु सूर ने प्रकृति के भयंकर रूप का भी चित्र अंकित किया है। प्रकृति का यह भंयकर रूप दावानल के वर्णन में दिखाई देता है, जिसके परिणामस्वरूप दसों दिशाओं में भयंकर लपटें उठनें लगती हैं, बाँस फटने लगते हैं, कुश–काँस थरथराने लगते हैं, अंगार उलटने लगते हैं, कराल लपटें वन का विध्वंस करने लगती हैं, धरा से अम्बर तक धुआँ मेघ–सा छा जाता है और बीच–बीच में ज्वाला दामिनी सी चमकने लगती है। उस समय जंगली जीव–जन्तु, वाराह, हिरन, मोर, चातक आदि सभी बेचौन हो उठते हैं –

भहरात, झहरात दावानल आयौ।
घेरि चहुँ ओर करि सोर अंदोर बन, धरनि आकाश चहुँ, पास छायौ।
बरत बन बाँस थरहरत कुस काँस, जरि उड़त है भाँस, अति प्रबल धायौ।।
झपटि झपटति लपट फूल–फूल चट–चटकि फटत लटलटकि द्रुम–दल नवायौ।

इस तरह सूर ने अपने काव्य में प्रकृत्ति के सुरम्य एवं भयानक दोनो रूपों की मनोरम झाँकियाँ अंकित की हैं, परन्तु सूर के प्रकृत्ति–चित्रण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि सूर के आराध्यदेव निरन्तर प्रकृत्ति में ही रमण करते हैं, वन विहार करते हैं, वन में ही महारास रचाते हैं, वृन्दावन में गौएँ चराते हैं, गोवर्द्धन धारण करते हैं तथा कुंजों में विहार करते हैं। इसी प्रकार सूर के सभी पात्र प्रकृतिमय हो गए हैं और प्रकृत्ति सतत साहचर्य के कारण प्रकृति और सूर के पात्रों में पूर्ण तादात्म्य हो गया है। दूसरे सूर ने शास्त्रीय दृष्टि से प्रकृति के उद्दीपन रूप को ही अधिक अपनाया है। सूर के पदों मे सर्वत्र प्रकृति सूर के पात्रों के मनोभावों को उद्दीप्त करती हुई दिखाई गई है। इसी कारण यहाँ शरदकालीन चाँदनी कामोद्दीपन करती हुई विरहिणी गोपियों पर आक्रमण करती हुई दिखाई देती है, चातक और कोयल उन्हें पीड़ा पहुँचाते हैं, चन्द्रमा की पीयूष–वर्षिणी निशा आग बरसाने लगती है तथा शीतल कुंजे विषम ज्वाला का समूह बन जाती हैं। तीसरे, सूर ने प्रकृति के संवेदनात्मक रूप की बड़ी सजीव झाँकी अंकित की है। इसी से गोपियों की ही भाँति यमुना भी श्रीकृष्ण के वियोग–ज्वर में पीड़ित होकर काली पड़ जाती है और सभी ऋतुयें ब्रज में कुछ और ही हो जाती हैं। चौथे, प्रकृति के आलंकारिक रूप का चित्रण भी सूर ने अत्यधिक मात्रा में किया है। बहुधा उत्प्रेक्षा अलंकार के लिए तो सूर प्रसिद्ध ही हैं और उसके लिए सूर ने प्रकृति के विभिन्न पदार्थों का उपयोग किया है, परन्तु 'अद्भुत एक अनुपम बाग' वाले पद में सूर ने रूपकातिशयोक्ति का भी अद्भुत चमत्कार दिखाया है। पाँचवे, सूर का प्रकृति–चित्रण सांस्कृतिक परम्परा का भी द्योतक है, क्योंकि ब्रज की प्रकृति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्यापारों, चेष्टाओं एवं पदार्थों का वर्णन करते हुए सूर ने ब्रज की सांस्कृतिक महत्ता का भी निरूपण किया है, जिसमें अनायास ही यमुना, वृन्दावन, गोवर्द्धन, मधुवन आदि के प्रति हमारे ह्रदयों में अटूट श्रद्धा जाग्रत हो जाती है और हमें ब्रज की रमणीय प्रकृति में एक पावन एवं पुनीत भावना विद्यमान दिखाई देने लगती है। छठे, सूर का प्रकृति–वर्णन विविधता एवं सौन्दर्यप्रियता के लिए प्रसिद्ध है, उसमें कल्पना एवं भावना को सजग करने की अपूर्व क्षमता है तथा कठोर ह्रदय को भी आकृष्ट करके अपने रूप–सौन्दर्य में रमा लेने की अद्भुत शक्ति है।

इतना होने पर भी सूर के प्रकृति–चित्रण में कतिपय दोष भी है। जैसे, सूर ने भी यमुना में कमल खिलाये हैं और उन पर भौरों को गूँजते हुए अंकित किया है। अपने आराध्य देव के आलौकिक कार्यों की ओर संकेत करने के लिए सूर ने भी गोवर्द्धन पर्वत को श्रीकृष्ण द्वारा उँगली पर उठाते हुए लिखा है तथा उन्हें दावानल का पान करते हुए बताया है। इतना ही नहीं, सूर ने रोटी पर रखे हुए माखन की 'मनो बराह भूधसर सह पृथ्वी धरी दसनन की कोटी' कहकर विचित्र कल्पना की है। साथ ही बालक कृष्ण द्वारा अँगूठा–पार्न न किया है, जो हास्यास्पद ही जान पड़ता है, परन्तु ये सभी वर्णन सूर की अनन्य भक्ति एवं इष्टदेव की महत्ता के परिचायक होने के कारण दोषपूर्ण होकर भी सरस एंव आकर्षक जान पड़ते हैं।

(3) **भाव एवं रस का निरूपण** – 'सूर–सागर' विभिन्न भावोर्मियों से तरंगायित है, जिसमें कहीं प्रेम, कहीं असूया, कहीं ईर्ष्या, कहीं वितर्क, कहीं क्षोभ, कहीं स्पर्धा, कहीं क्रोध, कहीं उत्साह, कहीं रति, कहीं हास, कहीं शोक, कहीं विस्मय, कहीं जुगुप्सा, कहीं भय आदि अनेक भावों की सुन्दर एवं सजीव व्यंजना हुई है। सूर के पद सहृदयता, सरसता एवं भावुकता के भण्डार हैं, जिनमें विविध भावों की योजना इतनी सुव्यवस्थित ढंग से की गई है कि प्रत्येक पद मर्मस्पर्शी एवं हृदयद्रावक बन गया है। यही कारण है सूर के पदों में विभिन्न भावों के साथ–साथ विविध रसों की भी सुन्दर एवं सजीव झाँकियाँ मिलती हैं। सूर के पदों मे प्रेम की आतुरता एवं तल्लीनता के बड़े ही रमणीय चित्र मिलते हैं। गोपियों के छलकते हुए प्रेम को सूर ने अपने पदों के माध्यम से इतनी सजीवता के साथ व्यक्त किया है कि देखते ही बनता है। श्रीकृष्ण के अनन्य प्रेम में अनुरक्त गोपियों की मनोदशा के चित्रण में सूर ने प्रेम–भाव की विविध झाँकियाँ अंकित की हैं। श्रीकृष्ण के रूप–सौन्दर्य पर अपना मन न्यौछावर कर देने वाली एक प्रेमासक्त गोपी की स्थिति का चित्रण करते हुए सूर ने प्रेम–भाव की कैसी सरस व्यंजना की है –

मेरो मन गोपाल हर्यौ री।
चितवत ही उर पैठि नैन मंग ना जानौं धौं कहा कर्यौ री।।
माता पिता पति बन्धु सजन जन, सखि आँगन सब भवन भरयौ री।
लोक–वेद प्रतिहार–पहरुआ तिनहूँ पै राख्यौ न पर्यौ री।।

कृष्ण के प्रेम में अनुरक्त गोपियों की मनोदशा का चित्रण करते हुए सूर ने प्रेम की गहनता, गुरुता एवं महत्ता का बड़ा ही सजीव प्रतिपादन किया है। कृष्ण की विरहानुभूति में लीन गोपियों की व्यथामयी स्थिति के चित्रण में इस उत्कृष्ट प्रेम की झाँकी और भी गुरुता एवं गम्भीरता के साथ अंकित की गई है। इसलिए सूर की गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं –

हम अलि गोकुल–नाथ अराध्यौ।
मन–बच–क्रम हरि सों धरि पतिब्रत प्रेम जोग तप साध्यौ।

प्रेम भाव के अतिरिक्त सूर ने अन्य भावों के चित्र भी बड़ी ही तत्परता के साथ अंकित किए हैं। जैसे, 'स्पर्धा' नामक मनोभाव का चित्र देखिए –

मैया कबहिं बढैगी चोटी।
कितनी बार मोहि दूध पिवत भई, यह अजहूँ है छोटी।।
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों है है लाँबी मोटी।

ऐसे ही 'क्षोभ ' नामक मनोभाव की झाँकी अंकित करते हुए सूर ने कैसा सजीव चित्रण किया है –

खेलत मैं को काको गुसैयाँ।
हरि हारे, जीते श्रीदामा, बरबस की कत करत रिसैयाँ।।
जाति–पाँति हमते बढ़ नाहीं, न बसत तुम्हारी छैयाँ।
अति अधिकार जनावत यातें, अधिक तुम्हारे है कुछ गैयाँ।।

सूर ने रोष–मिश्रित 'खीझ' एवं झुँझलाहट का चित्रण करते हुए दुःख मिश्रित क्रोध की बड़ी ही सुन्दर व्यंजना की है। यशोदा अत्यन्त खीझ के साथ नन्द से कह रही है –

छाँड़ि सनेह चले मथुरा कत, दौरि न चीर गह्यौं
फाटि न गई बज्र सी छाती कत यह सूल सह्यौ।।

इतना ही नहीं, दैन्य–मिश्रित क्षोभ एवं उदासीनता की झाँकी अंकित करते हुए सूर ने यशोदा की मनोदशा का कैसा भावपूर्ण चित्रण किया है –

संदेसो देवकी सों कहियों।
हौं तो धाय तिहारे सूत की, कृपा करति ही रहियो।।

सूर के पदों में असूया, स्मृति, चिन्ता, वितर्क, ग्लानि, शोक, औत्सुक्य, विषाद, आवेग, जड़ता आदि के अनेक चित्र भरे पड़े हैं। उदाहरण के लिए 'असूया' नामक भाव का सजीव चित्रण देखिए –

मुरली तऊ गोपालहिं भावति।
सुन री सखी तदपि नन्दनन्दहिं नाना भाँति नचावति।।

ऐसे ही सूर ने गोपियों की मनोदशा का चित्रण करते हुए 'स्मृति' नामक भाव का निरूपण इस प्रकार किया है –

एहि बिरियाँ बन तें ब्रज आवते।
दूरहिं ते वह बेनु अधर धरि बारम्बार बजावते।।

इसी तरह सूर ने अन्य अनेक भावों का चित्रण बड़ी ही कुशलता एवं निपुणता के साथ किया है। भावों के इन विविध चित्रों के अतिरिक्त सूर ने विविध रसों की भी बड़ी ही मनोरम झाँकियाँ अंकित की हैं। उदाहरण के लिए, कतिपय रसों के चित्र आगे दिए जाते हैं, जिनमें सूर ने अपनी कला–चातुरी प्रदर्शित की है –

(1) संयोग श्रृंगार –

राधा रुचि–रुचि सेज सँवारति।
तापर सुमन सुगन्ध विछावति बारम्बार निहारति।।
भवन गवन करि हैं हरि मेरे हरषि दुखहिं निरुवारति।
आवैं कबहुँ अचानक ही कहि सुभग पाँवड़े डारति।
इहिं अभिलाखहिं मै हरि प्रगटे निरखि भवन सकुचानी।
वह सुख श्री राधा माधौ को 'सूर' उनहिं जिय जानी।।

(2) वियोग श्रृंगार –

पिया बिनु नागिनी कारी रात।
जो कहुँ जामिनी उवति जुन्हैया डसि उलटी है जात।।

जन्त्र न फुरत मन्त्र नहिं लागत प्रीति सिरानी जात।
सूर स्याम बिपु विकल विरहिनी मुरि–मुरि लहरैं खात।।

(3) हास्य –

मैया मैं नहिं माखन खायौ।
ख्याल परैं ये सखा सबै मिलि, मेरे मुख लपटायौ।।
देखि तुही छींके पर भाजन, ऊँचे घरि लटकायौ।
हौं जु कहत नान्हें कर अपने, मै कैसे करि पायौ।
मुख दधि पौछिं बुद्धि इक कीन्हीं दोना पीठि दुरायौ।
डारि साँटि मुसुकाइ जसोदा स्यामहिं कण्ठ लगायौ।

(4) करूण –

पटकत बाँस काँस कुस लटकत, लटकत ताल तमाल।
उचटत अति अगार फूटत पर, झपटत लपट कराल।।
धूम धूँधि बाढ़ी उर अम्बर, चमकत बिच–बिच ज्वाल।
हरिन–बराइ–मोर–चातक–पिक जरत जीव बेहाल।।

(5) रौद्र

प्रथमहिं देउँ गिरिहिं बहाइ।
बजघातनि करौं चुरकुट, देउँ धरनि मिलाई

....

रिस सहित सुरराज लीन्हे प्रलय मेघ बुलाइ।
सुर सुरपति कहत पुनि–पुनि परौ ब्रज पर आइ।।

(6) वीर –

आजु जौं हरिहिं न सस्त्र गहाऊँ।
तो लाजौ गंगा जननी कों, सांतनु सुत न कहाऊँ।।
स्यदन खंडित महारथि खंडौं, कपिध्वज सहित गिराऊँ।
पाडंव–दल सम्मुख है धाऊँ, सरिता रुधिर बहाऊँ।।

(7) भयानक –

भहरात झहरात दावानल आयौ।
घेरि चहुँ ओर करि सोर अंदोर बन धरनि आकास चहुँ पास छायौ।
बरत बन बाँस, थरहरत कुसकाँस, जरि उडत है भाँस अति प्रबल धायौ।
झपटि–झपटति लपट फूल–फूल, चंट–चटकि फटत लट लटकि द्रुमदल नवायौ।

(8) वीभत्स –

आप कहां ब्रजराज मनोहर कहाँ कूबरी राड़।
जिहि छन करत कलोल संग रति गिरधर अपनी चाड़।।
काटत है परजंक ताहि छिन कैधौं खोदत खाड़।
किधौं सदा विपरीत रचत हैं गहि गहि आसन गाड़।
'सूर' सयान भये हरि बाँधत, माँस खाइ गल हाड़।।

(9) अद्‌भुत –

मथत दधि मथनी टेकि खर्यौ।
आरि करत मटुकी गहि मोहन वासुकि संभु डर्यौ।
मन्दर दुरत सिंधु पुनि काँपत फिरि जति मथन करै।
प्रलय होय जनि गहौ मथानी विधि मरजाब टरै।।
सुर अरिसुर ठाढ़े सब चितबै नैनन नीर ढरै।
सूरदास प्रभु मुग्ध जसोदा, मुख दधि बिन्दु गिरैं।

(10) शान्त –

चरन कमल बन्दौ हरिराई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे कूँ सब कछु दरसाई।
बहिरो सुनै मूक पुनि–बोले, रंक चलै सिर छत्र धराई।
'सूरदास' स्वामी करुनामय बार–बार बन्दौ तेहि पाई।।

(11) वात्सल्य –

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत।
मनिमय कनक नन्द कैं आँगन, बिम्ब पकरिवैं धावत।।
कबहुँ निरखि हरि आपु छाँह कौ, कर सौं पकरन चाहत।
किलकि हँसत राजत द्वै दँतियाँ, पुनि–पुनि तिंहि अवगाहत।।

सारांश यह है कि सूर ने विविध मनोवैज्ञानिक चित्रों के साथ–साथ रसों का बड़ा ही सुन्दर समन्वय स्थापित किया है। सूर ने उद्‌भावनाशक्ति बड़ी प्रखर दिखाई है। इसीलिए सूर ने एक ही पदार्थ एवं एक ही विषय पर अनेकानेक गीतों की रचना की है और उन सभी गीतों में सुन्दर भावों की सृष्टि करते हुए अपनी नवनवोन्मेश शालिनी प्रतिभा द्वारा विविध रसों का हृदयस्पर्शी वर्णन किया है, परन्तु वात्सल्य एवं विप्रलम्भ शृंगार के वर्णन में सूर सर्वोपरि हैं। वात्सल्य रस के वर्णन में तो सूर हिन्दी–साहित्य के अन्तर्गत सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं, क्योंकि सूर ने ही अपनी वर्णन–क्षमता द्वारा वात्सल्य भाव को रस की कोटि तक पहुँचाया है। सूर के भाव एवं रस के निरूपण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें उक्ति–वैचित्र्य एंव वाग्वैदग्ध्य की प्रचुरता है। इसी कारण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी लिखा है कि "सूर में जितनी सहृदयता और भावुकता है, उतनी ही वाग्विदग्धता भी है।" इसमें कोई सन्देह नहीं कि सूर के भ्रमर–गीत सम्बन्धी पद भावकुता के साथ–साथ वाग्विदग्धता से परिपूर्ण हैं। वियोग शृंगार का वर्णन करते हुए सूर ने वाणी की चातुरी द्वारा जो वक्रता एवं विदग्धता की सृष्टि की है, वह सर्वथा अनुपम एवं अपरिमेय है। निःसन्देह, सूर भावों के सम्राट हैं, हृदयगत मनोभावों के पारखी हैं और विविध रसों के मर्मज्ञ कवि हैं। इसलिए सूर का प्रत्येक पद सरलता एवं स्वाभाविकता के साथ–साथ रसास्वादन एंव चमत्कारवादिता से ओत–प्रोत है, उसमें भारतीय जीवन रस का स्त्रोत उमड़ रहा है और वह अद्‌भुत आकर्षण एवं अनुपम कला से परिपूर्ण दिखाई देता है।

(4) **अलंकार योजना** – सूर के काव्य में वस्तु–विन्यास का अत्यन्त अभाव है, क्योंकि सूर ने राधा और श्रीकृष्ण के रूप–सौन्दर्य, यमुना, गोप–गोपी, लता–कुन्ज, वृन्दावन, ब्रज–विपिन आदि के अतिरिक्त अन्य पदार्थों का वर्णन नहीं किया है और इस अभाव की पूर्ति सूर ने अलंकार योजना द्वारा की है। रूप–सौन्दर्य के चित्रण में सूर ने उसी पुरानी परिपाटी का पालन करते हुए घन–दामिनी, सनाल–कमल, नील–मेघ आदि प्राकृतिक उपमानों का प्रयोग किया है तथा ब्रज प्रदेश के अन्य प्रमुख पदार्थों का वर्णन करते हुए सूर ने केवल यमुना–तट, वंशीवट, कुन्ज–वाटिका, गोचारण, वन–विहार आदि तक ही अपने को सीमित रखा है। वैसे सूर के काव्य में शब्द और अर्थ–सम्बन्धी दोनों प्रकार के

अलंकारों की प्रचुरता है, परन्तु शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों का ही बाहुल्य है। सूर उक्ति–वैचित्र्य एवं वाग्वैदग्ध्य के कुशल चितेरे हैं। इसी कारण उनके काव्य में ऐसे अलंकारों की बहुलता है, जो दुरारूढ़ कल्पना के साथ–साथ वैचित्र्य एंव वैशिष्ट्य के द्योतक हैं। सूर ने इसीलिए उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, रूपकातिश्योक्ति, प्रतिवस्तूपमा आदि अर्थालंकारों के साथ–साथ वर्णन–वैचित्र्य दिखाने के लिए श्लेष, वीप्सा, वक्रोक्ति, यमक आदि शब्दालंकारों का भी उपयोग किया है यदि उनका सूरसागर अर्थालंकारों का भण्डार है तो साहित्य–लहरी शब्दालंकारों की निधि है क्योंकि उसके दृष्टकूटों में श्लेष एवं यमक की प्रचुरता है।

सूर की अलंकार–योजना में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि सूर की चमत्कार–प्रियता में सहृदयता का पुट बराबर रहता है। इसीलिए सूर की वाग्विदग्धता प्रत्येक स्थल पर रसात्मकता से ओत–प्रोत दिखाई देती है। वैसे सूर ने कहीं–कहीं अलंकारों की बहुलता द्वारा अपने मनोभावों को व्यक्त करने की चेष्टा की है और उन अलंकारों में भी उत्प्रेक्षा का आश्रय अत्याधिक लिया है, फिर भी सूर की सौन्दर्यानुभूति वहाँ भी अलंकारों का नियन्त्रण करती हुई दृष्टिगोचर होती है वैसे सूर एक ही भाव को व्यक्त करने के लिए विभिन्न अलंकारों का सहारा लेते हैं और विविध रूपों मे उसका वर्णन करते हुए अपनी गहन सौन्दर्यानुभूति का परिचय देते हैं। जैसे श्रीकृष्ण के अधरों की लाली का वर्णन करते हुए सूर ने अपनी रचना–निपुणता के साथ–साथ, अलंकारों की विविधता एवं अपनी गहन सौन्दर्यानुभूति को इस तरह व्यक्त किया है –

देखि सखि अधरन की लाली।
मनि मरकत तैं सुभग कलेवर, ऐसे है, बनमाली।।
मनौं प्रात की घटा साँवरी, तापर अरुन प्रकास।
ज्यों दामिनी बिच चमकि रहत है, फहरत पीत सुबास।।

इतना रूप–सौन्दर्य का आलंकारिक वर्णन करने के उपरान्त अब सूर केवल अधरों की लाली का ही वर्णन अलंकारों की विविधता के साथ करते हैं –

कीधौं तरुन तमाल बेलि चढ़ि, जुग फल बिम्ब सुपाके।
नासा कीर आइ मनु बैठ्यौ, तेल बनत नहिं ताके।।
हँसाति दसन इक सोभा उपजति, उपमा जदपि लजाइ।
मनौ नीलमनि–पुट मुकुता–गन, बंदन भरि बगराइ।।
किधौं वज्रकन, लाल नगनि खँचि, तापर विद्रुम पाँति।
किधौं सुमन बन्धूक–कुसुम–तर, झलकत जल कन काँति।।
किधौं अरुन अंबुज बिच बैठी सुन्दरताई आइ।
सूर अरुन अधरिन की सोभा, बरनत बरनि न जाइ।।

उक्त पद में रूपक, सन्देह, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक आदि अलंकारों के द्वारा सूर ने श्रीकृष्ण के मुख–सौन्दर्य का कितना प्रभावोत्पादक एवं मर्मस्पर्शी वर्णन किया है, जिससे अलंकारों की विविधता द्वारा सौन्दर्यानुभूति का बड़ा ही सजीव एवं सशक्त चित्रण मिलता है। इस प्रकार सूर ने बड़ी सहृदयता के साथ अलंकारों का भावानुकूल वर्णन किया है।

इतना ही नहीं,सूर ने सांगरूपकों द्वारा भी भावुकता एवं सहृदयता के साथ–साथ गहन सौन्दर्यानुभूति को व्यक्त किया है। यद्यपि सांगरूपकों के निर्वाह में सूर सर्वत्र सफल नहीं दिखाई देते, तथापि ''माधौ जू नेंक हटको गाइ'' वाले पद में गाय के द्वारा अविद्या–माया का वर्णन करते हुए सूर ने अपने अद्भुत कौशल एवं अनुपम सांगरूपक–योजना का परिचय दिया है, जिसमें सीधी सादी पद–योजना द्वारा अभीष्ट प्रभाव डालने की सफल चेष्टा हुई है जो कवि की

उर्वर कल्पना एवं उत्कृष्ट कलाप्रियता की भी द्योतक हैं। इसी तरह सूर ने संसार रूपी सागर की भयंकरता का वर्णन करते हुए एक सुन्दर सांगरूपक की सृष्टि की है, जिसमें माया को जल, लोभ को लहर, कामदेव को ग्राह, इन्द्रियों को मछली, पापों को सिर का बोझ, क्रोध–दम्भ–गुमान–तृष्णा आदि को झंझावात, नाम को नौका आदि कहकर अपनी उत्कृष्ट अलंकार–योजना का परिचय इस तरह दिया है –

अब कैं नाथ मोहि उधारि।
मगन हौं भाव–अम्बुनिधि में, कृपासिंधु मुरारि।।
नीर अति गम्भीर माया, लोभ–लहरि तरंग।
लिए जात अगाध जल कौं, गहे ग्राह अनंग।।
मीन इन्द्री तनहिं काटत, मोट अध सिर भार।
पग न इत उत धरन पावत, उरझि मोह सिवार।।
क्रोध–दम्भ–गुमान तृष्ना, पवन अति झकझोक।
नाहिं चितवन देत सुत–प्रिय, नाम नौका ओर।
थक्यौ बीच विहाल विह्वल, सुनौ करुनामूल।
स्याम, भुज गहि काढ़ि लीजै, सूर ब्रज कैं कूल।।

इस भाँति सूर ने रूपकातिशयोक्ति अलंकार द्वारा भी अद्‌भुत सौन्दर्यानुभूति का परिचय दिया है।

इसके लिए सूर ने 'अद्‌भुत एक अनुपम बाग' नामक पद में साहित्य–प्रसिद्ध समस्त उपमानों को लेकर अद्‌भुत कौशल दिखाया है। इसी तरह निम्नलिखित पद में भी रूपकातिशयोक्ति अलंकार द्वारा ब्रह्म के निवास–स्थान का मार्मिक वर्णन करते हुए जीवात्मा को वहाँ पहुँचने का आग्रह किया है –

चलि सखि तेहि सरोवर जांहि।
जिहिं सरोवर कमल–कमला रवि बिना बिकसाहिं।

ऐसे ही सूर ने 'नन्द नन्दन मुख देखौ माई' पद में अतिशयोक्ति का, 'चातक न होइ कोउविरहिनि नारी' में अपन्हुति का, हरि के चंचल नैनों को कमल के तुल्य कहकर 'निसि मुद्रित प्रातहि वै विकसित ये विकसित दिन रात में प्रतीप को, 'मुरली सुनत अचल चले' में विभावना का, 'उपमा नैनन एक गही' में व्यतिरेक का,' नाम सुनत अक्रुर तुम्हारे क्रुर भये हो आइ, में परिकइ अलंकार का, दूर करहु बीना कर धरिबो, में विषादन का, तबतें इल सबहिन सचु पायौ, पद में अप्रस्तुत प्रशंसा का तथा 'चकई री चलि चरन–सरोवर जहाँ प्रेम वियोग में अन्योक्ति अलंकार का चमत्कार प्रदर्शित किया है।

उक्त अर्थालंकारों के अतिरिक्त सूर ने अपना चमत्कार–कौशल दिखाने के लिए अनेक शब्दालंकारों का भी प्रयोग किया। जैसे –''जनम जनम जब जब जिहि–जिहि जुग जहं–जहां जन जाइ' में वृत्यानुप्रास,'चरचित चन्दन नील कलेवर बरसत बूँदनि सावन' में छेकानुप्रास, 'धनि राधिका धन्य सुन्दरता धनि मोहन की जोरी' में श्रुत्यानुप्रास, 'हा हा नाथ अनाथ करो जिनि टेरति बाँह पसारि' में वीप्सा, उदै सारंग जान सारंग गयौ अपने देश' में यमक, 'रे मन सुमिरि हरि हरि हरि, सत जज्ञ नाहिन नाम सम परतीति करि करि करि में पुनरुक्ति–प्रकाश आदि विभिन्न शब्दालंकारों द्वारा सूर ने उक्ति वैचित्र्य के साथ–साथ अर्थ–गाम्भीर्य की सृष्टि की है।

सारांश यह है कि सूर की अलंकार–योजना में भावानुकूलता के साथ–साथ सहृदयता एवं वाग्विदग्धता का प्राधान्य है। वैसे सूर के पदों में नाद–सौन्दर्य एवं ध्वन्यात्मकता लाने के कारण अनुप्रास की बहुलता हो गई है परन्तु सूर के

शब्दालंकार व्यर्थ भर्ती के लिए नहीं आये हैं, उसमें संगीतात्मकता के साथ–साथ भाव–सौन्दर्य की भी सुन्दर सृष्टि हुई है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सूर के पास कहने के लिए वर्णय विषय अत्यन्त सूक्ष्म रहा है और उसको विस्तार देने के लिए ही अप्रस्तुत–योजना अथवा अलंकारों का आश्रय लिया है, फिर भी सूर की अलंकार–योजना भावाभिव्यक्ति के साथ–साथ काव्योत्कर्ष में सहायक सिद्ध हुई है। इतना अवश्य है कि किसी–किसी पद में 'मानो' की भरमार देखकर मन ऊब जाता है परन्तु ऐसे पद अपेक्षाकृत कम हैं। साथ ही कहीं–कहीं ऊहात्मक प्रणाली का प्रयोग करते हुए सूर ने दूरारूढ़ कल्पना का भी सहारा लिया है और 'कर धनु ले किन चंदहि मारि' आदि कहकर अस्वाभाविकता का भी प्रदर्शन किया है। फिर भी उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि सादृश्यमूलक अलंकारों की योजना करके सूर के काव्य की रमणीयता एवं सौन्दर्यानुभूति की गहनता का परिचय दिया है तथा सूर के ये सभी अलंकार भाषा को बोझिल न करके सुन्दर भावाभिव्यक्ति में ही सहायक सिद्ध हुए हैं।

(5) **सूर की भाषा** – सूर के काव्य की भाषा ब्रज–प्रदेश की प्रसिद्ध बोली है, जो ब्रजभाषा के नाम से अभिहित की जाती है, परन्तु सूर की ब्रजभाषा एवं उसके शब्द–भण्डार का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि सूर ने अपनी पूर्ववर्ती भाषाओं एवं समकालीन विभाषाओं के अनेकानेक शब्द अपनाये हैं और अन्धे होने पर भी उनकी साहित्यिक भाषा में गुजराती, राजस्थानी एवं पंजाबी भाषा के शब्द भी मिलते हैं। इतना ही नहीं, इनकी भाषा में खड़ीबोली, अवधी, कन्नौजी, बुन्देलखण्डी आदि बोलियों के अतिरिक्त अरबी, फारसी एवं तुर्की के भी शब्द मिल जाते हैं। सूर का शब्द–भण्डार बड़ा विस्तृत है। अध्ययन की सुविधा के लिए सम्पूर्ण शब्द–भण्डार को छःभागों में विभक्त किया जा सकता है –

(क) संस्कृत के शब्द

(ख) गुजराती, पंजाबी आदि समकालीन भाषाओं के शब्द

(ग) खड़ीबोली, अवधी, कन्नौजी, बुन्देलखण्डी आदि हिन्दी–बोलियों के शब्द

(घ) अरबी, फारसी, तुर्की आदि विदेशी भाषाओं के शब्द

(ड) देशज शब्द

(च) मिश्रित शब्द

(क) **संस्कृत के शब्द** – सूर के काव्य में संस्कृत–शब्दों की ही बहुलता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि उत्तरी भारत की अधिकांश भाषाओं के भण्डार की वृद्धि संस्कृत शब्दों द्वारा हुई है। साथ ही ब्रजभाषा का सम्बन्ध शौरसेनी से है और शौरसेनी का सीधा सम्बन्ध संस्कृत से ही रहा है। संस्कृत वैसे भी मध्यप्रदेश की प्रमुख भाषा रही है और आज तक उसका सर्वाधिक प्रभाव मध्यदेशीय समस्त भाषाओं एंव विभाषाओं पर दिखाई देता है। संस्कृत के इन शब्दों को तीन भागों में बाँट सकते हैं – (1) तत्सम, (2) अर्द्धतत्सम और (3) तद्भव।

(1) **संस्कृत के तत्सम शब्दः** सूर की रचनाओं में संस्कृत के शुद्ध तत्सम शब्द पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं। जैसे दधि, घृत, मधु, सरस, मयूर–चन्द्रिका, आभिष, रुधिर, अस्थि, चिबुक, द्विज, कपोल, पुरीष, नाभि, स्वजन, भव–मद, मृतक, कामधेनु, गज, कुंजर, कपोत, उलूक, चक्रवाक, कोक, गरुड़, खद्योत, मधुप, मीन, मकारकृत, भ्रमर, कल्पना, जीविका, घ्त्रास, त्राहि, प्रतिष्ठा, मुखारविंद, कुसुमांजलि रुद्रादिक आदि।

(2) **संस्कृत के अर्द्ध–तत्सम शब्द** – सूर ने राग एंव सुर की दृष्टि से तत्सम शब्दों का प्रयोग इस प्रकार किया है कि वे अर्द्ध–तत्सम जैसे हो गए हैं। वे शब्द इस प्रकार हैं – अगिनि, अम्रित, अस्थानं, दरपन, परजंत (पर्यन्त), विलम, मरजादा, रतन, पदारथ, परतीति, मरम, रिधि (ऋद्धि), अस्तुति, निहकाम, लछमी, सरकज, सवाद, करतार, कृतध्न, विसकर्मा, सूकर, परबोधत आदि।

(३) **संस्कृत के तद्भव शब्द** – अँगूठा, अंध्यारी आँसू, अचरज, उछा, कोख, काठ, गाड़े, चौक, जीभ, ताती, पाहन, निनारे, पौरी, बैन, हिय, सतिया, लरी, पाती, काठ, ओटाई, उनहार, आग, उघरी, उबटन, अनाखौंही, आजु, मोती, बिज्जु, वियाहन, मसान, लच्छा, बछल, साँझ, सरिस, लिलार आदि।

(ख) **गुजराती एवं पंजाबी के शब्द** – सूर के काव्य में संस्कृत के अतिरिक्त तत्कालीन प्रान्तीय भाषाओं के शब्द भी मिलते हैं, जिनमें से गुजराती, राजस्थानी तथा पंजाबी भाषायें प्रमुख हैं। जैसे – 'पेला' 'वियौ' आदि गुजराती के शब्द हैं तथा 'प्यारी' शब्द महँगी के अर्थ मे पंजाबी से आया है।

(ग) **हिन्दी बोलियों के शब्द** – सूर की भाषा वैसे तो ब्रजभाषा है, परन्तु सूर ने ऐसे अनेक शब्दों का प्रयोग किया है, जो हिन्दी की विभिन्न बोलियों के हैं उदाहरण के लिए, जैसे गाया, आया, लखाया, ओढ़ाया, बताया, लाया है, जाया है, चरन कमल चित लाया है, आदि शब्द खड़ी बोली के हैं छोट, बड़, अस, आहि, इहाँ, उहाँ, कीन, दुबार, वियारी, मोर, तोर आदि शब्द अवधी के हैं, हुतो, हुती आदि कन्नौज के शब्द हैं, और जानिबी, प्रगटबी आदि बुन्देलखण्डी के शब्दों का प्रयोग किया गया है।

(घ) **विदेशी भाषाओं के शब्द** – सूर ने तत्कालीन भाारतीय बोली, विभाषा एवं भाषाओं के शब्द के अतिरिक्त अविदेशी भाषाओं के शब्दों को भी प्र्याप्त मात्रा में ग्रहण किया है और उनके द्वारा अद्भुत चमत्कार के साथ–साथ भाव–गाम्भीर्य की सृष्टि की है। जैसे अमल, अमनी, कलई, कसब, जवाब, मुजरा, मुहकम, मुहर्रिर, मौज, मुसाहिब, कागर, खबर, खाली, तलफ, दगा, मसकत, मिलिक, सफरी, मसखरा आदि शब्द अरबी भाषा के अपनाये हैं कमान, गुमान, चुगली, दलाली, दरबार, दीवान, मेहमानी, सरदार, राह, अँदेसा, आजाद, आवाज, असवार, गुनाहगार, गरद, जहर, जोर, बेसरम, सोर आदि फारसी के शब्दों का प्रयोग किया है और 'शील सुरंग कुमैत' कहकर 'कुमैत' तुर्की भाषा का शब्द ग्रहण किया है।

(ड) **देशज शब्द** – उक्त शब्दों के अतिरिक्त सूर के पदों में देशज शब्दों की भी भरमार है। सूर के ये देशज शब्द ऐसे हैं। जो ब्रज के गाँवों में बोले जाते हैं परन्तु न तो इनके मूल उद्गम का पता है और न इनकी व्युत्पति ही सम्भव है। ये शब्द विभिन्न जातीय एवं विजाातीय भाषाओं से गृहीत होकर भी ऐसे अद्भुत एवं विलक्षण रूप में ब्रज के अन्तर्गत प्रचलित हैं कि इनको किसी एक भाषा का कहना सर्वथा असम्भव है तथा अब ये ब्रजभाषा की सहज सम्पत्ति बन गए हैं। जैसे– झुगली, झाम, ढबरी, ढाढ़ी (गायक), घैया, झुगियाँ, ढुकी, टूकटूक, बोहनी, मोट, गोड़ियाँ, खुनुस, टकटोरत, डहकावै, घमर, खरभर, झमक, ठुनक, धरधर, झकोर रुनुक–झुनुक आदि।

(च) **मिश्रित शब्द** – सूर ने कुछ ऐसे भी शब्द अपनाये हैं, जो देशी एंव विदेशी शब्दों के सम्मिश्रण से अथवा देशी प्रत्यय एवं विदेशी शब्दों के योग से बनाये गये हैं। जैसे – 'अनलायक', 'अनाहक' शब्दों मे देशी प्रत्यय, 'अन' एवं विदेशी 'लायक' एंव 'नाहक' शब्दों का मिश्रण हुआ है। ऐसे ही फौजपति, बेपीर, बेहाल, लौन हरामी आदि शब्दों मे देशी और विदेशी शब्दों का मिश्रण करके शब्द बनाये गये हैं।

18.4 सारांश

इस प्रकार सूर ने विभिन्न भाषाओं के शब्दों को ग्रहण करके अपनी ब्रजभाषा को समर्थ, सशक्त एवं समृद्ध बनाया है, उसके बोलचाल के रूप को सँवार कर शुद्ध साहित्यिक रूप प्रदान किया है और उसे विविध राग–रागनियों के अनुकूल ढालकर नाद–सौन्दर्य एवं संगीतात्मकता से ओतप्रोत किया है। कहना न होगा कि सूर भ्रमरगीत सार में जहां विरह–चित्रणों के सन्दर्भ में भावों की मर्मस्पर्शी करुणधारा प्रवाहित कर सकने में सफल हुए हैं, वहीं दूसरी ओर

वे कला पक्ष के विभिन्न सौंदर्य–रूपों के अंकन में भी उतने ही आगे बढ़ गए हैं। इस प्रकार भ्रमर गीत सार का कला सौष्ठव सूर काव्य के महान बिन्दुओं में अपना उल्लेखनीय स्थान रखता है।

18.5 स्व–मूल्यांकन

प्रिय विद्यार्थियों !

इस अध्याय में आपने सूरदास के काव्य सौष्ठव का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिह्न द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं।

प्र1) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिएः–

1) सूरदास का काव्य किस भाषा में रचित है?

क) ब्रजभाषा   ख) मैथिली   ग) अवधी   घ) अपभ्रंष

2) वर्णय विषय की दृष्टि से सूर के सम्पर्क काव्य को कितने भागों में विभक्त किया गया है।

क) तीन   ख) छः   ग) चार   घ) पांच

3) सूरदास के ईष्टदेव कौन थे?

क) श्री राम   ख) श्री कृष्ण   ग) शिव   घ) इनमें से कोई नहीं

4) सूरदास की भक्ति मानी जाती है–

क) सखा भाव की   ख) दास्य भाव की

ग) माधुर्य भाव की   घ) कान्ता भाव की

5) सूरदास किस रस के वर्णन में हिन्दी–साहित्य के अन्तर्गत श्रेष्ठ माने जाते हैं।

क) शांत रस   ख) वीर

ग) वाल्सल्य रस   घ) रौद्र

प्र2) रिक्त स्थान भरोः–

क) सूरदास का काव्य––––की सुरम्य प्रकृति का रमणीय स्थल है।

ख) सूरदास वात्सल्य एवं––––––– के वर्णन में सर्वोपरि है।

ग) सूरदास में जितनी सहृदयता और भावुकता है, उतनी ––––ही भी है।

घ) सूरदास का सूरसागर––––का भण्डार है।

ङ) सूरदास का––––शब्दलंकारों की निधि है।

प्र3) सही / गलतः–

क) सूर की अलंकार–योजना में उनकी चमत्कार–प्रियता में सहृदयता का पुट बराबर रहता है। ( )

ख) अर्थालंकारों के अतिरिक्त सूरदास ने अपना चमत्कार– कौशल दिखाने के लिए अनेक शब्दलंकारों का भी प्रयोग किया। ( )

ग) सूरदास ने विभिन्न भाषाओं के शब्दों को ग्रहण करके ब्रजभाषा को समर्थ, सशक्त एवं समृद्ध बनाया है। ( )

18.6 कठिन शब्द

गथ – पूँजी

सई – गई

निज – खास

विरान – पराया

कमोरी – दूध

झकति – झींखतीं है

बसबास – निवास

18.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1 सूरदास के काव्य सौष्ठव पर विचार करें।

2. सूर की भाषा की विशेषताएँ बताइये।

3 'सूर काव्य में प्रतीकों का सफल प्रयोग है'–युक्तियुक्त उतर दीजिए।

4. सूर काव्य के कला पक्ष की विशेषताएं लिखें।

18.8 पठनीय पुस्तकें

1. सूरदास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – वाणी प्रकाशन, 2022।

तुलसीदास का समन्वयवाद / लोकनायकत्व

रूपरेखा

19.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

19.2 प्रस्तावना

19.3 तुलसीदास का समन्वयवाद / लोकनायकत्व

19.4 सारांश

19.5 स्व–मूल्यांकन

- बहु विकल्पीय प्रश्न
- रिक्त स्थान
- सही या गलत

19.6 कठिन शब्द

19.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

19.8 पठनीय पुस्तकें

19.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रिय विद्यार्थियो! इस अध्याय का उद्देश्य आपको तुलसीदास के समन्वयवाद व लोकनायकत्व से अवगत करवाना है।

अपेक्षित परिणाम – आप जान सकेंगे कि तुलसी ने अपने अनुभव, अनवेक्षण, शास्त्रज्ञान और सहृदयता के आधार पर कवित्व, धर्म और भक्ति की त्रिपथगा का निर्माण किया और उनकी समन्वय–साधना बहुमुखी है।

– आप जान सकेंगे कि किस प्रकार तुलसी ने सामाजिक विषमता को दूर करने के लिए समन्वय की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया और स्वयं धर्म, राजनीति, समाज, साहित्य आदि के क्षेत्रों में यथा सम्भव समन्वय स्थापित करते हुए पारस्परिक विरोध एवं वैषम्य को दूर करने का प्रयास किया।

19.2 प्रस्तावना

समन्वय भारतीय संस्कृति की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। समय–समय पर इस देश में कितनी ही संस्कृतियों का आगमन और आविर्भाव हुआ, परन्तु वे घुल मिल कर एक हो गयीं। कितनी ही दार्शनिक, धार्मिक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, साहित्यिक और सौंदर्यमूलक विचारधाराओं का विकास हुआ, किन्तु उनकी परिणति संगत के रूप में हुई उदारचेता विचारकों की सारग्राहिणी प्रतिभा ने दूसरों की ग्राह्यमान्यताओं को निस्संकोच भाव से ग्रहण किया। यह समन्वय–भावना का ही परिणाम है कि नास्तिक बौद्धों ने राम को बोधिसत्व मान लिया, और आस्तिक वैष्णवों ने बुद्ध की अवतार रूप में प्रतिष्ठा की। सांख्य–योग एवं न्याय–वैशेषिक में वेदांत के ईश्वर की सत्ता स्वीकार की गयी, और वेदांत में सांख्य की सृष्टि–प्रक्रिया, योग की ज्ञान–साधना तथा न्याय की तर्क–प्रणाली को गौरव दिया गया। अर्थ–काम

और धर्म–मोक्ष में, वेद–शास्त्र और लोक–परंपरा में, प्रवृत्ति और निवृत्ति में, साहित्य और जीवन में समन्वय स्थापित करने के विराट प्रयत्न किये गये, अनेकता मे एकता की स्थापना की गयी, वैषम्य में साम्य का दर्शन किया गया।

समन्वय–सिद्धांत का व्यवस्थित निरूपण और 'कार्यान्वयन मदारी का वृक्ष नहीं है। वह प्रत्यक्ष अनुभव, सूक्ष्म अवेक्षण और गहन अनुशीलन का सम्मिलत परिणाम है। जीवन स्वयं समझौता है। तुलसी ने जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में रहकर उसका साक्षात् अनुभव किया है। वे ब्राह्मण–पुत्र थे। पेट की आग बुझाने के लिए उन्हें 'जाति के सुजाति के कुजाती के' टुकड़े भी खाने पड़े थे। द्वार–द्वार भीख भी माँगी थी, और मठाधीश का सुख–भोग भी किया था। लोगों ने'दगाबाज' कहकर गालियाँ भी दी थीं, और महामुनि मानकर भूपतियों तक ने पाँव भी पूजे थे। वे यौवन की कामासक्ति के शिकार भी हुए थे, और वैराग्य की पराकाष्ठा पर पहुँचकर आत्माराम भी हो गये थे। वे अर्थ काम–पंकिल, भव सरिता से निकलकर धर्म–दर्शन–विशिष्ट रामभक्ति की राजडगर पर आये थे। उनमें कवि की कारयित्री प्रतिभा, भक्त के निष्काम हृदय और समाज सुधारक की लोकमंगल–भावना का अपूर्व समन्वय था। उन्होंने अपने अनुभव, अनवेक्षण, शास्त्रज्ञान और सहृदयता के आधार पर कवित्व, धर्म और भक्ति की त्रिपथगा का निर्माण किया। उनकी समन्वय–साधना बहुमुखी है

'समन्वय' (सम्+अनु+इ+अच) का व्युत्पत्यर्थ है – नियमित क्रम, संयोग, पारस्परिक संबंध। जब शब्द और अर्थ, भाषा और भाव, ब्राह्मण और शूद्र आदि के समन्वय की बात कही जाती है तब समन्वय का अर्थ होता है –उनके पारस्परिक संबंध का निर्वाह। यह उसका व्यापक अर्थ है। उसका एक संकुचित और विशिष्ट अर्थ भी है– परस्पर–विरोधी प्रतीत होने वाली वस्तुओं या बातों का विरोधपरिहारपूर्वक सामंजस्य। नास्तिक–द्वैतवादी सांख्य और आस्तिक अद्वैतवादी वेदांत के समन्वय का अर्थ होता है – इन दोनों मतों के प्रतीयमान विरोध का परिहार करके दोनों में सामंजस्य–स्थापन। तुलसी दोनों ही अर्थों में समन्वय–साधक हैं।

19.3 तुलसी का समन्वयवाद / लोकनायकत्व

समन्वय के देश में महान् लोकनायक वही हो सकता है जिसमें विशाल समन्वय–बुद्धि हो और जो उस बद्धि का सदुपयोग कर सके। धर्म–दर्शन और समाज सुधार के क्षेत्र में गौतम बुद्ध इसी प्रकार के लोकनायक थे। उनकी महिमा की आधारभूमि 'मध्यमा प्रतिपदा' समन्वय का ही मार्ग है। वाड्.मय के क्षेत्र में इतिहास–पुराण समन्वय–साधना के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। उनमें भागवतपुराण और महाभारत का स्थान अन्यतम है। उनमें विचारधाराओं का संगम है, रोचक कथाओं की सहायता से तत्वज्ञान का उपस्थापन है, किंतु कांतासम्मित उपदेश का विधान करने वाले काव्य की सरसता नहीं है। संस्कृत में रचित होने के कारण वे तुलसीयुगीन लोक–मानस का नेतृत्व करने में असमर्थ थे। लोकदर्शी तुलसी ने जनता के हृदय की धड़कन को पहचाना और 'रामचरितमानस' के रूप में समन्वय का वह अद्भुत आदर्श प्रस्तुत किया जो अपने कवित्वपय भक्ति–दर्शन, भक्तिदर्शनमय कवित्व और आमूढ़–पंडितव्यापिनी लोकप्रियता के कारण अद्वितीय है।

द्वैत–अद्वैत – तुलसी का दार्शनिक समन्वयवाद अत्यंत विवाद का विषय रहा है। तुलसी के युग में वेदांत का प्रभुत्व था। उसके भीतर भी दो प्रकार के संघर्ष थे – (1) सभी वैष्णव आचार्य शंकर के निर्गुण ब्रह्मवाद और मायावाद के विरोधी थे। (2) सभी अद्वैतवादी मध्यवाचार्य के द्वैतावाद के विरोधी थे। तुलसी शंकर के ब्रह्मवाद और रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद से मुख्यता प्रभावित थे। परन्तु अन्य मतों से भी उन्होंने विचार ग्रहण किये हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि उपनिषदों और वेदांत–संप्रदायों में जो मान्यताएँ समान रूप से पायी जाती हैं वे तुलसी को स्वीकार्य हैं, जैसे ब्रह्म सच्चिदानंदस्वरूप हैं, वह जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादन और आश्रय है आदि। परन्तु जहाँ अद्वैतवादियों और वैष्णव–वेदांतियों में मतभेद हैं, वहाँ उन्होंने समन्वयवादी दृष्टि से काम लिया है। केवल द्वैतवाद के अनुसार ब्रह्म

स्वरूपतः निर्गुण, निर्विशेष और निर्लक्षण है, अर्थात् उसमें कृपा आदि विशेषताएँ नहीं हैं, माया अविद्या है, उसके अस्तित्व के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता, माया की उपाधि से युक्त सगुण ब्रह्म (ईश्वर) ही अवतार लेता है, एकमात्र (निर्गुण) ब्रह्म ही सत्य है, जीव, जगत और 'ईश्वर' सब मिथ्या है, केवल–ज्ञान ही मुक्ति का साधन है, आत्म–स्वरूप में स्थित हो जाता, है जीव के जीवत्व का नाश ही मुक्ति है। वैष्णव आचार्यों के अनुसार ब्रह्म स्वरूपतः सगुण अर्थात, कृपा आदि दिव्य गुणों से युक्त है, वही कृष्ण आदि के रूप में अवतार लेता है उसी की शक्ति माया है, जीव उसी का अंश है, सालोक्य आदि मुक्तियाँ श्रेष्ठ हैं।

निर्गुण और सगुणः निर्गुण और सगुण का विवाद दो क्षेत्रों में था, दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में और भक्ति के क्षेत्र में। शंकराचार्य के निर्गुण ब्रह्मवाद के विरुद्ध रामानुज और वल्लभ ने बहुत बल देकर ब्रह्म को स्वभावतः बतलाया था। तुलसी ने राम को बारंबार निर्गुण–सगुण स्वरूप कहा है –

1. **सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा।।**
2. **अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा।।**
3. **जय सगुण निर्गुण रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।**

वस्तुतः राम एक हैं। वे ही निर्गुण और सगुण, निराकार और साकार, अव्यक्त और व्यक्त, अंतर्यामी और बहिर्यामी, गुणातीत और गुणाश्रय हैं। निर्गुण राम ही भक्तों के प्रेम–वश सगुण–रूप में प्रकट होते हैं। दोनों में कोई विरोध नहीं है। यह विश्वास की बात है। अपनी प्रीति–प्रतीति के अनुसार भक्त उन्हें किसी भी रूप में भज सकता है। तुलसी और उनके काव्य में अंकित भक्त सगुण–रूप के उपासक हैं, क्योंकि सगुण राम की भुजाएँ ही भक्तों पर छाया करती आयी हैं, कर रही हैं और करती रहेंगी। इसका मनोवैज्ञानिक कारण है। भक्त अपने चारों ओर उस भगवान् को देखना चाहता है, जो संकट के समय काम भी आ सके। इसीलिए स्वरूपतः अभिन्न होते हुए भी अंतर्यामी की अपेक्षा बहिर्यामी श्रेष्ठ है। पुनश्चः, तुलसी के सगुण–साकार राम के रूप और गुण का शील, शक्ति, और सौंदर्य का अनुपम साम्य है।

विद्या और अविद्या माया – अद्वैतवाद में 'माया और अविद्या' पर्यायवाची हैं। वैष्णव आचार्य ऐसा नहीं मानते। वे माया को स्वभावतः ब्रह्मा की शक्ति मानते हैं। तुलसी ने दोनों के समन्वित सिद्धांत को ग्रहण किया है। माया की दो विधाएँ विद्या और अविद्या तुलसी की अविद्या–माया (मोह–कारणी–शक्ति) अद्वैतवादियों की 'माया' है। तुलसी ने उसी को मिथ्या कहा है, और उसके लिए प्रायः 'माया' शब्द का ही प्रयोग किया है। इससे लोगों को भ्रम हो जाता है कि वे शंकराचार्य के मतानुयायी हैं। तुलसी की विद्या–माया शंकर की माया से भिन्न है, क्योंकि वह जगत् की रचना (विक्षेप नहीं) करती है और भक्तों का कल्याण भी। उनके अनुसार माया राम की भावरूपा अभिन्न शक्ति है।

माया और प्रकृति – सांख्या–योग के अनुसार स्वतंत्र प्रकृति सृष्टि का कारण है, यह स्थूल जगत् उसी का विकार है। अद्वैतवाद में मिथ्या जगत् की व्याख्या करने के लिए माया की कल्पना की गयी और जगत् को माया की विक्षेप–शक्ति का कार्य (विवर्त) माना गया। वैष्णवों ने परब्रह्म और उसकी शक्ति माया द्वारा विश्व का निर्माण माना। सृष्टि–प्रकृति के विषय में तुलसी ने वैष्णव–वेदांत की माया और सांख्य योग की प्रकृति का समन्वय किया। उन्होंने प्रकृति को राम के अधीन और माया से अभिन्न मानकर दोनों में एकसूत्रता स्थापित की, सांख्यों के प्रकृति परिणामवाद को समेटते हुए अविकृत ईश्वर–परिणामवाद की प्रतिष्ठा की। उन्होंने चार्वाकों के स्वभाव, वैशेषिकों के काल–परमाणु, मीमांसकों के कर्म और शैवों की चित्–शक्ति को रामाश्रित बतलाकर इन सभी का समन्वय किया है।

जगत् की सत्यता और असत्यता – सांख्य–योग, वैष्णव–वेदांत, पांचरात्र आगम और मत में जगत् की सत्यता स्वीकार की गयी है। माध्यमिक बौद्धों ने शंकरमतानुयायियों के अनुसार जगत् की सत्ता मायिक आभासमात्र (काल्पनिक)

है। वेद–विरोधी, अनात्मवादी, अनीश्वरवादी बौद्ध तुलसी की दृष्टि में सर्वथा तिरस्करणीय हैं। शेष मतों का उन्होंने समन्वय किया है। विवर्तवादी वेदांतियों के अनुरूप उक्तियाँ हैं –

(1) **रजत सीप महुँ जिमि जथा भानु कर वारि।**

(2) **यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।**

(3) **झूठो है झूठो है झूठो सदा जग संत कहंत जै अंत लहा है।**

इसके विरुद्ध राम को विश्वरूप तथा जगत् को रामरूप और राम का अंग बतलाकर उन्होंने जगत् की सत्यता प्रतिपादित की है। क्योंकि राम से अभिन्न जगत् मिथ्या नहीं हो सकता। वस्तुतः वह विरोधाभास है। समाधान यह है कि जगत् प्रवाह–रूप से नित्य है। कभी वह कारण–रूप में अव्यक्त रहता है, और कभी कार्य–रूप में व्यक्त। राम से भिन्न प्रतीत होने वाला उसका कार्य–रूप परिवर्तनशील होने के कारण मिथ्या है। ज्ञान का उदय होने पर संपूर्ण जगत् दिखायी देने लगता है, विरोध का प्रश्न ही नहीं उठता–

निज प्रभु मय देखहिं केहि सन सरहि विरोध

दूसरे शब्दों में, तुलसी ने द्वैतवादी और अद्वैतवादी मतों का समन्वय किया है। राम और जगत् में अभेद् है, किन्तु प्रतीयमान व्यावहारिक भेद भी है।

जीव का भेद–अभेद – तुलसी का जीव–विषयक सिद्धांत वैष्णव–सैद्धांतियों के मत का समन्वय है रामानुज और वल्लभ के अनुसार जीव ईश्वर का अंश, नित्य ज्ञाता, कर्ता, भोक्ता, ईश्वराधीन आदि है। तुलसी ने भेदभाव ओर अभेदवाद दोनों का समन्वय किया है। स्वरूप की दृष्टि से जीवन और ईश्वर में अभेद है। वह ईश्वर का अंश है, अतः ईश्वर की भाँति ही सत्य, चेतना एवं आनंदमय है, ऐश्वर्य आदि की दृष्टि से दोनों में भेद है जीवों की संख्या अनंत है। जीव ईश्वर का अंश मात्र है। वह माया का स्वामी नहीं है। मुक्त होने पर वह ईश्वर का स्वरूप तो प्राप्त कर लेता है, किन्तु ऐश्वर्य नहीं। उसका सारुप्य भोग–साम्य तक ही सीमित है। उसमें ईश्वर की सर्वज्ञता, सर्वव्यापकता और सर्वशक्तिमत्ता नहीं आती।

भाग्य और पुरुषार्थ – इस संबंध में प्राचीनकाल से ही विभिन्न मत प्रचलित रहे हैं। कुछ विद्वान दैव को, कुछ स्वभाव को, कुछ पुरुषकार को, और कुछ इनके संयोग को फल प्राप्ति का कारण मानते हैं। ये मत तीन वर्गों के अंतर्गत रखे जा सकते हैं – दैववाद या भाग्यवाद, पुरुष्कारवाद या पुरुषार्थवाद और संयोगवाद और समन्वयवाद। 'रामचरितमानस' में तीनों प्रकार की उक्तियाँ मिलती हैं। कहीं पुरुषार्थवाद की प्रतिष्ठा है, कहीं भाग्यवाद का उपस्थापन है, और कहीं समन्वयवाद की स्थापना है प्रश्न उठता है, तुलसी का सिद्धांत क्या है? उत्तर है–समन्वयवाद। वस्तुतः पौरुष ही प्रधान है, प्राक्तन (पूर्वदेहार्जित) पौरुष का नाम ही दैव या भाग्य है। जिस पौरुष के साथ फल के कार्य–कारण संबंध को हम मिला नहीं पाते, उसी को भाग्य कह दिया करते हैं। इस जन्म की सफलता में भी पूर्व जन्म का पौरुष सहायक होता है, सिद्धि का रथ पौरुष और भाग्य के दोनों पहियों पर चलता है। याज्ञवल्क्य आदि की भाँति तुलसी भी समन्वयवादी हैं –

पुरुषारथ पूरब करम परमेस्वर परधान।
तुलसी पैरत सरित ज्यों सबहि काज अनुमान।।

ईश्वर पौरुष एवं भाग्य का संचालक तथा नियामक है। इस सिद्धांत का मनोवैज्ञानिक कारण है। ईश्वर–बुद्धि से कर्म करने वाले जीव को पुरुषार्थ की सफलता पर अंहकार नहीं होता, उसकी असफलता पर कुंठा नहीं होती।

कर्म–ज्ञान भक्ति – जीवन की पूर्णता इन तीनों के समन्वय में है। वही साधना सिद्धिदायिनी होती है जो साधक की पूरी सत्ता के साथ की जाए। इसीलिए विभिन्न साधना–पद्धतियों में इन तीनों को स्थान दिया गया है। ये तीनों अन्योन्याश्रित हैं। सत्कर्म के बिना चित्त निर्मल नहीं हो सकता और मलावृत चित्त में ज्ञान–भक्ति का उदय असम्भव है। समाज–व्यवस्था के लिए सदाचार अनिवार्य है। धर्ममय रथ से ही जीवन–सग्रांम में विजय मिल सकती है। ज्ञान–भक्ति से रहित कर्म मल–जनक और बंधन–कारक होता है। अतएवं तुलसी ने तीनों के समन्वय पर बल दिया है।

ज्ञान और भक्ति ही तत्वतः मुक्ति–साधन हैं। कर्म, वैराग्य, योग आदि इन साधनों के साधन हैं। सांख्य–योग और शंकर वेदांत में ज्ञान की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गयी है। वैष्णव आचार्यों ने भक्ति को श्रेष्ठ माना है तुलसी ने दोनों का समन्वय करते हुए विरति–विवेक–संयुक्त भक्ति, और ज्ञानी भक्त को श्रेष्ठ बतलाया है –

(1) **श्रुति सम्मत हरि भगति पथ संजुत विरति विवेक**

(2) **राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृति चारिउ उनघ उदारा।।**
चहुँ चतुर चहुँ नाम आधारा। ज्ञानी प्रभुहि बिसेषि पिश्रारा।।

भक्ति के क्षेत्र में उन्होंने नवधा भक्तियों का समन्वय किया है। 'रामचरितमानस' के तृतीय सोपान में लक्ष्मण को भक्ति का उपदेश देते हुए राम ने 'भागवतपुराण' की नवधा भक्ति का निरूपण किया है। दोनों मान्य हैं। अधिकारी की योग्यता के अनुसार भक्ति का कोई भी प्रकार ग्रहणीय है।

भक्ति की श्रेष्ठता के तीन प्रमुख कारण हैं – मनोविज्ञान, अधिकारी की योग्यता और युगधर्म

(1) मन स्वभावतः रागात्मक है। उसे आलंबन चाहिए। भक्ति रागात्मका वृति है। वह मानव–मन के अनुकूल और सहज–ग्राह्य है। (2) प्रत्येक व्यक्ति सभी साधनाओं के उपयुक्त नहीं है। उसकी शक्ति सीमित है। धन–साध्य कर्म–मार्ग और कष्ट–साध्य ज्ञानपंथ सबके वश की बात नहीं है भक्ति सर्वोपयोगी है। (3) कलियुग के अत्याचारी शासन की प्रतिकूल परिस्थितियों में धर्म–पालन और ज्ञान–साधना दुष्कर है। भक्ति ही श्रेयस्कर उपाय है। उनमें भी नाम–भक्ति अधिक फलप्रद और निरापद है। नाम–भक्ति की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह निर्गुणियों और सगुण–भक्तों को समान रूप से मान्य है इसके द्वारा दोनों भक्ति–धाराओं का भी समन्वय हो जाता है –

अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी।

जीवनमुक्ति और विदेहमुक्ति – अद्वैतवादियों के अनुसार, आत्मसाक्षात्कार या ब्रह्मसाक्षात्कार होने पर देहावसान के पूर्व ही आत्मा की जीवनमुक्ति हो जाती है। अधिकतर वैष्णव आचार्य जीवनमुक्ति नहीं मानते। विदेहमुक्ति के भी अनेक प्रकार बतलाये गये हैं –मुक्तिकोपनिषद्' में कहा गया है कि सालोक्य–मुक्ति नाम भक्तों को सारूप्यमुक्ति सांख्ययोगी भक्तों का, सामीप्यामुक्ति सेवाभिलाषी भक्तों का और सायुज्यमुक्ति अद्वैतवेदांती निर्गुणोपासकों का इष्ट है। 'रामचरितमानस' में समन्वयवादी तुलसी को जीवनमुक्ति तथा विदेहमुक्ति के उक्त चारों प्रकार मान्य हैं। इनमें कोई विरोध नहीं है। ज्ञान और भक्ति का उदय ही मनोमुक्ति है। शरीरांत के बाद मुक्तात्मा अपने भावानुसार चौतन्यमात्र स्वरूप से या परमात्मा में अभिन्न रूप से अथवा भगवान् के सदृश दिव्यगुणों से संपन्न होकर स्थित हो सकता है।

पं० गिरधर शर्मा, पं० विजयानंद त्रिपाठी आदि ने तुलसी को अद्वैतवादी माना है। पं० श्रीकांतशरण ने संपूर्ण तुलसी–साहित्य की विशिष्टाद्वैतपरक विशद व्याख्या की है। रसिक–संप्रदाय में तुलसी सखी–रूप में समादृत हैं। उपर्युक्त दिग्दर्शन से स्पष्ट है कि तुलसी किसी दार्शनिक संप्रदाय के कठघरे में बंद नहीं किये जा सकते। एकाध आलोचक और संपादक इस मोह से आक्रांत हैं कि जो तुलसी को अद्वैतवादी (शंकरमतानुयायी) नहीं मानता। वह अद्वैत–वेदांत को समझता ही नहीं है। ऐसे ही निर्गुण ब्रह्म के स्वंयभू ठेकेदारों को लक्ष्य करके तुलसी ने 'रामचरितमानस'

के शिव से कहलवाया था – जिन्ह कृत महामोह मद पाना। तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना। उन्हें अद्वैतवादी सिद्ध करने के लिए कुछ पंक्तियाँ नोच ली जाती हैं, और प्रतिकूल पड़ने वाले अंशों की अपेक्षा कर दी जाती है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

बिनुपद चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु करम करै बिधि नाना।
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी। आदि
जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान।।

दोहे के ऊपर की चौपाइयों मे 'श्वेताश्वरोपनिषद्' के अनुसार निर्गुण राम का निरूपण किया गया है। यह अद्वैतवाद के अनुकूल है। किंतु दोहा इसके विरुद्ध है, इसलिए छोड़ दिया जाता है। शंकराचार्य के मतानुसार निर्गुण ब्रह्म अवतार नहीं लेता, यह कार्य मायोपति सगुण ब्रह्म का है तुलसी दोनों में भेद नहीं मानते। उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि जो निर्गुण है वही सगुण है, वही अवतार है। दूसरी उक्ति है –

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा।
यत्सत्वादमृषैब भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।

दूसरी पंक्ति को लेकर अद्वैतवाद की घोषणा की जाती है, किन्तु श्लोक के पहले ही शब्द पर ध्यान नहीं दिया जाता। यन्माया का अर्थ है – जिसकी माया। शंकर के निर्गुण का अनुसरण करते हुए माया को राम की भावरूपा शक्ति मानते हैं। जगत् वस्तुतः रामरूप है। उसका दृश्यामान भिन्न रूप मृषा है।

इस प्रकार विज्ञान–दीप–प्रकरण के 'ईश्वर अंस जीव अबिनासी' में प्रयुक्त अंश को 'अंश ईव' कहकर काम चला लिया जाता है। अविनाशी शब्द ध्यान देने योग्य है। वह जीव की सत्यता का द्योतक है। राम ने स्पष्ट कहा है, 'जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा'। वस्तुतः तुलसी का जीव अद्वैतवाद के जीव से बिल्कुल भिन्न है। अद्वैतवाद के अनुसार जीव असत्य है, वह चौतन्य का बुद्धिगत प्रतिबिंब मात्र है। इसके प्रतिकूल तुलसी के मतानुसार जीव 'अबिनासी सत चेतन घन आनंद रासी, है। यह ठीक है कि उन्होंने अद्वैतवाद से बहुत से विचार ग्रहण किये हैं, परन्तु 'रामचरितमानस' में अद्वैतविरोधी उक्तियाँ भी भरी पड़ी हैं। उनके जैसे एकनिष्ठ सगुणभक्त को अद्वैतवाद के शिकंजे में कसना असंगत है।

शैव शाक्त–वैष्णव– तुलसी के युग में ये तीन धार्मिक संप्रदाय प्रबल थे। उनमें परस्पर विरोध था। तुलसी ने समन्वय स्थापित किया। शिव, शक्ति (देवी, पार्वती) और राम या विष्णु की स्तुतियों में प्रायः एक–समान विशेषताएँ बतलायी गयी हैं। राम और सीता ने क्रमशः शिव और पार्वती की पूजा की है। शिव–पार्वती ने राम के प्रति उत्कट भक्तिभाव की व्यंजना की है। 'रामचरितमानास' के वक्ता–श्रोता के रूप में शिव–पार्वती की योजना समन्वय भावना से ही प्रेरित है। विनयपत्रिका की हरिशंकरी स्तुति में यह सिद्धांत प्रतिफलित हुआ है। हाँ यह समन्वय राम भक्ति के केद्रबिंदु से हुआ है। शैवों के परमशिव शाक्तों की परमशक्ति और वैष्णवों के परमविष्णु उनके अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। राम परम आराध्य हैं। इसी लक्ष्य को दृष्टि में रखकर राम, शिव और पार्वती से क्रमशः कहलाया गया है –

1. **संकर प्रिय मम द्रोही मम दास।**
   ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास।।
2. **जहँ लगि साधन बेद बरखानी। सब कर फल हरि भगाति भवानी।।**
3. **नाथ कृपा मम गम संदेहा। राम चरन उपजेउ नव नेहा।**

वर्णाश्रमधर्म और मानवतावाद – तुलसी वर्णाश्रमधर्म के प्रबल समर्थक हैं। विभिन्न कृतियों में कलियुग का वर्णन करते समय उन्होंने उसके पर खेद प्रकट किया है। धर्म–निरूपण के प्रसंगों में उसके पालन पर बल दिया है। परंतु उनकी दृष्टि संकुचित नहीं है। उसका लक्ष्य लोक–कल्याण है। अतः उन्होंने साधारण धर्मों को विशेष महत्व दिया है। राम रावण युद्ध के समय धर्ममय रथ के वर्णन में दोनों का सामंजस्य किया है। मानवतावादी दृष्टि से सत्य, परोपकार और अहिंसा को परम धर्म बतलाया है। सत्य मूल सब सुकृत सुहाए' 'धरमु न दूसरा समाना', 'श्रुति कह परम धरम उपकारा', 'परहित सरिस धर्म नहीं भाई', 'परम धरम श्रुतिबिदित अहिंसा' आदि।

ब्राह्मण और शूद्र – वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण को समाज–शरीर का सिर और शूद्र को पैर कहा गया है। एक उच्चतम वर्ण है दूसरा निम्नतम। सभी वर्णों के गुण और कर्म नियत हैं समाज के व्यवस्थित संचालन के लिए वर्ण–बंधन का पालन आवश्यक है। उसके अतिक्रमण से समाज की मर्यादा भंग होती है। समाज की व्यवस्था में वर्ण भेद स्वीकार करते हुए भी तुलसी ने भक्ति के क्षेत्र मे ब्राह्मण और शूद्र को समान स्थान दिया है। क्षत्रिय–श्रेष्ठ भरत और ब्राह्मण रत्न वसिष्ठ ने निम्न–वर्ण निषाद तथा केवट को आत्मविस्मृत होकर प्रेमपूर्वक गले लगायाा है –

1. **भेंटत भरतु ताहि अति प्रीति। लोक सिहाहिं प्रेम कै रीति।।**
   तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता। मिलत पुलक परिपूरित गाता।।
2. **प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि तैं दंड प्रनामू।**
   रामसखा रिषि बरबस भेंटा। जनू महि लुठत सनेह समेटा।।

व्यक्ति और समाज – मुक्ति और भक्ति व्यक्तिगत वस्तुएँ हैं। तुलसी का मुख्य प्रतिपाद्य भक्ति है। परन्तु उन्होंने इस बात का ध्यान रखा है कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज के प्रति व्यक्ति के कुछ कर्त्तव्य हैं। अपनी वृतियों के उदात्तीकरण के साथ ही उसे अपनी सात्विक–शीलता से समाज का भी उन्नयन करना चाहिए। तुलसी के सज्जन पात्र इसी प्रकार का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। व्यक्ति और समाज, आत्मपक्ष और लोकपक्ष के समन्वय द्वारा तुलसी ने धर्म की सर्वतोमुख रक्षा का प्रयास किया है।

व्यक्ति और परिवार – गृहस्थाश्रम संपूर्ण समाज–व्यवस्था का आधार है। इसलिए व्यक्ति के निर्माण और कर्त्तव्य की दृष्टि से जीवन में परिवार का स्थान महत्वपूर्ण है। दशरथ, कौशल्या, सुमित्रा, राम, भरत, लक्ष्मण, सीता आदि के माध्यम से तुलसी ने पारिवारिक जीवन का जो महान् आदर्श प्रस्तुत किया है वह सभी के लिए अनुकरणीय है। विभिन्न पात्रों का पारस्परिक संबंध, स्नेह और शील की उदात्त भूमि पर प्रतिष्ठित है। मानस के लक्ष्मण और भरत

की 'भायप भगति' तो अप्रतिम है। तुलसी ने दोहावली में कहा है कि भरत से मिलकर सुग्रीव और विभीषण आत्मग्लानि से गड़ गये थे –

सघन चोर मग मुदित मन घनी गही ज्यों फेंट।
त्यों सुग्रीव विभीषनहि भई भरत की भेंट।।
राम सराहे भरत उठि मिले राम सम जानि।
तदपि विभीषन कीसपति तुलसी गरत गलानि।।

साधुमत और लोकमत – तुलसी की धर्म–भावना में इन दोनों का भी सामंजस्य पाया जाता है। सज्जनों के शील के अनुसार व्यक्तिगत धर्म–साधना 'साधुमत' है। व्यक्ति का सात्विकशील होना ही पर्याप्त नहीं है उसका सदाचरण लोक–अभीष्ट है उसका अनुसरण करते हुए राम ने अग्नि–परीक्षित सीता को निर्वासित किया, और साधुमत के अुनसार

सीता तथा लक्ष्मण ने उनकी आज्ञा को शिरोधार्य किया है। काकभुशुंडि के गुरू ने साधुमत का आचरण करते हुए क्रोध नहीं किया, किंतु लोकमत की रक्षा के लिए शिख ने भुशुंडि को शाप देकर दंडित किया।

वेदशास्त्र और व्यवहार – तुलसी ने अपनी रचनाओं में वेद, पुराण आदि की आप्तता का बार बार हवाला दिया है। उनका धर्मशास्त्रीय निरूपण बुद्धि विलास नहीं है। उनके पात्र वेदशास्त्र के मत को व्यावहारिक जीवन में कार्यान्वित करके दोनों का समन्वय उपस्थित करते हैं। इसलिए संस्कारों का अनुष्ठान उन्होंने वैदिक और लौकिक रीतियों की समन्वित पद्धति से कराया है। उनकी कविता–सरिता लोक और वेदमत दोनों के बीच बहती है –

चली सुभग कविता सरिता सो। राम विमल जस जल भरिता सो।
सरजू नाम सुमंगल मूला। लोक बेदमत मंजुल कूला।

भोग और त्याग – त्यागपूर्ण भोग धर्मशील का आदर्श है। इसके दो तात्पर्य हो सकते हैं। एक यह कि अनासक्त भाव से कर्म के सुफल का भोग किया जाए। दूसरा यह कि सुख–भोग को अपने तक ही सीमित न रखकर दूसरों को भी उसका भागी और त्याग के समन्वय का आदर्श प्रस्तुत किया है। उन्होंने अश्वमेध के पश्चात् संपत्ति द्विजों को बाँट दी। प्रतिनायक रावण ने तो मानो साम्यवाद के सिद्धांत को फलितार्थ किया है।

हमारे यहाँ दो प्रकार के मार्ग बतलाये गये – प्रवृति मार्ग और निवृति मार्ग। पहला गृहस्थ जीवन का द्योतक है और दूसरा सन्यास का। अनेक आचार्य सन्यास को मुक्ति या भक्ति के लिए आवश्यक मानते हैं तुलसी समन्वयवादी हैं। उनके मतानुसार घर में रहते हुए भी अनासक्त भाव से व्यवहार करने पर भगवद्भक्ति की उपलब्धि हो जाती है –

घर कीन्है घर जात है घर छाड़े घर जाइ।
तुलसरी घर बन बीच ही राम प्रेम पुर छाइ।।

रामचरितमानस के भरत ने इसी प्रकार की निष्काम भक्ति का आदर्श प्रस्तुत किया है।

राजा और प्रजा – किसी भी देश और समाज की सुख–समुद्धि के लिए राजा तथा प्रजा का समन्वित प्रयास अपेक्षित है। तुलसी के युग में पशु–बल के भरोसे शासन करने वाले राजा और बादशाह कर्त्तव्यच्युत हो गये थे, 'यथा राजा तथा प्रजा' के अनुसार प्रजा भी पाखंड–रत और पतित हो गयी। समाज की यह दुर्दशा खेदजनक थी। आदर्श राम–राज्य में तुलसी ने राजा और प्रजा के अभीष्ट समन्वय का विधान किया। राजभक्त प्रजा धर्म–निरत थी, और प्रजा–पालन–परायण राम ने नागरिकों को उचित गौरव दिया –

सुनहु सकल परजन मम बानी। कहौं न कछु ममता उर आनी।।
नहिं अनीति नहि कुछ प्रभुताई। सुनहु करहु जौ तुम्हहि सुहाई।।
जो अनीति कछु भाषौं भाई तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।।
राजतंत्र और जनतंत्र के समन्वय का यह निर्देश युग की परिसीमित पृष्ठभूमि में किया गया है।

संस्कृति–संगम – तुलसी साहित्य में पाँच भिन्न जातियों के पात्रों का चित्रण हुआ है। देव, दानव, नर, वानर और **तिर्यक्**। उनकी अपनी संस्कृति है। किसी समाज की सौंदर्यमूलक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और दार्शनिक प्रवृतियों का द्योतक 'संस्कृति' शब्द मानव के संबंध में ही प्रयुक्त होता है। वानरों या पक्षियों की चर्चा नहीं की जाती। परन्तु मानस के सुग्रीव और हनुमान अथवा काकभुशुंडि और गरुड़ साधारण वानर या पक्षी मात्र नहीं हैं। उनमें विवेकशीलता और भक्तिमता है। उनके संस्कार की संस्कृतियों का समन्वय करते हुए अंत में रामराज्य की स्थापना द्वारा मानव–संस्कृति की श्रेष्ठता दिखाकर मानवता की प्रतिष्ठा की है।

मानव–संस्कृति के भीतर ही समन्वय दृष्टिगोचर होता है। राजन्य–वर्ग, वन–पथ के जन साधारण और कोल–किरातों की जीवन–पद्धति में भिन्नता है। उसके अनुरूप उन्होंने आचरण किया है। तुलसी ने राम के संबंध से उनका समन्वय किया है। अधिक महत्वपूर्ण बात है हिंदु संस्कृति के साथ मुस्लिम–संस्कृति का समन्वय। तुलसी संकुचित नहीं थे। उन्होंने उदारता के साथ काव्यधर्म का निर्वाह किया है। राम की सेवा मे प्रेषित 'विनयपत्रिका' का विधान मुगल–सम्राट् के पास भेजी जाने वाली अरजी की रीति पर किया गया है। **'उमरि दराज महराज तेरी चाहिए'** अथवा **'भइ बड़ि भीर भूप दरबारा'** में दरबारी संस्कृति का प्रतिबिंब स्पष्ट है। तलवार आदि शस्त्रों के वर्णन तथा अरबी–फारसी–शब्दावली के प्रयोग में भी यह सांस्कृतिक समन्वय परिलक्ष्य है।

काव्य और मोक्षशास्त्र – समन्वय–साधक तुलसी की महत्तम उपलब्धि काव्य और मोक्ष शास्त्र के समन्वय में दिखायी देती है। काव्य के तीर्थराज में धर्म, दर्शन और भक्ति की यह त्रिवेणी अनुपमेय है। उसमें आनंद और मंगल का, स्वांत–सुख और लोकहित का, अद्भुत समन्वय है। तुलसी ने कवियों के काव्यरस और भक्तों के भक्तिरस में अभेद स्थापित कर दिया है। उनका 'रामचरितमानस' काव्य–रसिकों की दृष्टि से श्रेष्ठ महाकाव्य है, 'धर्म–बुद्धि' जनसाधारण का महनीय धर्मग्रन्थ है, और विषय–विमुख भगवद्भक्तों के लिए भक्ति–रस का अजस्र स्रोत है।

काव्य के मानदंड – भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य के छः प्रमुख मानदंड निर्धारित किये गये हैं– रस, ध्वनि, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति और औचित्य। 'रामचरितमानस' में इन सबका समन्वय है, सैद्धांतिक रूप में भी तथा प्रयोगात्मक रूप में भी। वह सभी काव्य कसौटियों पर खरा उतरता है।

भावपक्ष और कलापक्ष – काव्य–रचना की सफलता भाव–पक्ष और कला–पक्ष के समुचित समन्वय में है। भाव–पक्ष के निर्बल होने पर ग्रंथ मनोरंजक तमाशा बन जाता है, और कला–पक्ष के निर्बल होने पर वस्तु–भण्डार मात्र रह जाता है। तुलसी शक्ति–संपन्न कवि थे। उनकी प्रतिभा सारग्राहिणी थी। उन्होंने अपने युग में प्रचलित प्रमुख छंद–पद्धतियों और काव्यरूपों का सफल प्रयोग किया। 'रामचरितमानस' में महाकाव्य और पुराण का समन्वय अपने ढंग का एक ही है। लोक–भाषा और संस्कृत का समन्वय भी अन्वेक्षणीय है। पंडित लोग लोक–भाषा के विरुद्ध थे, जन–कल्याण, जन–भाषा के माध्यम से ही संभव था। तुलसी ने प्रतिष्ठित जन–भाषा अवधी में मानस की रचना की, किन्तु संस्कृत –पदावली का प्रचुर व्यवहार किया। उन्होंने प्रतिपाद्य विषय और प्रतिपादन शैली के सामंजस्य का निरंतर ध्यान रखा है। उनके काव्य में शब्द और अर्थ, भाव और भाषा, भाव और छंद, अलंकार और अलंकार्य का अपेक्षित समन्वय है।

19.4 सारांश

निष्कर्ष यह है कि 'रामचरितमानस' में काव्य, दर्शन, भक्ति और धर्म का अद्भुत समन्वय है। यह रस–मर्मज्ञों की दृष्टि में महाकाव्य है, भक्तों के लिए भक्ति–ग्रंथ है, और साधारण जनता का धर्मशास्त्र है। उसकी असाधारण सफलता, महत्ता और लोकप्रियता का बहुत–कुछ श्रेय उसकी समन्वय–भावना को है। तुलसी की संतुलित प्रतिभा से निर्मित कालजयी 'रामचतिरमानस' अपनी लालित्य–योजना और मंगल–विधान में अद्वितीय है।

19.5 स्व–मूल्यांकन

प्रिय विद्यार्थियों !

इस अध्याय में आपने तुलसी का समन्वयवाद / लोकनायकत्व का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिह्न द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं।

प्र) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिएः–

1) 'समन्वय' का व्युत्पत्यर्थ है–

क) नियमित क्रम ख) संयोग ग) पारस्परिक संबंध घ) उपर्युक्त सभी

2) तुलसीदास भक्तिकाल की किस धारा के कवि हैं?

क) निर्गुण धारा ख) सगुण धारा ग) सूफी धारा घ) संतधारा

3) तुलसीदास के युग में कितने धार्मिक संप्रदाय प्रबल थे?

क) दो ख) तीन ग) चार घ) पांच

4) भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य के कितने मानदंड निर्धारित किये गये हैं–

क) चार ख) पांच ग) छः घ) तीन

5) तुलसीदास की भक्ति किस भाव से प्रेरित हे?

क) संख्य भाव ख) भ्रातृ भाव ग) दास्य भाव घ) माधुर्य भाव

प्र2) रिक्त स्थान भरोः–

क) समन्वय के देश में महान लोकनायक वही है जिसमें विशाल ––––हो

ख) तुलसीदास के युग में –––– का प्रभुत्व था।

ग) –––– तुलसीदास के इष्टदेव थे।

घ) रामचरितमानस –––– भाषा में लिखा गया है।

प्र3) सही / गलतः–

क) तुलसीदास ने दोहावली में कहा है कि भरत से मिलकर सुग्रीव और विभीषण आत्मग्लानि से जुड़ गये थे। ( )

ख) तुलसीदास द्वारा रचित कवितावली अवधी भाषा में है। ( )

ग) समन्वय–साधक तुलसी की महत्तम उपलब्धि काव्य और मोक्ष शास्त्र के समन्वय में दिखाई देती हैं। ( )

19.6 कठिन शब्द

प्रिय विद्यार्थियो!

अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर देने से पहले निम्नलिखित कठिन शब्दों के अर्थ शब्दकोश से ढूंढे और अपने शब्द भंडार को विकसित करें।

1. समन्वय–––––––––––––––––

2. साधक––––––––––––––––

3. प्रभुत्व–––––––––––––––––––

4. माधुर्य------------------
5. रस–मर्मज्ञ----------------
6. सारग्राहिणी----------------
7. श्रेष्ठ------------------
8. अन्वेक्षणीय--------------
9. वेदांत------------------
10. मानदंड ----------------
11. अनासक्त----------------
12. त्रिवेणी------------------
13. अनुपमेय----------------

19.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1) 'तुलसी लोक नायक कवि हैं' स्पष्ट कीजिए।

2) महाकवि तुलसीदास के 'समन्वयवाद' पर एक लेख लिखिये।

3) 'तुलसी का काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है, स्पष्ट कीजिए

19.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि – डॉ द्वारिकाप्रसाद सक्सेना – श्री विनोद पुस्तक मंदिर, 2020।
2. तुलसी – उदयभानु सिंह – राधाकृष्ण प्रकाशन, 2018।
3. तुलसी रसायन – डॉ भगीरथ मिश्र – साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1966।

तुलसी की भक्ति भावना

रूपरेखा

20.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
20.2 प्रस्तावना
20.3 तुलसीदास की भक्ति भावना
20.4 सारांश
20.5 स्व–मूल्यांकन
- बहु विकल्पीय प्रश्न
- रिक्त स्थान
- सही या गलत
20.6 कठिन शब्द
20.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
20.8 पठनीय पुस्तकें

20.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रिय विद्यार्थियो! इस अध्याय का उद्देश्य है आपको तुलसीदास की भक्ति भावना परिचित कराना। साथ ही इससे भी अवगत करवाना कि तुलसी ने भक्ति–प्राप्ति के नौ साधन माने हैं।

अपेक्षित परिणाम – इस अध्याय के माध्यम से आप जान सकेंगे कि तुलसीदास सगुणोपासक रामभक्त थे। उन्होंने युग धर्म को पहचाना और गुण की आवश्यकता के अनुसार रामभक्ति का आदर्श प्रस्तुत किया।

– आप जान सकेंगे कि वे व्यक्तिगत मोक्ष के साथ ही लोक कल्याण के भी अभिलाषी थे।

– उन्होंने कहा है कि विश्व को एक ऐसे ईश्वर की आवश्यकता है जो दीन–दुखियों की पुकार सुन सके,तत्काल पहुँचकर उनकी रक्षा कर सके, अधर्म का नाश करके धर्म की प्रतिष्ठा कर सके।

20.2 प्रस्तावना

मानव जीवन में इच्छाओं का कोई अन्त नहीं है। इच्छा पूर्ति न होने से व्यक्ति में वैसी ही ग्रथियां उत्पन्न हो जाती हैं। इच्छा पूर्ति के लिए मानव उचित–अनुचित सभी साधन अपनाता है। जो सामग्री–संचय व्यक्ति के वश से बाहर होता है उसके लिए वह सामाजिक परिस्थितियों से संघर्ष करता है जिसका परिणाम दुःख होता है। इच्छा पूर्ति होने पर प्राप्त होने वाला सुख स्थायी नहीं होता। उसकी इच्छा के बार–बार उत्पन्न होने या नई इच्छा के उत्पन्न होने पर पुनः संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

सुख–दुख के ऊपर आनन्द की अवस्था है। आनन्द का संबंध ईश्वर से माना गया है ईश्वर के साथ रहना, उसी के गुण गाना, उससे हटकर अन्यत्र न जाना, उसी में तल्लीन, मग्न हो कर निर्द्वन्द्व विचरण करना आनन्द है। यही

भक्ति मार्ग है। भक्ति मार्ग का प्रवर्तन ईश्वर के अतिमानव तथा अतिप्राकृत गुणों के आधार पर हुआ है। मानव के सुख और सामर्थ्य की एक सीमा है। इस सीमा के पश्चात् समर्थ मानव भी अनुभव करता है कि उससे ऊपर कोई अज्ञात शक्ति है जो उसकी सफलता या असफलता को नियंत्रित करती है। वह शक्ति रहस्यात्मक है। इसकी शक्ति की जो खोज करते हैं वे साधक हैं और जो इससे प्रेम करते हैं वे भक्त हैं। भक्त का प्रेम मार्ग भक्ति कहलाता है।

20.3 तुलसी की भक्ति–भावना

भक्त के लक्षण – तुलसी के अनुसार भक्त का लक्षण है कि उसके अन्दर काम, क्रोध, मद, मान, मोह, लोभ, क्षोभ, राग, द्रोह, और माया नहीं रहते। वह जाति–पाति, धन, धर्म, प्रशंसा, परिवार और सुखद ग्रह का त्याग करके केवल राम में अपने आप को केन्द्रित करता है। राम के अतिरिक्त वह किसी अन्य वस्तु की आकांक्षा नहीं करता। भक्त पराई स्त्री को माता के समान और पराये धन को विष के समान समझता है। अवगुणों को छोड़कर गुणों को ग्रहण करता है। सुख–दुख, निन्दा–स्तुति में वह सम रहता है। वह सबका प्रिय और हितकारी होता है।

राम का स्वरूप – तुलसी जिस ईश्वर के भक्त हैं वे राम हैं। तुलसी के राम निर्गुण भी हैं और सगुण भी; वे निराकार और साकार दोनों हैं। इन दोनों से पृथक् उनका तीसरा रूप भी है, जिसमें यह निखिल ब्रह्माण्ड ही उनका शरीर समझा गया है। तीनों रूपों में वे अनन्त–सौंदर्य सम्पन्न हैं।

एक अनीह रूप अनामा। अज सच्चिदानन्द परधामा।।
व्यापक विस्वरूप भगवाना। तेइ धरि देह चरित कृत नाना।।

राम सहज प्रकाश स्वरूप हैं। वे विश्व रूप हैं और लीलाएं करते हैं अथर्ववेद में प्रभु के विराट रूप का वर्णन है जिसमें पृथ्वी प्रभु का पैर है, अन्तरिक्ष उदर है, द्यौ मूर्धा है, सूर्य–चन्द्र नेत्र हैं, अग्नि मुख है, वायु प्राणापान है, दिशाएं क्षेत्र हैं, भूत–भविष्य और वर्तमान का वही अधिष्ठाता है। मानस में राम के इसी विश्व रूप का वर्णन मन्दोदरी रावण से करती है।

विष्णु के अवतार रूप में राम चतुर्भुजधारी हैं। इसी रूप को देखकर कौशल्या विस्मित हो जाती है और राम को नर–शिशु के समान लीला करने के लिए कहती है। चतुर्भुज तथा नरावतारी दोनों रूपों में राम अनन्त छवि के धाम हैं। उनकी छवि को देखकर मुनिजन तृप्त नहीं होते। राम का अनन्त सौंदर्य उनके गुणों के कारण है। परमधाम में वे अगुण, अखण्ड, अनन्त, अनूप, अनादि, अनीह, अनामय, अज, अलख अविनाशी, निराकार, निर्मोह, निरंजन, नित्य तथा एकरस हैं। जीव की दृष्टि से वे न्यायी, कर्मफलदाता, नाना योनियों में घुमाने वाले ज्ञानी तथा गुणधाम हैं। जड जगत की दृष्टि से वे प्रकाशक, स्रष्टा, पालक, संहारक और सर्वव्यापक हैं। भक्त की दृष्टि से राम परम उदार, दानी, पतितपावन, उत्थापितों के स्थापक, शरणदाता और करुणा के कोष हैं। शरणागत की वे रक्षा करते हैं।

भक्ति के साधन – तुलसी ने भक्ति–प्राप्ति के नौ साधन माने हैं –

1. सत्संग	2. ज्ञान	3. कर्म	4. तप	5. वैराग्य
6. श्रद्धा–विश्वास	7. प्रेम	8. रामकृपा और	9. राम का आश्रय	

1. **सत्संग** – भक्ति प्राप्ति का सबसे आसान साधन तुलसी की दृष्टि में सत्संग है। भक्त सन्तों के जीवन से प्रभावित होकर भगवान से प्रेम करने लगता है। सन्तों का साथ अनेक पुण्यों के प्रताप से सुलभ होता है। सबसे बड़ा पुण्य कर्म ब्राह्मणों की सेवा है क्योंकि ब्राह्मणों से साधक ज्ञान प्राप्त करता है और ज्ञान से विवेक जागृत होता है। ज्ञान और वैराग्य भक्ति को दृढ़ करते हैं। सत्संग और भक्ति संसार के दुखों का शमन करते हैं। सत्संग

मंगल का मूल है। सत्संग से साधक के संशय छिन्न– भिन्न हो जाते हैं। सत्संग में जो हरिकथा चलती है वह ज्ञान को उत्पन्न करने वाली और मोह को दूर करने वाली होती है।

2. **ज्ञान** – जब तक ज्ञान का उदय नहीं होता तब तक जीव बन्धनों मे बंधा रहता है। विवेक का उदय होते ही मोह, भ्रम आदि भाग जाते हैं। तुलसी का कहना है कि भक्तिहीन ज्ञान राम को प्रिय नहीं है। इसलिए वे भक्ति को छोड़कर ज्ञान प्राप्ति के लिए परिश्रम करने वालों को जड़ कहते हैं।

3. **कर्म** – ज्ञान के अनुकूल कर्म होना चाहिए। ऐसे व्यक्ति बहुत कम हैश् जो ज्ञान के आधार पर स्वयं आचरण करते हैं। विश्व में कर्म प्रधान है। जो व्यक्ति जैसा कर्म करता है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है। कर्म और भाग्य एक दूसरे में मिले हुए हैं। तुलसी भक्ति विहीन कर्म को स्वीकार नहीं करते।

4. **तप** – तप से दुख और दोष मिट जाते हैं और मन की चंचलता समाप्त हो जाती है। सारी सृष्टि तप के आधार पर स्थित है। रावण और कुंभकरण जैसे राक्षस भी तप के कारण शक्तिशाली बने थे, यह तप का प्रभाव है। तप के प्रभाव को छिपा कर रखना चाहिए, अन्यथा उसका फल नष्ट हो जाता है।

5. **वैराग्य** – तप के साथ वैराग्य का घनिष्ठ संबंध है। साधना के दो अंग हैं अभ्यास और वैराग्य। साधक प्रभु–प्रेम का अभ्यास करता है और माया, मोह, ममता से वैराग्य करता है। माया अत्यन्त बलवान है। वह बड़े–बड़े ज्ञानियों को भी फंसा लेती है। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और अंहकार इसके पुत्र हैं। साधक को इन सबके साथ युद्ध करना पड़ता है। माया की इस सेना के साथ वैराग्य का युद्ध होता रहता है। सफलता उसी साधक को मिलती है जिस पर राम कृपा करते हैं।

6. **श्रद्धा–विश्वास** – तुलसी के अनुसार श्रद्धा धर्म का मूल है। उत्तरकाण्ड में तुलसी ने सात्विक श्रद्धा को ही फलवती माना है। विश्वास के साथ जो भक्त अन्य आशाओं को छोड़ देते हैं वे अनायास संसार–सागर को पार कर जाते हैं। विश्वास के बिना भक्ति नहीं होती और भक्ति के बिना भगवान द्रवित नहीं होते।

7. **प्रेम** – जिस साधन से राम द्रवित होते हैं। वह साधन है प्रेम। राम न हमारी विधा को देखते हैं, न कुल को, न जाति को, उनकी दृष्टि आचरण पर भी नहीं जाती, उन्हें तो केवल भक्त का प्रेम प्रिय है। योग, जप, ज्ञान, वैराग्य आदि राम को प्राप्त नहीं करा सकते। ये साधन अवश्य हैं, पर वह सोपान जिस पर चढ़कर भगवान के दर्शन होते हैं वह प्रेम ही है।

8. **राम–कृपा** – तुलसी का कहना है सद्गुण रूपी साधनों द्वारा भक्ति सुलभ हो जाती है, पर साधनों के सम्पादन में जो कष्ट होता है वह भगवतकृपा से ही दूर होता है। माया–मोह में ग्रसित जीव राम–कृपा से निस्तार पाता है।

9. **राम का आश्रय** – तुलसी के अनुसार संसार स्वप्न के समान मिथ्या है केवल भगवान ही सत्य है। संसार की वस्तुएं स्थायी नहीं हैं वे हमेशा साथ नहीं रह सकतीं। इसलिए साधक ऐसी शक्ति की शरण में जाना चाहता है जो शाश्वत, सर्वशक्तिमान और दयालु है। प्रभु करुणा के स्वरूप हैं इसलिए साधक उन्हीं के आश्रय में रहना चाहता है। तुलसी राम को ही अपना जनक, जननी, गुरू, पति, बन्धु तथा हितकारी समझते हैं।

उपर्युक्त साधनों से सम्पन्न भक्त को काल, कर्म, गुण, दोष और स्वभाव से उत्पन्न दुख भी दुखी नहीं कर सकते। प्रभु कृपा से उसकी सभी कामनाएं पूर्ण होती रहेंगी।

भक्ति के प्रकार

1. **भाव भक्ति (प्रेमाभक्ति)** – भक्ति के लिए–तुलसी को यह सिद्धांत मान्य है। मोक्ष द्वारा प्राप्त सुख अधिक दिनों तक नहीं टिक सकता। इसलिए मोक्ष को न चाह कर भक्ति–भाव में ही लीन रहना चाहते हैं। इसी भाव–भक्ति का दूसरा नाम प्रेमाभक्ति है।

प्रेमाभक्ति में न तो योग करना पड़ता है न यज्ञ, न जप–तप और न उपवास। आवश्यकता केवल सरल स्वभाव और जो मिले उसी में संतुष्ट रहने की है। प्रेम के दो पक्ष हैंः प्रभु भक्त से प्रेम करे या भक्त प्रभु से प्रेम करे। तुलसी के हाथ में दूसरा पक्ष है, राम मेरे हैं और मैं राम का हूँ वह विश्वास ही तुलसी की संपत्ति है।

लोक में प्रेम के अनेक रूपों में से तुलसीदास दास के रूप को स्वीकार करते हैं। राम उनका मालिक है और वे राम के दास हैं। तुलसी ने राम के बाल रूप की उपासना का वर्णन भी किया है।

2. **अनन्य भक्ति** – तुलसी राम का अनन्य साधक है। वह राम की जगह किसी अन्य देव को प्रतिष्ठित नहीं कर सकता। राम समदर्शी हैं फिर भी उन्हें अनन्य गति वाला सेवक ही प्रिय है। तुलसी चातक हैं जिस की दृष्टि राम रूपी मेघ की ओर लगी रहती है।

3. **प्रेम का सातत्य** – तुलसी की सम्मति में चातक स्वाति नक्षत्र में भी जल नहीं पीता। प्रेम रूपी प्यार का बढ़ते रहना ही उसे अच्छा लगता है। प्रेम निरन्तर बना रहे, इसके लिए प्रेमी के सामने प्रिय का सदैव रहना आवश्यक है। प्रेम को स्थिरता देने के लिए चातक की तरह सदैव विरह का अनुभव करते रहना आवश्यक है।

नवधा भक्ति – तुलसी के काव्य में नवधा भक्ति के दो रूप मिलते हैं। एक रूप 'श्रीमद्भागवत' में वर्णित रूप के अनुसार है। दूसरा रूप मानस के अरण्य कांड में है जो 'अध्यात्मरामायण' से मिलता जुलता है।

'रामचरितमानस' में राम शबरी से कहते हैं कि भक्ति विहीन नर बिना जल वाले बादल के समान होता है। वे शबरी को नवधा भक्ति मन में धारण करने के लिए कहते हैं। राम के अनुसार – 1. संतों का संसर्ग, 2. हरिकथा में अनुराग, 3. गुरुसेवा, 4. हरिगुणगान, 5. दृढ़विश्वासपूर्वक राम नाम का जाप 6. दम, शील और विविध प्रकार के कर्मों से वैराग्य, 7. संसार को राममय देखना और संतों को राम से भी अधिक समझना 8. जो कुछ मिले उसी में संतोष करना और पर दोष से पृथक रहना 9. निष्कपट होकर सबसे सरल व्यवहार करना और राम के भरोसे रहकर हृदय में हर्ष तथा दैन्य का अनुभव न करना नवधाभक्ति है। इन नौ में से यदि एक भी किसी के पास है तो वह राम का प्रेमपात्र है।

श्रीमद्भागवत के अनुसार–श्रवण, कीर्तन, जप, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य और आत्मनिवेदन नवधा भक्ति के अन्तर्गत आते हैं। नवधा भक्ति के इन रूपों के उदाहरण मानस में मिल जाते हैं।

श्रवण – जिस राम कथा का वर्णन मुनियों ने नाना प्रकार से किया है उसे बार–बार सुनना चाहिए। जो एक बार कथा सुन कर संतुष्ट हो जाता है उसने राम नाम के रस को विशेष रूप से जाना नहीं है। जो भवसागर से पार जाना चाहते हैं। राम कथा उनके लिए दृढ़ नाव के समान है।

कीर्तन – यज्ञ और ज्ञान कलियुग के योग्य नहीं है। कलयुग में राम के गुणों का गायन ही एक आधार है।

जप – राम नाम का जप भव–बन्धन को काटने वाला है। जाप के समय शरीर पुलकित हो जाता है और प्रेम के कारण नेत्रों से अश्रु बहने लगते हैं।

स्मरण – जो व्यक्ति आदर पूर्वक राम का स्मरण करते हैं। वे भव–सागर से पार हो जाते हैं चाहे वे पापी ही क्यों न हों।

पादसेवन – तुलसी का प्रण है कि वह राम के चरण–कमलों को देखते हुए जीवित रहेगा और चरणों की सेवा करेगा।

अर्चन – तुलसी राम का परिवार सहित पूजन करता है। वह राम को भोजन का भोग लगाएगा और वस्त्र और आभूषणों से राम को अलंकृत करेगा।

वन्दन – तुलसी राम और गुरू के चरणों को नमन करता है और राम के बाल रूप की वन्दना करता है।

दास्य – तुलसी अपने को राम का सेवक मानते हैं और कहते हैं सेवक–सेव्य भाव के बिना भवसागर पार नहीं किया जा सकता।

आत्मनिवेदन – 'विनय पत्रिका' के पद आत्मनिवेदन से भरे पड़े हैं। तुलसी अपने दोषों को गिना कर उन्हें हटाने के लिए राम से विनय करते हैं। तुलसी की भक्ति में विनय की सातों भूमिकाएं–दैव्य, मानमर्षता भयदर्शना, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य और विचारणा–दृष्टिगोचर होती है।

एकादश आसक्तियां – नारदभक्तिसूत्र में जिन ग्यारह आसक्तियों का उल्लेख है उनमें से पांच गुणहात्म्यासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यसक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति –ऊपर वर्णित नवधा भक्ति में आ जाती हैं। शेष आसक्तियों के उदाहरण निम्न हैं –

सख्यासक्ति – भक्तों की ओर से तो नहीं, राम की ओर से यह भाव मानस में व्यक्त हुआ है। उत्तरकाण्ड में विभीषण, सुग्रीव, नल–नील, हनुमान, जाम्बवान, अंगद आदि का परिचय गुरु वसिष्ठ से राम सखा के रूप में कराते हैं।

रूपासक्ति – राम का मुख कमल के समान है जिस पर मुनियों के भ्रमरों रूपी लोचन रस पान करते हैं। मनु सतरूपा राम की छवि को एकटक देखते रह जाते हैं।

वात्सल्यासक्ति – कौशल्या राम को कभी गोद में लेकर, कभी पालने में लिटा कर 'प्यारे ललना' कहकर दुलार करती है।

कान्तासक्ति – मृग, पक्षी और वृक्षों को देखने के बहाने सीता जी बार–बार घूम जाती हैं और राम को देख कर उनका प्रेम बढ़ता ही जाता है।

तन्मयतासक्ति – अशोकवाटिका में राम के चरणों मे लीन रहते हुए रात्रि के चारों प्रहर सीता बिता देती है। वह सदैव राम के गुणों का स्मरण करती रहती है।

परमविरहासक्ति – सीता कहती है कि मन, वचन और कर्म से राम के चरणों में उसका प्रेम है फिर किस अपराध के कारण राम ने उसे त्याग दिया है।

शरणागत–वत्सलता – तुलसी ने शरणागत–वत्सलता को विशेष महत्व दिया है। तुलसी ने लौकिक शरणागति को भक्ति की शरणागति से अलग माना है। भक्त पापी या दुष्ट हृदय लेकर भगवान की शरण में आ ही नहीं सकता। भगवान की शरण में आकर जब वह आर्त्त वाणी से पुकारता है तो राम उसे अपनाकर साधु बना देते हैं।

तुलसी के काव्य में शरणागति के छः प्रकार हैं। जिन्हें प्रपत्तिमार्ग कहा जाता है। ये छः प्रकार हैं अनुकूल, संकल्प, प्रतिकूल का त्याग, गोप्तृत्ववरण, रक्षा का विश्वास, कार्पण्य और आत्मनिक्षेप।

20.4 सारांश

तुलसी की भक्ति में विनय, प्रेम, आसक्ति और शरणागति की प्रधानता है। वे अपना सारा दायित्व राम पर डाल देते हैं। राम की भक्ति राम कृपा के बिना प्राप्त नहीं होती। तुलसी का एकमात्र उद्देश्य राम की भक्ति प्राप्त करना है। भक्ति को छोड़कर वे मुक्ति भी प्राप्त नहीं करना चाहते।वे लोक दर्शी थे, उन्होंने व्यक्ति –कल्याण के साथ लोक–कल्याण करने वाले भक्ति मार्ग का उपस्थापन किया। उन्होंने लोक धर्म –विरोधी भक्ति पद्धतियों का खरेपन के साथ विरोध किया।

20.5 स्व–मूल्यांकन

प्रिय विद्यार्थियों !

इस अध्याय में आपने तुलसीदास की भक्ति भावना के अंतर्गत भक्त के लक्षण, भक्ति के साधन, भक्ति के प्रकार का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिह्न द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं।

प्र) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिएः–

1) तुलसीदास ने भक्ति–प्राप्ति के कितने साधन माने हैं?

क) नौ ख) दस ग) दस घ) आठ

2) तुलसीदास की दृष्टि में भक्ति प्राप्ति का सबसे आसान साधन क्या है?

क) ज्ञान ख) सत्संग ग) तप घ) कर्म

3) तुलसीदास के अनुसार भक्ति प्राप्त में तप के साथ किसका घनिष्ठ संबंध है?

क) रामकृपा ख) कर्म ग) वैराग्य घ) श्रद्धा विश्वास

4) तुलसीदास के काव्य में नवधा भक्ति के कितने रूप मिलते हैं?

क) चार ख) तीन ग) एक घ) दो

5) भाव–भक्ति का दूसरा नाम क्या है?

क) प्रेमाभक्ति ख) अनन्य भक्ति ग) नवथा भक्ति घ) प्रेम का सातत्य

प्र2) रिक्त स्थान भरोः–

क) आनन्द का संबंध .... से माना गया है।

ख) .... के राम निर्गुण और सगुण दोनों है।

ग) तुलसीदास स्वयं को राम का .... मानते हैं।

घ) 'विनयपत्रिका' के पद .... से भरे पड़े हैं।

प्र3) सही / गलतः–

क) तुलसी की भक्ति में विनय, प्रेम, आसक्ति और शारणागति की प्रधानता है। ( )

ख) तुलसीदास राम का अनन्य साधक है।( )

ग) तुलसीदास जिस ईश्वर के भक्त है वह श्रीकृष्ण है। ( )

घ) तप से दुख और दोष मिट जाते हैं और मन की चंचलता समाप्त हो जाती है। ( )

ङ) तुलसीदास के अनुसार श्रद्धा धर्म का मूल नहीं है। ( )

20.6 कठिन शब्द

प्रिय विद्यार्थियो!

अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर देने से पहले निम्नलिखित कठिन शब्दों के अर्थ शब्दकोश से ढूंढे और अपने शब्द भंडार को विकसित करें।

1. श्रद्धा ——————————————————
2. साधक————————————————
3. आत्मनिवेदन————————————————
4. आसक्ति—————————————————
5. लोक–कल्याण————————————
6. शरणागत——————————————————
7. मानमर्षता————————————————
8. थ्नर्फण्झ————————————————
9. स्नुण———————————————————
10. चंचलता—————————————————
11. अनुकूल———————————————
12. संकल्प——————————————————
13. प्रतिकूल का त्याग————————————
14. आत्मनिक्षेप——————————————
15. वैराग्य——————————————————

20.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. तुलसी की भक्ति का स्वरुप स्पष्ट कीजिए।

2. भक्ति भावना की दृष्टि से विनय पत्रिका का विश्लेषण कीजिए।

20.9 पठनीय पुस्तकें

1. तुलसी साहित्य सुधा – भगीरथी मिश्र – साहित्य भवन, इलाहाबाद।
2. तुलसीदास –निराला – भारती भण्डार प्रयाग, इलाहाबाद 1938।
3. तुलसी– संपादक – उदयभानु सिंह – राधाकृष्ण प्रकाशन, 2018।

तुलसी का काव्य सौष्ठव

रूपरेखा

21.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
21.2 प्रस्तावना
21.3 तुलसीदास का काव्य सौष्ठव
21.4 सारांश
21.5 स्व–मूल्यांकन
- बहु विकल्पीय प्रश्न
- रिक्त स्थान
- सही या गलत

21.6 कठिन शब्द
21.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
21.8 पठनीय पुस्तकें

21.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रिय विद्यार्थियो! इस अध्याय का उद्देश्य है आपको तुलसीदास के काव्य सौष्ठव से अवगत कराना। इससे भी परचित कराना कि उनके काव्य में भाव–प्रवणता, शैली सौष्ठव और जो उदात्तता है वह अन्य कवियों में विरल ही नजर आती है।

अपेक्षित परिणाम – इस आध्याय के माध्यम से आप जान सकेंगे कि तुलसी दास भक्ति के क्षेत्र में जितने महान थे उतने ही कविता के क्षेत्र में भी। उनकी कविता उनकी भक्ति का ही रुप है।

– आप जान सकेंगे कि गोस्वामी तुलसीदास ने ब्रज भाषा और अवधी भाषा दोनों के व्याकरण के नियमों का पूर्णरूप से निर्वाह किया। भाषा शैथिल्य तो उनकी रचनाओं में कहीं मिलता ही नहीं है। प्रत्येक शब्द पूर्ण भाव व्यंजक होकर अपने अस्तित्व की सप्रयोजनता को प्रकट करता है। साथ में आप यह भी जान सकेंगे कि विनयपत्रिका में इन्होंने गीत–पद्धति का अनुसरण किया है।

21.2 प्रस्तावना

गोस्वामी तुलसीदास राम के अनन्य भक्त थे। उन्होंने 'स्वांतः सुखाय' राम भक्त के उद्‌गार व्यक्त किये थे। भक्ति के गम्भीर सागर में आप्लावित होते हुए भी उनका काव्य अपने युग से सर्वथा असंपृक्त नहीं है और हो भी नहीं सकता था, क्योंकि 'सीता राम मय सब जग जानी' की अनुभूति करने वाला भक्त जीवन और जगत की उपेक्षा कैसे कर सकता था? तुलसी का समस्त काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। तुलसी के काव्य में भाव पक्ष एवं कला पक्ष दोनों ही उत्कृष्ट हैं। तुलसी के काव्य–सौष्ठव को समझने के लिए उनके साहित्य के भाव पक्ष एवं कला पक्ष की विशेषताओं का अध्ययन करना होगा।

21.3 तुलसी का काव्य सौष्ठव

भाव पक्ष की विशेषताएंः–

1. भक्ति–भावना का विवेचनः– हिन्दी–साहित्य के मध्य–युग में भक्ति–भगीरथी की जो अनेक धाराएं प्रवाहित होकर जन–मन की क्लांति को मिटाकर शान्ति में अवगाहन करा रही थीं, उनमें सबसे गहन गम्भीर धारा तुलसी की थी। उन्होंने लोक–संग्रह एवं जन–मंगल विधायन के लिए सौन्दर्य– शील शक्ति समन्वित घनश्याम राम के रूप में अवतरित ब्रह्मा के चरणों में चातक सदृश अपने ह्रदय को समर्पित कर दिया था–

एकभरोसो एक बल एक आस विस्वास।
एक राम घनश्याम हित चातक तुलसीदास।।

राम चाहे ब्रह्मा हैं, चाहे मानव, प्रत्येक दशा में तुलसी के वे ही आराध्य हैं। लौकिक एवं राजा राम की राजकीय मर्यादा के परिपालनार्थ 'विनयपत्रिका' में गणेश, शिव, देवी, सूर्य आदि देवताओं की स्तुतियां करते हुए भी उन्होंने सभी से राम–भक्ति की ही याचना की है।

तुलसी दास्य– भाव की भक्ति को ही भव–सागर तरने के लिए आवश्यक समझते हैं। अन्य प्रकार की भक्ति में 'अहम्' के उदय की आशंका रहती है और जहां अहम् आया कि भक्त अपने स्थान से च्युत हुआ। अतएव दास्य भक्ति ही स्पृहणीय है –

'सेवक सेव्य भाव बिनु
भव न तरिअ उरगारि।।'

दार्शनिक भावनाः– तुलसी की दार्शनिक भावना वस्तुतः समन्वयात्मक ही है। उसे समझने के लिए उनके ब्रह्मा, माया, जीव, जगत, मोक्ष एवं साधना संबंधी विचारों का अनुशीलन आवश्यक है।

ब्रहमाः– तुलसी के राम दाशरथ होते हुए भी परब्रह्मा हैं। वे व्यापक, अनीह, अज, निर्गुण, अविनाशी अद्वैत, अनादि, अनन्त, सच्चिदानंद हैं। वहीं निर्गुण, निराकार, नाम रूप हीन ब्रह्मा ही भक्त के लिए नाना प्रकार के अनूप चरित्र करते हैं।

मायाः– ब्रह्मा अपनी जिस शक्ति से सृष्टि का सृजन, पालन और संहार करता है, वही माया है। माया के दो रूप हैं विद्या माया और अविद्या माया। माया जब जीव के अनुकूल हो जाती है तो ब्रह्मा की साक्षात्कार साधना में सहायता प्रदान करती है। तुलसी भी इसीलिए माता जानकी से प्रार्थना करते हैंः–

कबहुँक अम्ब अवसर पाइ।
मेरि हू सुधि द्यारवी कछु करुण कथा चलाइ।।

इसके अतिरिक्त माया का दूसरा स्वरूप भी है, जिसका परिचय देते हुए राम लक्ष्मण से कहते हैंरू–

मैं अरु मोर तोर ते माया,
जेहि बस कीन्है जीव निकाया।।

अविद्या माया का प्रयोग तुलसी ने छल, कपट आदि का रूप धारण करने के लिए किया है।

जीवः– गोस्वामी जी ने जीव को ईश्वर का अंश मानकर उसे उन्हीं के गुणों से युक्त बताते हुए कहा है।

ईश्वर अंश जीव अविनासी,
चेतन अमल सहज सुखरासी।

समन्वय–साधनाः– तुलसी के अवतरण के समय में देश में मुगलों का साम्राज्य था। सुलतानी शासन से त्रस्त हिन्दू जनता मुगलों की कथित उदार नीति, जो साम्राज्य लिप्सा से अनुप्राणित थी, के द्वारा भी वास्तविक शान्ति प्राप्त नहीं कर पा रही थी, क्योंकि उस पर राज्य का अप्रत्यक्ष अंकुश विद्यमान था। धार्मिक क्षेत्र में तांत्रिंको, वज्रयानी सिद्धों और गोरखपंथी साधुओं ने अपनी अद्‌भुत करामातों से जनता को विमोहित कर रखा था, इसलिए भक्ति का स्वस्थ स्वरूप विलुप्त हो गया था। निर्गुण और सगुण, ज्ञान और भक्ति का विरोध चल रहा था। शैव–शाक्त–वैष्णव परस्पर द्वन्द्व–लीन दिखाई पड़ते थे। दान के क्षेत्र में अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत इत्यादि विभिन्न वादों का संघर्ष हो रहा था। सामाजिक जीवन वर्णाश्रम धर्म की अवहेलना के कारण अव्यवस्थित हो गया था तथा पारिवारिक जीवन को व्यक्तिगत स्वार्थ की भावना ने विश्रृंखल कर दिया था। तुलसी की अन्तरात्मा देश की इस विषम अवस्था को देखकर सिहर उठी। उन्होंने 'सुरसरि सम सब कर हित' करने वाली वाणी से इस विषमता को मिटाकर संतुलित समन्वय स्थापित करने का सफल प्रयास किया तथा 'रामचरित' के माध्यम से जनता के ह्रदय को छूकर प्रेम और विश्वास की सरस धारा प्रवाहित की। उन्होंने समन्वय की जो साधना की, उसमे विचार तत्व की गहनता, भावना की मार्मिकता तथा विश्वास की दृढ़ता की त्रिवेणी का संगम दृष्टिगत होता है।

सन्त महिमाः– राम नाम के प्रसंग में तुलसी ने प्रण्यात्मक साधुओं के गौरव–वर्णन पर भी बारम्बार बल दिया है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शेषनाग आदि के द्वारा सन्त–महिमा को अनिर्वचनीय जताकर उन्होंने प्रकारान्तर से यह प्रतिपादित किया है कि कविगण इस ओर प्रवृत तो होते हैं, किन्तु जिस प्रकार मणियों के गुणों का उल्लेख शकविक्रेता नहीं कर सकते, उसी प्रकार सन्तों की गुणावली एवं भक्ति भावना को शब्दबद्ध करना सरल नहीं है।

"विधि हरि हर कबि कोबिद बानी,
कहत साधु महिमा सकुचानी।
सो मो मन कहि जात न कैसे,
साक बनिक मनि गुण गन जैसे।"

प्रकृत्ति चित्रणः– तुलसी ने प्रकृत्ति और अन्य लौकिक दृश्यों को भी अवसर विशेष पर अनिर्वचनीय कहा है। उदाहरणस्वरूप बनवासी राम के पम्पा सरोवर के तट पर पहुँचने और वहाँ के प्रकृति–सौंर्दय का उल्लेख करने के अनन्तर कवि ने यह कहा है कि सरोवर के तटवर्ती पक्षियों की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता 'चक्रवाक बक खग समुदाई, देखत बनइ बरनि नहिं जाई।' यहां प्राकृतिक सुषमा के प्रति कवि का सम्मोहन आशातीत है। चित्रकूट–शोभा के विषय में ये उक्तियां भी इसी प्रकार की हैंः

अ) कहि न सकहिं सुषमा जसि कानन।

आ) चित्रकूट कानन छवि को कबि बरनै पार।

इन पंक्तियों में प्रकृति के प्रति कवि के मुग्ध होने और भावों के शब्दों में न बंध पाने की व्यंजना निश्चय ही विद्यमान है। वस्तुतः दृश्यविशेष के वर्णन में कवि की अक्षमता का रहस्य यह है कि वर्ण्यमान् वस्तु के अभिधानमात्र से संतुष्ट न होकर वह सदृश्य के प्रत्यय के लिए अपने कथन में विशिष्टता लाना चाहता है। इस वैशिष्टय के लिए अलंकार, विशेषण, प्रतीक आदि अभिव्यंजना–धर्मों का आश्रय न लेकर वह सह्रदय की अर्थ–ग्रहण शक्ति को ही पर्याप्त मानता है।

राम का जो जीवन तुलसीदास ने चित्रित किया है उसका अधिकांश भाग प्रकृत्ति की रंगभूमि में ही व्यतीत हुआ है। चित्रकूट का वह वर्णन देखिएः

जलजुत बिमल सिलनि झलकत
नभ बन प्रतिबिम्ब तरंग।
मानहु जग रचना विचित्र
बिलसति विराट अंग अंग।।

कवि ने प्रकृत्ति के अप्रस्तुतों से प्रस्तुतों को सजाया संवारा है, सौन्दर्य–वर्णन के संदर्भ में अंग–प्रत्यंग के लिए उपमानों का चयन प्रायः प्रकृति से ही किया है।

कवि–गण प्रायः उद्दीपन के रूप में भी प्रकृत्ति का वर्णन करते रहे हैं। प्रकृत्ति के जो दृश्य संयोग के समय आनन्ददायक होते हैं, वे ही वियोग के समय विषादजनक बन जाते हैं। तुलसी ने भी प्रकृत्ति का उद्दीपन रूप में चित्रण किया है। राम और सीता के प्रथम मिलन को कवि ने जिस वातावरण में चित्रित किया है, वह तदनुकूल एवं उद्दीपक हैं –

भूप बागु बर देखेउ जाई।
जहं बसन्त रितु रही लोभाई।।
लागे बिटप मनोहर नाना।
बरन बरन बर बेलि बिताना।।

संयोग के साथ–साथ तुलसी ने राम–सीता और गोपियों के संयोग के साथ–साथ तुलसी ने राम–सीता और गोपियों के विरह वर्णन में प्रकृति के उद्दीपक रूप का चित्रण भी किया है।

तुलसी ने प्रकृत्ति के सभी अंगों–सूर्योदय, चन्द्रोदय, संध्या, रात्रि, वन, पर्वत, समुद्र, सरिता, सरोवर इत्यादि सभी का वर्णन किया है।

काव्य पक्ष की विशेषताएं

1. काव्य भाषाः– कवि के भाव–संप्रेषण के लिए भाषा अनिवार्य माध्यम होती है और प्रायः सभी कवियों का अपना भाषादर्श होता है। तुलसी के युग में काव्य–भाषा के रूप में ब्रज और अवधी भाषाएं प्रचलित थीं। तुलसी के काव्य में ब्रज और अवधी के विविध स्तर दृष्टिगोचर होते हैं। 'गीतावली', 'कृष्ण गीतावली' और 'विनय पत्रिका' का विनय भाग विशुद्ध परिष्कृत ब्रजभाषा में है तो 'कवितावली' में सामान्य ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। 'रामलला नहछू' की भाषा ग्रामीण अवधी है तो 'पार्वती मंगल' और –जानकी मंगल' की भाषा ठेठ अवधी और 'रामचरितमानस' की भाषा विशुद्ध साहित्यिक अवधी है।

इसी तरह तुलसी की कृतियों में प्राकृत और अपभ्रंश से प्रभावित शब्दावली का प्रयोग भी मिलता है।

मुहावरे और लोकोक्तियों में भाषा की प्रबल शक्ति होती है, जिनके द्वारा कवि मार्मिक अर्थ की व्यंजना करता है। तुलसी ने भी इनका प्रयोग कहीं अप्रस्तुत के रूप में, कहीं अर्थ को तीव्र करने के लिए और कहीं कथन को प्रभावशाली बनाने के लिए किया है। राम की भक्ति के बिना मनुष्य की जगत में कितनी उपेक्षापूर्ण स्थिति हो जाती है। इसकी व्यंजना कवि ने इस कौशल से की है।

तुलसी बनी है राम राबरे बनाए ना तौ,
धोबी कैसो कूकर न घर को न घाट को।

इसी कारण राम के प्रति वे अनन्य भक्ति रखते हैं उन्हें राम केवल राम ही दिखाई देते हैं, अन्य कुछ नहीं। अपने इस भाव को उन्होंने इस प्रकार व्यंजित किया है:–

मोहि तो सावन के अंधहि
ज्यों सूझत रंग हरौ।

लोकोक्तियों के प्रयोग से भी तुलसी ने अपने काव्य को शक्ति प्रदान की है। राम धनुष चढ़ाने के लिए आगे बढ़ते हैं, वे देखते हैं कि सीता की आकुलता बढ़कर चरम सीमा पर पहुंच गई है, अब बिलम्ब करने से पश्चाताप ही हाथ लगेगा। उनकी इस मनोदशा को कहावत द्वारा मूर्त रूप देते हुए तुलसी कहते:–

तृषित वारि बिनु जो तनु त्यागा।
मुए करइ का सुधा तडागा।।

विविध–शब्द–शक्तियों का प्रयोग

भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है, शब्द की अर्थ–शक्ति का ज्ञान। एक ही अर्थ को व्यक्त करने वाले अनेक शब्द होते हैं, कहां किस शब्द से अभिप्रेत अर्थ की सटीक व्यंजना होगी, इसका जिस कवि को ज्ञान होता है, वही भाषा के प्रयोग मे सफल होता है। शब्दों के अर्थों में जो सूक्ष्म अन्तर होता है, उसे तुलसी भली–भांति समझते हैं। इसीलिए उन्होंने उनका उपयुक्त प्रयोग किया है।

तुलसी की भाषा में अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना का प्रयोग अत्यधिक मात्रा में मिलता है। सरल एवं सुबोध रचनाओं में तो अभिधा का ही प्राधान्य है। किन्तु मुहावरे एवं लोकोक्तियों के प्रयोग में तुलसी ने लक्षणा शक्ति का सफल प्रयोग किया है, जिससे अर्थ गाम्भीर्य के साथ–साथ उक्ति–वैचित्र्य की भी सृष्टि हुई है। जैसे – करत गगन को गेंडुआ, जारिकै हीये। आदि पदों में लक्षणा का प्रयोग किया है। इसके साथ ही तुलसी ने व्यंजना शक्ति का प्रयोग भी अत्याधिक मात्रा में किया है। जैसे –जेई बाटिका बसति तहँ खग–मृग तजि तजि भजे पुरातन भौन।

अप्रस्तुत–योजना एवं अलंकार–विधान

अपने काव्य को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए भावों के त्वरित संप्रेषण के हेतु, शैली में सौन्दर्य लाने के लिए तथा काव्य को सौन्दर्य प्रदान करने के लिए कविगण अप्रस्तुत योजना करते हैं। तुलसी का ज्ञान–क्षेत्र अत्यन्त व्यापक था, उनकी कल्पना शक्ति अत्यन्त प्रखर थी, उनका पाण्डित्य प्रकाण्ड था तथा मनीषा उर्वर थी, इसीलिए उनके अप्रस्तुत विधान में वैविध्य दृष्टिगत होता है। उन्होंने परम्परागत उपमानों को अपनाते हुए ही उनमें नवीनता का समावेश किया है तथा अनेक नवीन अप्रस्तुतों को भी अपनाया है उनके अप्रस्तुतों में इतना वैविध्य तथा इतनी अनेकरूपता है कि जिसका वर्गीकरण करना भी जटिल है।

वनस्पतियों तथा फल–फूलों के तरुओं में उन्होंने कमल, शिरीष, कदम्ब, चम्पक, तमाल, तुलसी, पीपल, रसाल, सुपारी इत्यादि अनेक वृक्षों के अतिरिक्त वन–वाटिका, लता–कुंज प्रभृति को अप्रस्तुत के रूप में अपनाकर मार्मिक भाव व्यंजना की है। जब शिव धनुष को उठाने में कोई समर्थ नहीं हो सका और राम उसकी और बढ़े तो धनुष की विशालता एवं गुरुता तथा राम की किशोरावस्था जनित कोमलता को देखकर जनक–समाज चिन्ता ग्रस्त हो गया। एक उदासीनता और विपन्नता का वातावरण छा गया। उसी समय अत्यन्त लाघव से राम ने धनुर्भंग कर दिया। रानियों को जो उल्लास हुआ, उसकी व्यंजना उत्प्रेक्षा के द्वारा कितनी सुन्दर हुई है।

सखिन सहित हरषी अति रानी, सूखत धान परा जनु पानी।।

सौन्दर्य वर्णन के लिए कमल का उपमान तो अत्यन्त सामान्य और प्रख्यात है। इसलिए नव कंज लोचन, कंज मुख, कर कंज, पद कंजारुणै' जैसी पंक्तियों से सौन्दर्य की कोई व्यंजना नहीं होती, इसीलिए तुलसी ने व्यभितिरेक से उसे अयोग्य घोषित कर दिया हैरू–

सिय मुख सरद–कमल जिमि किमि कहि जाइ।
निसि मलीन वह, निस दिन यह बिगसाइ।।

इसी तरह रूपक, उत्प्रेक्षा आदि द्वारा अनेक अप्रस्तुत विधान प्रस्तुत किए हैं।

अलंकार विधानः– अप्रस्तुत योजना अलंकार विधान के अन्तर्गत ही समाहित है किन्तु काव्य के सौन्दर्य की अभिवृद्धि करने वाले जितने धर्म हैं वे सभी अलंकार हैं, वचन की प्रत्येक भंगिमा अलंकारमयी होती है। अतः अलंकार का क्षेत्र व्यापक है और वह अप्रस्तुत योजना के अतिरिक्त भी सम्भव है। तुलसी का काव्य अलंकारों का भी अनन्त भंडार है और विशेषता यह है कि प्रायः स्वाभाविक रूप से काव्य–प्रवाह के अन्तर्गत आ गये हैं, प्रयत्न साध्य नहीं हैं। अप्रस्तुत योजना के विवेचन में हम तुलसी के उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, रूपकातिशयोक्ति, दृष्टान्त, उदाहरण इत्यादि अनेक अलंकारों की छटा देखते हैं इसके अतिरिक्त तुलसी ने दृष्टांत, उदाहरण, वैषम्यमूलक, विभावना, विशेषोक्ति आदि अलंकारों का सुन्दर विवेचन किया है।

शब्दालंकारों का प्रयोग केवल चमत्कार उत्पादन के लिए किया जाता है। अतः तुलसी की प्रवृत्ति इस ओर कम है। शब्दालंकारों में से अनुप्रास, श्लेष, यमक आदि अलंकारों का प्रयोग तुलसी के काव्य में हुआ है। अतः तुलसी की अप्रस्तुत–योजना और उनका अलंकार–विधान काव्य की गरिमा, अर्थ की उदात्तता और भाव–सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिए हुआ है केवल चमत्कारोत्पादन और पाण्डित्य–प्रदर्शन के लिए नहीं।

21.4 सारांश

इस प्रकार तुलसी का काव्य–सौष्ठव अद्वितीय है। उनके काव्य में भाव–प्रवणता, शैली सौष्ठव और जो उदात्तता है वह अन्य कवियों में विरल ही नजर आती है। तल्लीनता, प्रबन्ध–पटुता रचना–चातुर्य, भाषा –सौष्ठव रस– परिपाक, अलंकार योजना आदि चाहे जिस दृष्टि से देखें गोसाईं जी में हम सब दशाओं में कला का अन्यतम उत्कर्ष पाते हैं।

21.5 स्व–मूल्यांकन

प्रिय विद्यार्थियों !

इस अध्याय में आपने तुलसीदास के काव्य सौष्ठव का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिन्ह द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं।

प्र) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिएः–

1) माया के कितने रूप माने गये हैं?

क) दो   ख) तीन   ग) चार   घ) एक

2) गोस्वामी तुलसीदास ने जीव को किसका अंश माना है?

क) जगत   ख) माया   ग) ईश्वर   घ) इनमें से कोई नहीं

3) तुलसीदास के युग में काव्य–भाषा के रूप में कौन सी भाषाएं प्रचलित थीं?

क) मैथिली ख) ब्रज और अवधी ग) संस्कृत घ) हिन्दी

4) शब्दालंकारों में तुलसीदास ने किन अलंकारों का प्रयोग अपने काव्य में किया है?

क) अनुप्रास ख) श्लेष ग) यमक घ) उपर्युक्त सभी

5) गोस्वामी तुलसीदास किसके शिष्य थे?

क) गुरु नरहरिदास ख) गुरु रामानन्द ग) गुरु बल्लभाचार्य घ) गुरु रविदास

प्र2) रिक्त स्थान भरोः–

क) तुलसीदास के अवतरण के समय में देश में .... का साम्राज्य था।

ख) राम चाहे ब्रह्मा है चाहे मानव, प्रत्येक देश में तुलसी के वे ही .... हैं।

ग) तुलसीदास के राम होते हुए भी .... है।

घ) माया के दो रूप हैं .... और अविधा माया।

प्र3) सही / गलतः–

क) तुलसी की कृतियों में प्राकृत और अपभ्रंश से प्रभावित शब्दावली का प्रयोग भी मिलता है। ( )

ख) तुलसीदास की रचनाओं में 'गीतावली', 'कृष्णगीतावली' और 'विनय पत्रिका' ब्रजभाषा में है। ( )

ग) तुलसीदास के आराध्य श्रीकृष्ण थे। ( )

घ) भाषा की सबसे बड़ी विषेशता है, शब्द की अर्थ–शक्ति का ज्ञान है। ( )

21.6 कठिन शब्द

प्रिय विद्यार्थियो!

अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर देने से पहले निम्नलिखित कठिन शब्दों के अर्थ शब्दकोश से ढूंढे और अपने शब्द भंडार को विकसित करें।

1. अद्वितीय————————————————
2. परिपाक—————————————————
3. तल्लीनता———————————————————
4. प्रबन्ध–पटुता——————————————
5. रचना–चातुर्य——————————————
6. विभावना————————————————————
7. साध्य—————————————————
8. गरिमा————————————————

9. वर्गीकरण————————————————

10. प्रयोजन———————————————

11. अभिवृद्धि———————————————

12. सौष्ठव—————————————————

13. शैली—————————————————

14. तल्लीनता———————————————

15. विधान ————————————————

16. व्यभितिरेक———————————————

21.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. तुलसीदास की काव्य शैली को स्पष्ट कीजिये।

____

____

____

____

____

2. तुलसी के अलंकार सौष्ठव का विवेचन कीजिए।

____

____

____

____

____

3. 'काव्य की दृष्टि से तुलसी की प्रतिभा अप्रतिम हैं' सिद्ध कीजिए।

____

____

____

____

____

21.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि – डॉ. द्वारिका प्रसाद – श्री विनोद पुस्तक मंदिर, 2020।
2. तुलसी – संपादक उदयभानु सिंह – राधाकृष्ण प्रकाशन, 2018।
3. तुलसी कृत विनयपत्रिका का काव्य शास्त्रीय अध्ययन –डॉ. राम अवतार पाण्डेय – पाण्डुलिपि प्रकाशन, 2020।